प्रिय पाठक तथा पाठकाओ !

मैंने जिस प्रकार हिन्दी साहित्य की सेवा की है वह सब आपकी कृपा और गुण ग्राहकता का कारण है इस हेतु मैं आपको बारम्बार धन्यवाद दे आज पुत्री उपदेश अर्थात् गृहस्थाश्रम का दूसरा भाग आपकी भेंट कर आशा करता हूं कि मेरे अन्य लेखों के समान इसको भी प्रेम पूर्वक पाठ और विचार कर गृहस्थाश्रम में यथार्थ सुख और शांति को प्राप्तकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे। परमात्मन् ! आप जगत् के स्वामी और हम सब के गुरु हैं आप अपने भण्डार से हम सबको बल बुद्धि प्रदान कीजिये जिसमें हमारे सर्व दुःख दूर हों और हम सुखों के साथ आयु व्यतीत कर मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करें।

प्रकाशक.

पुत्री के लिये आदेश

मेरी प्यारी इकलौती पुत्री प्रियम्वदे !

परमात्मा की महत्सृष्टि में काल की चाल के साथ निश्चयही प्रत्येक घटनाओं का परिवर्त्तन होता है-एक वह दिन था जब कि तुम्हारे उत्पन्न होने की बधाई मित्रवर्गों को दीगई थी और अनेक प्रकार तुम्हारी आयुष्य पूर्ति के लिये आशीर्वाद सञ्चय किया गया था।

हर्ष का विषय है कि उन शुभकामनाओं के सफल होने के बहुत कुछ लक्षण दृष्टिगत होने लगे इस समय तुम्हारा वर्ष १७ वां होचुका है साथ ही अब वह दिन भी निकट है जब कि तुम अपने इस पितृ कुल से पृथक हो एक नये नगर के अपरिचित कुटुम्ब में सदा के लिये निवास करने के हेतु जाओगी। इस लिये मैंने वैदिक आज्ञानुसार इस अवस्था तक तुम्हारा लालन पालन तेरे एकमात्र भाई 'भद्र' की भांति करते हुए तुझे मातृ भाषा का बोध होने के पीछे देववाणी संस्कृत तथा अन्यान्य उपयोगी विषयों का भी अध्ययन विदुषी श्री पंडित भीमसेन शर्म्मा द्वारा भोगपुर वा ज्वालापुर में कराया है।

इस विद्याभ्यास के समय में तुम्हारी माता की संरक्षता तेरे लिये परम लाभदायक हुई।

इसके अतिरिक्त मेरी पुस्तक रचना सम्बन्धी कार्य्य करते हुए मेरी सञ्चय की हुई नाना विषयों की अनेक पुस्तकों का अनुशीलन अथवा विचार तुमने स्वयं किया है, साधारण और उच्चकोटि के समाचार पत्रों को नित्य ही देखती रही हो. इस

हेतु साहित्य सम्बन्धी ज्ञान और निबंध एवं पुस्तक रचना सम्बन्धी योग्यता अच्छी होगई है। प्रत्युत तेरी लिखी हुई "आनन्दमई रात्रि का एक स्वप्न"* नामक पुस्तक तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित होते हुए नाना विषयक लेखों को देख कर मेरा चित्त परम आह्लादित होने के साथ मुझे आशा होती है कि तुम अपने भविष्य जीवन में इस ओर अधिकाधिक प्रयत्न वा परिश्रम पूर्वक देश वासियों की सेवा करती रहोगी क्योंकि अन्याय बातों के साथ तुम्हारा ध्यान और तुम्हारी रुचि स्वतः इस ओर अधिक है।

मेरे साथ में देशाटन करते हुए अनेक स्थानों पर व्याख्यान देते रहने से—व्याख्यान शैली से भी तुम अनभिज्ञ नहीं हो एवं मेरी बनाई हुई गृहस्थोपयोगी पुस्तक नारायणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम और प्रेमधारा उर्फ नारीभूषण से गृहसंबन्धी विषयों को जानने के साथ तुम्हारी माता ने स्वयं इस विषय की शिक्षा दी है और कार्यतः—अपने एक मात्र भाई की अनुपस्थिति में घर का सारा प्रबंध करने के कारण अनेक गुप्त बातों और छोटी मोटी गृह संबन्धी घटनाओं के उपस्थित होने पर किस प्रकार क्या २ कर्तव्य हैं—यह सब भी तुम ने भले प्रकार अनुभव किया है। इस रीति पर तुम्हारे इस पितृ कुल के निवास समय की समाप्ती के साथ तुम सब प्रकार उचित शिक्षिता हो, परंतु तौ भी मैं तुम्हें उन आवश्यकीय बातों का उपदेश करूंगा जिन पर गृहस्थी नर नारियों को विशेषतः ध्यान देना चाहिये—मेरी सम्मति में विना ऐसा किये गृहस्थाश्रम में पूर्ण शांति और सुख प्राप्त करना दुर्लभ है। प्यारी बेटी! यहां से बाहर पैर धरते ही तुम्हें एक विस्तृत कार्य्य क्षेत्र में अवतीर्ण होना होगा।

---

* अब तक कलियुगी परिवार का एक दृश्य और धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा नामक दो पुस्तकें और भी छप चुकी है जिनका मूल्य क्रमशः ≈), ॥) वा ।–) है।

अतः यहां के निवास समयके अंत होने के साथ ही तुम्हारे उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन का सूत्रपात होगा।

यहांसे पृथक् होतेही तुम्हारे सिरपर एक दूसरे कुल ही नहीं किन्तु समग्र देश और जाति के बनाव और विगाड़ का गुरु-तर भार आ पड़ेगा। इसके अतिरिक्त मेरी भी आयु अब ६० वर्ष की होगई-शरीर के अंग उपांग शिथिल होचुके अतः मेरा क्या ठीक कि कब अन्त समय प्राप्त होजाय अतएव तेरे प्रति अपनी हार्दिक अभिलाषाओं और इतने दीर्घकाल के अनुभव को प्रकाशित करने का इससे अधिक उपयुक्त समय दूसरा कौनसा होगा।

प्यारी बेटी! मेरी प्रबल इच्छा थी कि मैं गृहस्थाश्रम को परित्याग कर क्रमानुसार वानप्रस्थ और सन्यास की दीक्षा लूँ-

परन्तु तुम्हें मालूम है कि हमारे घर में कोई भी मनुष्य नहीं जिस पर मैं तुम्हारी और चिं० भद्र की शिक्षा आदि का सारा भार समर्पित कर मुक्त होसक्ता। विपक्ष में मेरी इच्छा के अनुसार तुम्हारे हृदयों में शुभ संस्कारों और विचारों का समावेश एवं मनोतीत विद्याध्ययन आदि कार्य नहीं हो सक्ते थे जिससे तुम दोनों के भविष्य जीवन सर्वदा के लिये एक नवीन जाग्रति से रहित और अंधकार पूर्ण होजाते।

बेटी! इस कठिन समस्या के उपस्थित होने से ही विवश होकर मुझे वानप्रस्थ के योग्य अवस्था में उक्त विचार छोड़ना पड़ा-और इसी पवित्र कर्तव्य को पूर्ति के लिये मैंने सब डिप्टी इन्स्पेक्टरी के पद को भी अस्वीकार किया क्योंकि उसमें अधि-कांश समय दौरे पर विताना पड़ता और तुम्हारी शिक्षा तथा आचरण संगठन में बाधा पड़ती। अस्तु! अब तुम दोनों की शिक्षा समाप्ती के साथ मेरा शरीर अत्यन्त दुर्वल और इन्द्रियां कार्य्य करने के अयोग्य होगई फिर इस निर्वलता और स्वयं

सेवा योग्य होकर वान प्रस्थ में जाना अपने बोझ से दूसरों को क्लेशित करने तथा समाज पर अपने पेट पालन का भार डाल देने के सिवाय दूसरा कोई लाभ दृष्टि पथ नहीं होता। इसका मुझे बहुतही खेद और पश्चाताप रहा—परन्तु तुम अपने जीवन में आश्रम व्यवस्था की रीति का अवश्यमेव पालन करना जिस से इस सुखदायक रीति का भारत में फिर पूर्णतः प्रचार होजाय देश में यत्र तत्र वनस्थी उपदेशिकायें सुलभहों,।

प्रिय पुत्री! ईश्वरीय नियमसे पुत्रियां दोनों कुलोंकी शोभा वृद्धि करने वाली तथा अपने शुभ कर्तव्यों से उनको श्रेष्ट बनाने एवं उच्च आदर्श के गौरव से गौरवान्वित करने वाली हैं। परन्तु विदुषी कन्याओं के लिये जबतक वह दूसरा कुल उसके जीवन पर्यन्त के लिये वह निवास स्थान वह स्थाई कार्यक्षेत्र मनोनीत अथवा मिलता जुलता वा एक भावी या एक मत एवं एकही आदर्शका मानने वाला नहो तबतक वे सुशिक्षिता कन्यायें अपने जीवन में मनोभिलाषित उन्नति वा लौकिक शुभ कार्यों की सिद्धि तथा अपनी विद्या, और ज्ञान प्राप्ती का उद्देश्य पूर्ण नहीं करसकेगी।

पुत्री, ऐसे विचारों के कारण तुम्हारे लिये मनोनीत 'वर प्राप्ति' में बहुत सा समय और धन व्यय होने के साथ तुम्हारे दोनों सुयोग्य (बाबू तोताराम मुख्त्यार बिसौली जिला बदायूं तथा भद्रगुप्त) भाइयों ने बहुत कष्ट उठाया, परन्तु ये मेरे सुयोग्य मित्र सांखनी निवासी मुंशी तोतारामजी तथा अलीगढ़ निवासी श्री लाला नारायण प्रसादजी गुप्त की विशेष सहायता से यह परिश्रम सफल हुआ जो शुभ और संतोषदायक है।

मेरी इच्छानुरूप सज्जन श्रीयुत लाला जौहरीमलजी रईस (सांखनी जि० बुलन्द शहर) के पुत्र तथा श्री बाबू पन्नालाल जी बी० ए० एल०एल० बी० वकील हाईकोर्ट इलाहाबाद के भतीजे चिरंजीव विश्वम्भर सहाय को चुना—जो इस समय

एफ़० ए० में होने के साथ स्वस्थ शरीर ब्रह्मचर्य्य पालन के कारण मुख कांति पूर्ण सहन शील नम्र प्रिय भाषी तथा विद्या व्यसनी और देश-तथा जाति के हितकर कार्य्य में पूर्णतः रुचि रखने वाले हैं।

अतएव आशा है कि तुम विद्वान सज्जन पुरुषों से युक्त कुल के ऐसे सुयोग्य पति के साथ सुख भोगती हुई जीवन पर्यन्त अपने शुभ विचारों और श्रेष्ठ इच्छाओं को भले प्रकार सुगमता से पूर्ण कर सकोगी।

हे पुत्री ! जैसे तुमने अब तक मेरी एवं स्वमाता की आज्ञा पालन तथा हमारे ही मनानुकूल कार्य्यों का सम्पादन कर हमको सदा प्रसन्न किया है वैसेही अपनी पूज्या सास और श्वसुर की सदा सेवा शुश्रूषा तथा उन्ही की आज्ञा पालन कर उनको प्रसन्न करती रहना। पुज्य पतिके अन्यान्य भाइयोंके साथ अपने प्रियभाइयों के तुल्यही मान सत्कार और प्रिया चरण में प्रवृत्त रहना-उनकी पत्नियों को अपनी बहनों के समान समझना-एवं अन्यान्य हमारे कुल के सम्बन्धियों तथा मित्रों के तुल्यही उस घरके सम्बन्धियों कुटुम्बियों और मित्रों के साथ आचरण एवं व्यवहार करना। हे बेटी, तू पतिको ही परम देव समझकर सत्यभामा के समान उनकी आज्ञा पालन करती हुई उन्हें सदैव प्रसन्न रखना-उनके दोषों का निवारण अपनी युक्ति नम्रता और योग्यता से करना। हे पुत्री ! वृथा काम में आसक्त हो उनके और अपने बलका नाश न करना विपत्तिकाल में धैर्य्य धरनाही शूर वीरता का चिन्ह है देखो जनक दुलारी मैथिली, हरिश्चन्द्र पत्नि तारामती, एवं दमयन्ती ने कैसी योग्यता वीरता और अतुलित धैर्य्य शीलता से अपने दुःखमय समय को व्यतीत किया।

प्यारी बेटी ? संसारमें तुम्हें ऐसे विरलेही नरनारी दृष्टिगत होंगे जिन्होंने-लौकिक लालसाओं को अपने हृदय में स्थान दे

उन्हीं की पूर्ति में अपने अमूल्य मनुष्य जीवन को समाप्त न कर दिया हो क्योंकि इनकी आकर्षण शक्ति चुम्बक के समान होती है अतएव अपने भविष्य जीवन में कहीं तुम भी इन्हीं की चेली न बनजाना, अपने सुंदर मकानमें सुख सामिग्रियोंका संचय और उसीके प्रबंधमें अपने जीवनके उद्देश्यकी समाप्ती न समझ लेना—अपने उभय पक्षीय परिवार वा अपनी सुख लिप्सा में फंसकर सारी उच्च आकांक्षाओं और महत्व कामनाओं को शांत न कर देना।

प्यारी पुत्री सुन्दर सुसज्जित कमरे में पंखे की हवा लेते हुए आराम करते रहने में बड़प्पन नहीं है रईसों और पदाधिकारियों की महिलाओं के मिलने एवं उन से मित्रता कर लेना ही प्रतिष्ठा द्योतक नहीं हैं अमीरी ठाट बाट में लिप्त हो कर अपने धन और अपने कुल के गौरव में चूर पड़े रहने में ख्याति नहीं है, अपने उभय पक्षीय परिवार की हित कामनों और पितृ तथा पति कुल के माननीय जनों की सेवा सुश्रूषा कर लेने मात्र में कर्तव्य की समाप्ति नहीं है अपने घरको सुधार लेने में ही जीवन सार्थक नहीं हो सकता—प्रातः सायं संध्या हवन करना ही धार्मिकता का द्योतक नहीं है—अपनी आत्मा को ज्ञान पूर्ण कर लेने में ही ज्ञान का फल नहीं मिल सकता किन्तु—

बड़प्पन।

है गर्मी सरदी और कठिन लूं के झपेटे और मूसलाधार पानी आदि में भी अपने सुख दुख का विचार न कर रोगादि व्याधियों से व्याकुल आत्माओं की तन मन धन से सेवा करने में।

प्रतिष्ठा द्योतक है।

साधारण से साधारण और निम्न श्रेणी को महलाओं से

❋ ॐ ❋
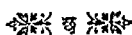
मैत्री का व्यवहार करते हुए उन की दशा को उच्च से उच्च बनाने में।

ख्याति है।

मनुष्य मात्र के अबोध और सुकुमार बच्चों पर दया दर्शाते हुए उनकी भावि उन्नति का मार्ग उन के भावि कल्याण का द्वार खोलने में शक्ति अनुसार सहायता देने में।

परम कर्त्तव्य है।

अपने उभय पक्षीय मान्य जनों की सेवा करते हुए अपनी विद्या से दूसरों को विद्वान बनाने, अपने ज्ञान से अन्यों के अंधकार को दूर करने, अपने धन से दूसरों को सब भांति सुखी करने में।

जीवन की सार्थकता है।

अपने घर के सुधार के साथ अपने प्यारे देश और ज़ाति के भाई बहनों का सुधार करने, उन के हृदयों में जमे हुए कुसंस्कारों और प्रचलित कुरीतियों तथा घृणित एवं भयंकर परिणाम लाने वाली प्रथाओं के दूर करने मूर्खों को सबोध और श्रेष्ठाचारी बनाने में।

धार्मिकता है।

ईशभजनादि करते हुए बिना किसी भेदभाव के सब के साथ एकसा व्यवहार करने में।

गौरव का गुरुत्व है।

गम्भीर बनकर अज्ञान मूर्खों द्वारा की गई अपनी निःसार आलोचनाओं को सुनते हुए अपने कार्य्यों को करते रहने में।

यद्यपि बेटी, इन सब बातों पर पूर्णतः आमिल होना दुष्कर है परन्तु सांसारिक जीवन में जो जन इन सद्गुणों की ओर

झुकते हैं जो 'सुख' के यथार्थ रूपको पहिचान कर अपनी प्रकृति को ऐसी बनाते हैं जो अपनी ज्ञान पूर्ण विवेचना में वास्तविक सुख मार्ग जान कर इनका आश्रय लेते हैं वे ही भाग्यवान जन अपने मनुष्य जीवन के पाने के महत्व को सिद्ध कर लेते हैं—वे ही अपने कार्यक्षेत्र में आगे बढ़कर सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं वे ही अपने भावि जीवन का आगामी जन्म अर्थात् उपरोक्त सद्गुणों के अनुसार अपने जीवनको बिताने वाले नरनारी इस जन्म में यथार्थ सुखों को भोगकर क्रमानुसार उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कर्म्मी होकर अंत में आवागमन के महत्चक्र से छुटकर अक्षय सुख यानी मुक्तिको प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

अतएव मेरी प्रिय पुत्री! यदि तुमने ऐसा ही व्यवहार किया—उपरोक्त भावों को अपने जीवन में प्रवाहित कर दिया, तो उसी समय समझ लो कि मेरी अंतिम आज्ञा पूर्ण हुई—मेरा सच्चा श्राद्ध होगया, और मेरी आत्मा तृप्त होगई मेरा उपदेश सफल हुआ।

इसलिये मेरी बेटी! तू मेरी आज्ञापालन, मेरे सच्चे श्राद्ध एवं मेरी तृप्ति और अभिलाषा वा मन्तव्य पूर्तिके लिये अवश्यमेव इसी मार्ग का अनुगमन करना, ऐसी ही प्रकृति और व्यवहार बनाना।

बेटी चि० भद्र तेरा अकेला प्यारा भाई है मेरी सम्मति में उसकी विद्यादि योग्यता अच्छी है आशा है वह भी इस आदेश का पालन करता हुआ हमारी पुस्तक रचना सम्बन्धी कार्य की अधिक उन्नति करेगा। इसके अतिरिक्त पुत्री सांसारिक जीवन में प्रायः ऐसी बहुतसी घटनायें आपड़ती हैं जिनके कारण परस्पर मन मुटाव होजाता है—लेकिन चि० भद्र की योग्यता, सुबुद्धि—और सुव्यवहार को देखते हुए आशा होती है कि तुम दोनों के बीच ऐसा प्रसंग न आवेगा और यदि कदाचित आही जाय तब तुम अपने कर्तव्यों से च्युत न होना।

मुझे बहुतही संतोष है कि भद्रकी पत्नी सुशिक्षिता होनेके अतिरिक्त सुगृहिणियों के उचित शुभ गुणों से युक्त है अतः यह निःसंकोच कहा जासक्ता है कि वह अपनी शुभ सम्मति और कार्य्य कुशलता से तेरी माता के पीछे अपने घरका प्रबन्ध करती हुई मेरी इच्छा के अनुकूल ही तुम दोनों को यथा समय बोध कराती रहेगी।

प्यारी बेटी मेरी प्रबल इच्छा थी कि मैं तुम्हें इंग्रेजी बंगाली गुजराती और मराठी भाषा का भी भले प्रकार अध्ययन कराता परंतु समय के प्रभाव को देखते हुए और अनेक असुविधाओं के कारण यह मनोकामना भी पूरी न हो सकी परंतु यदि तुम को अवसर मिले तो इंग्लिश भाषा का ज्ञान (जिस का अध्ययन यहां प्रारम्भ भी कराया है) पूर्ण रीति से प्राप्त कर अन्यान्य भाषाओं की समुचित विज्ञता प्राप्त करने की चेष्ठा अवश्य करना।

बस अब और अधिक क्या कहूं अन्त में फिर तुम दोनों को परमपिता परमेश्वर की संरक्षता में छोड़ प्रार्थित हूँ कि वह तुम दोनों पर अपनी कृपा दृष्टि रखता हुआ तुमको प्रत्येक प्रकारके बल से युक्त कर विघ्नों से बचाता रहे जिससे सांसारिक सुख भोगने के साथ तुम अपने प्यारे देश के हितकारक, जाति के शुभचिन्तक और धर्म्म के प्रचारक बन भारतजननी का उद्धार तन मन और धन से करो। ओं शम् ॥

जनवरी सन् १९१३ ई०
तिलहर यू. पी.

शुभाकांक्षी—
तुम्हारा पिता

इस पुस्तक के मुद्रित कर देने की इच्छा पुत्री के विवाह समय (जून१९१३) तक थी जिससे अन्योन्य दहेजकी वस्तुओं के साथ विवाह उत्सवमें सम्मिलित हुए प्रत्येक व्यक्ति को दी जाती लेकिन अनेक असुविधाओं से अब तक यह शुभ अवसर प्राप्त न होसका। परन्तु अब उसको बहुत कुछ संशोधन के पीछे प्रकाशित कराताहूं। आशाहै कि इससे हमारे देश तथा स्त्रीजातिका कल्याण होगा।
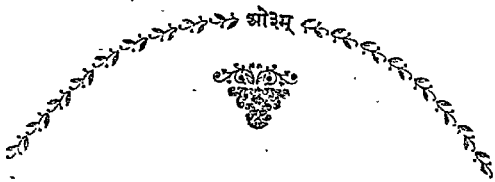
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्रनो जनय गोभिरश्वैर्भगप्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥

हे स्वयं-प्रकाश भगवन् ! आप सम्पूर्ण सामर्थ्यों और सकल ऐश्वर्य से
युक्त अक्षय सुख के देने वाले हैं, हे सत्यभग ! आप हमको पूर्ण ऐश्वर्य
वाली सर्वोत्तम बुद्धि दीजिये, हम में सत्यकर्म और सत्यगुणों
का उदय कीजिये, जिससे आपका गुण गान करते हुए, उत्तम
ज्ञान द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जान सकें,
हे सर्वैश्वर्योत्पादक ! हमको सदा उत्तम २ पुरुष, स्त्री एवं
संतान तथा गाय घोड़ा आदि ऐश्वर्य से
युक्त कीजिये, हे सर्व शक्तिमन् ! आप
की अपार दया से हम में कोई
दुष्ट और मूर्ख न रहे
जिससे सर्वत्र हमारी
सत्कीर्ति का
प्रकाश हो

प्रार्थना

भजन ।

भगवन् दया की दृष्टि अब तो इधर भी कर दो ।
कृपा से अपने दामन इस दीन का भी भर दो ॥
आज्ञा का तेरी पालन निशदिन करूँ मैं स्वामि ।
भिक्षुक हूं नाथ तेरा भक्ति का मुझ को वर दो ॥
माता वहन व कन्या समझूं पराई नारी ।
समभाव सब को देखूं ऐसी पिता नजर दो ॥
वे पुत्र ही हैं वेहतर गर हो अधर्मी वालक ।
होवे धर्म्म का रक्षक ऐसा पिता ! पिसर दो ॥
वेकार है वह धन जो परस्वार्थ में न व्यय हो ।
विधवा अनाथ पालन करने को नाथ ! ज़र दो ॥
पुरुषार्थ करके जो कुछ हो जाय नाथ ! सामान ।
उस ही में हे दयामय ! संतोष और सवर दो ॥
संकट हज़ार पड़ने पर भी धर्म न हारूँ ।
निर्भय अशोक वल से पूरण प्रभू जिगर दो ॥
कर्मानुसार यदि मैं मानुष शरीर पाऊँ ।
हे ईश ! जन्म मेरा सत-आर्य्यों के घर दो ॥
हे मित्र नाथ ! तुम से करजोड़ अब विनय यह ।
अपना ही ध्यान मुझको हर शाम और सहर दो ॥

पंडित कालीसहायजी गाज़ियावाद.

गृहस्थाश्रम में शान्ति
और
सुख के साधन।

पृथक् सर्वेप्राजा पत्याः प्राणानात्म सुविभ्रति ।
तान्सर्वान् ब्रह्मरक्षति ब्रह्मचारिण्या व्रतम् ॥

जगत पिता परमात्मा की प्रजा अलग २ अपने आत्मो में प्राणों को धारण करती है, परन्तु उन प्राणों की रक्षा ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा ही होती है। अथर्व का० ११ अनु० ३ मं० १५ ।

नैनं रक्षांसि नपिशचाः सहन्ते देवानमोजः प्रथम-जंह्ये २ तत् । योविभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं सजीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ।

जो पुरुष प्रथम अवस्था में ब्रह्मचर्य्य पालन करते हुए गुणी माता, पिता, आचार्य्य, से शिक्षा प्राप्त करते हैं, वही उत्साही जन दीर्घायू हो-कर सब विघ्नों और दुष्टों के फन्दों से वच विज्ञान एवं सुवर्ण आदि धन को प्राप्त कर संसार में यश पाते हैं।

अथर्व का० १ सू० ३५ मं० २

ग्रीष्मेण ऋतुना देवाः रुद्राः पञ्च दशऽइति पञ्चऽदशे
स्तुताः बृहता यशसा बलम् हविः इन्द्रे वयः दधुः ।

जो ४४ वर्ष के उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत के धारण पूर्वक विद्वान हो अन्यान्य मनुष्यों के शरीर और आत्मा के बलको बढ़ाते हैं वे भाग्यवान् होते हैं।

यजुर्वेद—

तं वः शर्धं रथे शुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचामरुत्सु मीळ्हुषी॥

जिस कुल में ब्रह्मचर्य्य वृत स्नात (जिन्होंने ब्रह्मचर्य्य व्रत किया है) स्त्री पुरुष विद्यमान् है वह कुल भाग्यशाली है।

ऋग्. म. ५। अ. ४ सू. ५६ ।९।३०।४॥

अविप्लुत ब्रह्मचर्य्यो ग्रहस्थाश्रम माविशेत्

अखण्डित ब्रह्मचारी ही गृहस्थ बने। मनु

विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्तकर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो।

विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० २५

ब्रह्मचर्य्य व्रतको समाप्तकर द्विजोंको गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये।

सम्वर्त स्मृति अ० १ श्लो० ३४

ब्रह्मचर्य्य व्रतके पीछे गुरु की आज्ञा से गृहस्थ बनने की इच्छा कर।

व्यास स्मृति अ०२ श्लो० १

ब्रह्मचर्य्य में विद्याध्ययन तथा नियमादि को समाप्त कर यथोचित गुरु दक्षिणा दे गुरु की आज्ञा से गृहस्थाश्रम को ग्रहण करे।

शंख स्मृति अ० ३ श्लो० २५

ब्रह्मचर्य में वेदोक्त कर्म्मोंका पालनकर स्नातक हो गृही बने।

दक्ष स्मृति अ० १ श्लो० ७

ब्रह्मचर्य्य में वेद पढ़ गुरु की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में जाना चाहिये।

गौतम स्मृति अ० २ श्लो० १५

ब्रह्मचारी न काञ्चन मार्त्तिमिच्छति ।

ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करने वाले सारे दुःखों से अलग रहते हैं ।

शत. का. ११. प्र. ३ ब्रा. ६ का. २

पुण्यतमायुः प्रकर्षकरं जरा व्याधि प्रशमनमूर्ज्जस्करममृतं शिवं शरण्य मुदारञ्च मत्तः श्रोतु मर्हथोपधारयितुं प्रकाशयितुं च प्रजा नु-गृहार्थं मार्षं ब्रह्मचर्यम् ।

सब पुण्यों से उत्तम रोग संहारक पूर्ण आयु का देने तेज का बढ़ाने और मृत्यु से रक्षाकर सारे सुखोंका देने वाला ब्रह्मचर्य्य ही है ।

चरक चि. अ. १ रसा. .४

जो ब्रह्मचर्य्य आश्रम में रहकर अपने चित्त को शुद्ध करते हैं वे ही नरनारी दूसरे आश्रमोंमें सुखों को भोग सक्ते हैं।

श्री शुकदेवजी

ब्रह्मचारी स्त्री पुरुष ही सपूर्ण सुखों को प्राप्त करते हैं।

राजर्षि भीष्म पितामह

जिस देश और जाति में ब्रह्मचर्य्य के पीछे विवाह होता है वह देश और जाति सब प्रकार के सुखों को भोगती है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

ब्रह्मचारी ही निर्दोष प्रयत्नों के द्वारा सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करता है।

स्वामी सर्वदानन्दजी

ब्रह्मचारी नर नारियों के लिये जगत् के पदार्थ सुखदायक होते हैं।

स्वामी दर्शनानन्दजी

ब्रह्मचारी ही संसार में सुख वा शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर सक्ते हैं।

स्वामी शुद्धबोध तीर्थजी

संसार में सुख वा शान्ति की वृद्धि करना ब्रह्मचर्य्य व्रत धारियों के हाथ में है।

स्वामी शुद्धानन्दजी

पुरुषोत्तम परशुराम—

चूका कहीं न, हाथ गले, काटता रहा।
पैना कुठार, रक्त बला, चाटता रहा॥
भागे भगोड़, भीरु भिड़ा, धीर न कोई।
मारे महीप, वृन्द बचा वीर न कोई॥
सु प्रसिद्ध राम, जामदग्न्य, का कुदान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है।

महावीर हनूमान—

सुग्रीव का सुमित्र बड़े कामका रहा।
प्यारा अनन्य भक्त सदा रामका रहा॥
लङ्का जलाय, कालखलों को सुझादिया।
मारे प्रचण्ड, दुष्ट दिया भी बुझा दिया॥
हनूमान बली, वीर-वरों, मे प्रधान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है॥

राजर्षि भीष्म पितामह:—

भूला न किसी, भांति कड़ी टेक टिकाना।
माना मनोज, का न कहीं, ठीक ठिकाना॥
जीते असंख्य, शत्रुदल, दर्प दिखाता।
शय्या शरों की, पायमरा, धर्म्म सिखाता॥
अब एक भी न, भीष्मवली, सा सुजान है।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य्य की महान है॥

महात्मा शंकराचार्य—

संसार सार, हीन खड़ा, सा उड़ा दिया।
अल्पज्ञ जीव, मन्द दशा, से छुड़ा दिया॥
अद्वैत एक ब्रह्म सबों को बतादिया।
कैवल्यरूप, सिद्धि-सुधा, का पता दिया॥
भ्रम भेद भरा, शंकरेश का न ज्ञान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य्य की महान है॥

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

विज्ञान पाठ वेद पदों को पढ़ागया ।
विद्या-विलास, विज्ञवरों का बढ़ागया ॥
सारे असार, पन्थमतों, को हिलागया ।
आनन्द-सुधासार दया, का पिलागया ॥
अब कौन दयानन्द यती के समान है ।
महिमा अखंड ब्रह्मचर्य की महान है ॥

श्री पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा
(शङ्कर)

ओ३म्

सर्वस्याधार भूतेयं वत्सधेनु त्रयीमयी ।
यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्चया मता ॥

प्यारी बेटी, ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चारों आश्रमों में सृष्टिकी स्थिति रखनेका भार गृहस्थाश्रम पर ही है—क्योंकि विना गृहस्थाश्रम के संसार की धारा प्रवाह चल ही नहीं सक्ता इस लिये गृहस्थाश्रम की कितनी महिमा है दूसरे आश्रमों में इसका स्थान कितना ऊंचा है सो किसी से छुपा नहीं। तिस पर भी आज बहुत से व्यक्ति गृहस्थाश्रम में जाना आफ़त मोल लेना और गृहस्थ होना जेलका फँदा बनना जानते हैं। वास्तव में गृहस्थाश्रम की वर्तमान दशाको देखते हुए उनका ऐसा कहना ठीक भी माना जासकता है—परंतु बेटी, थोड़ा विचार करने पर मालूम होगा कि गृहस्थाश्रम की ऐसी दुःख से भरी हुई कारुणिक अवस्था करने वाले, गृहस्थाश्रमके अधिनेता और अधिनेत्री (गृहपति और पत्नि) ही हैं। क्योंकि पुत्री ! जिस मकान की नींव दृढ नहीं होती उसमें सर्वदा नित्य नई खराबियां होती रहती हैं और आज यही दशा गृहस्थाश्रम की है सारे राष्ट्र के बनने और विगड़ने तथा उसके सुख दुःखका दायित्व रखने वाले दश बारह की आयु के राजा और आठ नौ वर्ष की रानी को न तो गृहस्थाश्रम की भारी जिम्मेवारी का ध्यान रहता है और न वे यह जानते हैं कि हम दोनों को इस आश्रम में क्या २ करना होगा फिर जब जानते ही नहीं तो पालन करें तो किसका और छोड़े तो किसको इसके उपरांत बड़ी आयु होने पर विद्या सत्संग और उपदेशक महात्माओं की कमी से इस बारे में वे वैसे ही अज्ञ रहजाते हैं। अतएव घर रूपी राज्य के भीतर और अपने आश्रित प्रजा

(परिवार के स्त्री पुरुष बच्चे आदि) की व्यवस्था की बात कौन कहे वहां राजा और रानी में ही दिन रात रौला मचा रहता है-घरनी और घरके मालिक में जैसे प्रेम की जरूरत है जिस प्रकार की सहानुभूति की आव श्यकता है-वैसा प्रेम एवं वैसी सहानुभूति नहीं पाई जाती परस्पर स्वार्थ रहित जैसे धर्मिष्ठ भाव की आवश्यकता थी उसका तो आंशिक भाव भी दृष्टि नहीं आता पतिदेव पत्नि को अर्धांग्नि सहधर्म्मिणी नहीं किंतु पैर की जूती (!) समझते हैं उधर पत्नि देवी को भी पति के अतिरिक्त अन्यान्य जड़ देवों की उपासना का ध्यान रहता है। इस लिये आपस में जैसा सद्व्यवहार होना चाहिये वैसा नहीं होरहा है-इसका प्रबल कारण हमारे हृदयों का शुद्ध न होना है क्योंकि हमारे हृदय की जैसी दशा होगी-ठीक वैसे ही हमारे विचार होंगे और विचार तंत्री के अनुसार ही हमारा व्यवहार तथा आचरण होगा अतएव स्पष्ट तथा यह कहना ठीक है कि जीवन को भला या बुरा बनाने का दायित्व हमारी विचारतंत्री पर है यदि कोई बलवान शक्ति धीरे २ हमें बनाती है तो हृदयतल में छिपी हुई हमारी विचार तंत्री ही है इसलिये विद्वानों ने विचार, को सारे ब्रह्मांड में एक बलवान वस्तु मानाहै मिष्टर एला विलर विलकास्क का कथन है कि "जिस दैव अथवा भाग्य को हम नहीं जानते वह भाग्य हम अपने अच्छे या बुरे विचारों से बनाते हैं ?

इस लिए मनुष्यत्व का प्रधान स्थान हृदय है। जिसके भले या बुरे शुद्ध और मलीन होने का परिचय-आचार एवं व्यवहार से होता है क्योंकि किया हुआ कार्य्य ही विचारों का फूल स्वरूप तथा कार्य्य से उत्पन्न हुआ भला या बुरा परिणाम उसका फल होता है परन्तु शुभ संकल्प विकल्प वा अच्छी कामनायें अर्थात् इच्छायें एवं श्रेष्ठ विचार और आचार व्यवहार उसी समय होसक्ता है जब कि हृदय निर्मल पवित्र, और शुद्ध हो लेकिन बेटी ! यहां न तो स्वयं अपना आत्म सुधार किया-और न किसी दूसरे नेही इसके निर्मल एवं पवित्र बनाने की चेष्टा की अतएव हमारे हृदय मलिन, भाव बुरे, इच्छायें नीची, फिर

परस्पर श्रेष्ठ आचरण और व्यवहार कैसे होसक्ता है एवं अच्छे आचरण व्यवहार के अभाव में शांति कहां, और एक शांति हज़ार व्याधियों को नष्ट करसकती है। एक शान्ति स्वभावी मनुष्य हज़ार क्रोधियों को वश में कर सक्ता है। शान्ति प्रेमी को सांसारिक नाना प्रकार की व्याधियों से उठी हुई अग्नि ज्वाला लगकर दुखी नहीं करसक्ती, शान्ति स्वभावी के घरमें दुखों का तूफान नहीं आसक्ता, इसलिये बेटी गृहणी और गृहपति के स्वभाव का शान्तिवाला होना वैसाही आवश्यक है जैसे गृहस्थ बनने के लिये पहिले स्त्री की जरूरत होती है। क्योंकि जिन गृहणी और गृहपतियों का शान्त स्वभाव होता है वह घर में शांति का राज्य स्थापित कर सक्ते हैं। और ऐसेही अनेक परिवारों के समुदाय से संसार में शांति का राज्य स्थापित करसकते हैं इसलिये *भगवान वशिष्ठ जी* ने कहा है।

शान्ते परमं सुखम्

लेकिन जिन गृहपति और पत्निकी बुद्धि परिपक्व होगी वेही शान्ति स्वभावी होने के साथ ऐसा करने में समर्थ हो सकते हैं। क्योंकि जो काय्य, धन, बाहु, एवं शस्त्रबल से नहीं होसक्ते वे शुद्ध तीव्र बुद्धि द्वारा सरलता से सिद्ध किये जा सक्ते हैं। बुद्धि बलसे ही पहाड़ पर स्थित हो पृथ्वी तलपर की सभी वस्तुएं देखी जा सक्ती हैं। श्रेष्ठ परिपक्व बुद्धि द्वारा ही संसारी जनोंको चकित करने वाले *आविष्कार* किये जाते हैं। बढ़ा हुआ धनादि ऐश्वर्य बुद्धि के द्वारा ही रक्षित होता है। बुद्धि बल शाली राजगण ही धन धान्य से भरे हुए राज्य को सुख से भोगते हैं समय के अनुसार काम करने वाले शुद्ध तीक्ष्ण बुद्धि वाले पुरुष, बलवान दुर्जन वैरियों को भी सहज में नष्ट कर सक्ते हैं।

इतना ही नहीं अत्यन्त दुःख पड़ने पर बुद्धि के द्वारा ही मन को सावधान किया जाता है। विद्या, बान्धव, धन, कर्म और बुद्धि इन पांचों में बुद्धिमान नरनारी ही अधिक प्रतिष्ठा लाभ करते हैं। बुद्धिमान की गोष्ठी से ही यथार्थ सुखों की प्राप्ती होती है। बुद्धि जनित ज्ञान ही सब का मूल है अतएव निर्बल बुद्धिमान भी बलवान है। क्योंकि जब

बुद्धि नष्ट होजाती है तब वह कर्तव्य अकर्तव्य के निर्णय करने में समर्थ नहीं होते जिसके कारण वह नाना दुःखों में फंसते रहते हैं। कहा है:—

शस्त्रै हतास्तु रिपवो न हताभवन्ति।
प्रज्ञा हताश्च नितरां सुहतां भवन्ति॥
शस्त्रं निहन्ति पुरुषस्य शरीर मेकं।
प्रज्ञा कुलंच विभवंच यशश्चहन्ति॥

शत्रु शस्त्रों के द्वारा मरा हुआ नहीं कहा जासक्ता किन्तु बुद्धि से हीन पुरुष मरे हुए कहे जाते हैं—शस्त्र से पुरुष के शरीर का नाश होता है किन्तु बुद्धि के न होने से कुल, धन, सम्पत्ति आदि वैभव का नाश होजाता है। अतएव जो महान् पुरुष बुद्धि बल से बली हैं वे ही यथार्थ में बली हैं। वेद में कहा है कि जिस प्रकार गिद्ध मोर आदि पक्षी तीव्र बुद्धि वाले होते हैं और शूकर अपनी नासिका से सूंघ पृथ्वी में से खाद्य पदार्थ को निकालता है वैसे ही परिश्रमी दूरंदेशी, बुद्धिमान् पुरुष अपने बुद्धि बल के प्रयोग से सदा नाना प्रकार के सुख प्राप्त करते हैं इसलिये कहा है कि इन्द्रियों से उनके ग्राह्य विषय श्रेष्ठ हैं और उन विषयों से मन उत्तम हैं एवं मनसे भी बुद्धि श्रेष्ठ है। "इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था, अर्थेभ्यश्चपरं मनः मनसस्तु परा बुद्धिः"। इसलिये ऋषिगणों ने मनुष्य मात्र को उपदेश दिया है कि तुम सब शुद्ध बुद्धिके लिये परमात्मा से प्रार्थना किया करो—और उन प्राकृतिक नियमोंका यथावत पालन करो जिन से शुद्ध बुद्धि मिलती है उस समय तुमको अपना कल्याणकारी मार्ग दीख पड़ेगा और तुम्हें सब तरह के सुख मिलेंगे। इसलिये ऋग्वेद में कहा है जिनकी उत्तम बुद्धि होती है वे संसार में धन्य हैं अस्तु बेटी! शास्त्रोंमें यह बुद्धि तीन प्रकार की मानी गई है प्रथम अनागता अर्थात् अग्रसोची, कार्य्य करने से प्रथम ही सोचने विचारने वाला (दूरंदेशी) दूसरी उत्पन्ना समय के अनुसार झटपट विचार कार्य्य करने वाला तीसरी दीर्घसूत्री अर्थात् अपने कार्य्य के विषय में बहुत समय तक

विचार कर्त्ता इनमें दीर्घ-सूत्री बुद्धि अच्छी नहीं क्योंकि-दीर्घ-सोची के बहुत से कार्य्य विचार की सीमा के भीतर ही समाप्त होजाते हैं इसीलिये कहा है क्लीव (नपुंसक) परिश्रमहीन अर्थात् आलसी और दीर्घ सूत्री स्वभाव केस्त्री पुरुष कभी सुखी नहीं हो सक्ते। अतः जिनका स्वभाव ऐसा हो उन्हें बदलना चाहिये-लेकिन बेटी ! परिपक बुद्धि उन्हीं नर-नारियों की होसकेगी जिन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर नियमित काल तक गुरुके समीप विद्याध्यन कर अपना वैसाही आचरण बनाया है। इस लिये ग्रहस्थाश्रम में सुख भोगने की इच्छा रखने वालोंको प्रथम ब्रह्मचारी बन पूर्ण विद्वान हो ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये। मनु महाराजने भी ऐसाही कहा है।

"अविप्लुत-ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्"।

अर्थात् अखण्डित ब्रह्मचारी ही ग्रहस्थ बने ऐसाही अथर्ववेद मं० ३ का ६ सू० १३६ में कहा है।

संवननी समुष्पला दभ्रुकल्याणि संनुद।
अमूं च मां च संनुद समानं हृदयं कृधि॥

इसके उपरांत प्रत्येक भौतिक पदार्थ का ज्ञान कराने वाली दश इन्द्रियां और ग्यारहवां **मन** है बेटी ! मनुष्य की इन इन्द्रियों की शक्ति बड़ी प्रबल होती है तिसपर इन्द्रियों का शासन कर्त्ता मन और भी वायु के तुल्य शीघ्रगामी बलवान् एवं दृढ़ है-वह जैसा विचार करता है अन्य इन्द्रियां तुरन्त राज भक्त प्रजाकी भांति सहायका होती हैं-साथ ही जैसे गहरे गड्ढे में की वायु वैसी ही गन्धवाली होजाती है वैसे ही चन्चल प्रकृति वाला मन जैसे जैसे भावों को ग्रहण करता जाता हैं वैसा वैसा ही वह बनता जाता है। अतएव जो इन्द्रियों-सहित अपने **मन के सेवक** हैं अर्थात् अजितेन्द्रिय हैं वे निरन्तर सांसारिक क्षणिक अस्थाई, सुखों में जिनका परिणाम, अति भयंकर और दुखदायी होता है-फंसते हैं उनमें-ऐसी सामर्थ ही नहीं होती कि वे परिणाम के फलको जानते हुए भी उससे बच सकें, अतएव इन्द्रियों में फंसे हुए नरनारी संकटों में ही नहीं

पड़ते वरन् अपने अमूल्य जीवनको दुःखमय बना लेते हैं। क्योंकि अजितेन्द्रिय नरनारियोंमें लोभ, क्रोध, मोह, विधत्सा अकार्य-परतन्त्र मत्सरता, मद, शोक, ईर्षा, असूया, कुत्सा इन ग्यारह बलवान शत्रुओंकी उत्पत्ति हो जाती है। बेटी! संसार रूपीक्षेत्र के यह नुकीले कांटे हैं इनकी दुन-शार्य्य ठोकरों को खा कर मनुष्य अपने मनुष्यत्व को भूल जाता अथवा खो बैठता है। इनकी तीक्ष्ण नोकों से विद्ध हुए नरनारीअपने जीवन के प्रधान उद्देश्य से पृथक् हो जाते हैं। अथवा अपने श्रेयपथ से भ्रष्ट होजाते हैं। क्योंकि इनमें से एक लोभ ही सबका मूल है जिसका प्रभाव साधारण स्त्री पुरुषों की तो कौन कहे शास्त्र के जानने वाले पण्डितों की भी डवाँडोल कर देता है। और फिर ज्यों ज्यों उसका वेग प्रबल होता जाता है त्यों त्यों उसके सारे सुख स्वप्नवत् होते जाते हैं। क्योंकि बेटी! लोभ में फंसे हुए मनुष्यको धर्म अधर्म का विचार नहीं रहता, लोभी को कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं होता, वह अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिये अपने पिता सहोदरऔर अपने मालिक को भी मार डालता है। इनके किये हुए उपकारोंको भूल जाता है। इन के प्रेम और अपने धर्म्म के विचार को छोड़ ही देता है। वह तृणसे ढके हुए कुंए की भाँति बाहर मधुर और भीतर क्रूर होजाता है क्योंकि उसके लोभ ही से माया, अभिमान, गर्व, पराधीनता, निर्लज्जता, श्रीनाश धर्म्महीनता, चिंता अकीर्त्ति कंजूसी में रुचि, सुखमें अत्यन्त तृष्णा, कुकर्म्मों में प्रवृत्ति, विद्या का अहंकार सुन्दरता और ऐश्वर्य्य का अभिमान सब जीवों के विषय में बुरे विचारोंका रखना, हृदय से किसी का सन्मान न करना अविश्वास, शठता परधन हरण, परनारीगमन परनिन्दा, बलवती ईर्षा नजीतनेयोग्य मिथ्या व्यवहार, नीचता, अपनी बड़ाई एवं अभिमान से उत्पन्न होने वाले अनेक तरह के दोष उत्पन्न होजाते हैं। इस लिये कविने कहा है—

लोभ महारिपु देह में, सब दुःखों की खान।
पापमूल और प्राणहर, तजे ताहि मतिमान॥

यशी पुरुषके विपुल यश, गुणियों के गुणनेह।
तनक लोभ में नसत हैं, फूलपरे जिम देह॥

तिस पर तुर्रा यह है कि चाहे शरीर शिथिल होजाय परन्तु लोभ शिथिल नहीं होता। वरन् जैसे गहरे जल से युक्त नदियों के जलसे समुद्र नहीं भरा करता ठीक वैसेही सदा फल प्राप्त होने पर भी लोभी की इच्छायें समाप्त नहीं होतीं और इसके साथ ही जब २ लोभी की इच्छायें पूरी नहीं होती अथवा उसकी इच्छा का प्रतिबंधक कोई विघ्नकर्ता उपस्थित होजाता है-तब उसी समय लोभी के हृदय में क्रोध उपजता है। लोभी की भांति क्रोधी भी अपने क्रोध के झोंके में आकर अनेक पापकर्म करडालता है। वह मां को मारने वाप को फाँसी देने या इकलौते बालक का गला घोंटने में तरस नहीं खाता, और भी ऐसे बहुत से काम को बिगाड़ देता है जिनके लिये उसे स्वयं पीछे पछताना होता है। अनेक ऐसे कार्य्यों में हाथ डाल बैठता है जिनसे अपने माता पितादि का यश और कुलका बड़प्पन जाता रहता है। इतना नहीं वरन् वह क्रोध से, अंधाहो-अतुल धन और ऐश्वर्य्य का नाश कर, अपने जीवन को भी खोने में नहीं चूकता। इस लिये अत्यन्त क्रोधी पुरुषों से सब डरते रहते हैं। लेकिन क्रोधी के क्रोध से जितना दूसरे दुःखी नहीं होते उतना वह स्वयम् दुःखी होता है। क्रोधी अपने क्रोधसे जितना दूसरोंको नहीं जला सक्ता उससे कहीं अधिक अपने हृदय को जलाया करता है। क्रोधी जितना दूसरों का अपमान करता है उससे कई-गुना अधिक अपने मुखसे अपने घरकी छिपी हुई बातें कह कर अपने ही यश औरमान का नाश कर डालता है। क्रोध में फसे हुए नर नारी जितना दूसरों को दण्ड देना चाहते हैं उससे कितने ही गुणा अधिक आप स्वयम् दण्डित होजाते हैं। अर्थात् वे उस समय जिन उपायों द्वारा दूसरों को दण्डित करना चाहते हैं उन उपायों के करने में उनके धर्म्म, अर्थ, यश, मान, मर्य्यादा, का अवश्य ही नाश होजाता है। इसलिये कहा है।

क्रोधोहि शत्रुः प्रथमो नराणां, देहस्थितो देह-विनाशनाय।
यथास्थितः काष्ठगतोहि वन्हि, स एव वन्हिर्दहते हि काष्ठम्॥

अर्थात् शरीर में स्थित क्रोध शरीर के नाशके लिये नर नारियोंका पहला शत्रु है। जिस तरह लकड़ी में की अग्नि लकड़ीको ही जला देती है उसी तरह क्रोध मनुष्यों को जला देता है। श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं कि 'क्रोध से मोह उत्पन्न होता और मोह से स्मृति का नाश एवम् स्मृति नाश से बुद्धि नष्ट होजाती है औरबुद्धि के नाश से मनुष्य का नाश होजाता है।'

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद्बुद्धि नाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति॥

भगवद्गीता..

वेद में भी कहा गया है कि जो नरनारी काम क्रोध के नाना रूपों में फ़सजाते हैं वे अनेक पाप बन्धनों में पड़ कर शक्ति हीन और बुद्धिहीन होकर नाना कष्टों में को भोगते हैं। इस हेतु कहा है—

क्रोधो मूल मनर्थानां क्रोधः संसार बन्धनम्।
धर्मक्षय करः क्रोधस्तस्माद् क्रोधं विवर्जयेत्॥

अर्थात् अनर्थों का मूल संसार का बंधन धर्म्म का नाश करने वाला क्रोध ही है अतएव क्रोधको छोड़देना चाहिये। परन्तु पुत्री! जब तक क्रोधी के हृदय में क्षमाका भाव नहीं जगता अर्थात् विघ्न डालने वालों को क्षमा करने की रुचि नहीं होती तब तक क्रोधी का क्रोध शान्त नहीं होता। वरन् क्रोध और लोभ के मेलसे तथा अपनेसे बड़े शत्रुओं को किसी प्रकार से हानि पहुंचाने की सामर्थ्य न रहनेपर उस की प्रकृति में निंदा का भाव उत्पन्न होता है। अर्थात् वे उस समय अपने शत्रुओं की इधर उधर निन्दा करने लगते हैं परन्तु शत्रुगण यदि वास्तव में बुरे नहीं हैं, निंदा करने योग्य कार्य्य नहीं करते, और जन समुदाय उन्हें भला कह रहा है तब केवल उसके बुरा कहने से वे बुरे नहीं होजायेंगे। उसके निन्दा करने से उनके यश पर धूल नहीं पड़ेगी। वरनः साधारण जन निन्दा करने वाले को बुरा कहने लगते हैं और इस रीति से निंदक के

बचे खुचे यश का भी नाश होजाता है। परन्तु इतना होने पर जबतक सब जीवों के बीच दया करने के भाव का उदय नहीं होता जबतक सब प्राणियों पर दया दिखाने दया करने की रुचि नहीं होती तबतक निन्दा करने का स्वभाव नहीं जाता। पर निन्दा करने की इच्छा का नाश नहीं होता। इसके साथ ही लोभ,क्रोध और अभ्याससे, अकार्यपरतन्त्रता (विना काम दूसरों के आधीन पड़े रहना) प्रकट होती है। लेकिन यह दोप भी स्वभावके दयामय होते ही नष्ट होजाता है। इसके अतिरिक्त जब नर नारी ज्ञानसे शून्य होजाते हैं उस समय उनके उस अज्ञानसे 'मोह' की उत्पत्ति होती है पाप अथवा अधर्म्माचरण से इसकी दिन प्रतिदिन बढती होती है। क्रोध लोभ के तुल्य यह भी बलवान है मोह के वश हो नरनारी बहुत से कार्य्य अकार्य्य करने के कारण स्वयमेव अपनी हानि करने के लिये उद्यत होजाते और दुःख भोगते हैं। परन्तु मोह पाश बद्ध नर नारियों के अज्ञान नाश के लिये जबतक सत्संगति या सज्जन स्त्री पुरुषों की सद् शिक्षा नहीं मिलती तबतक मोह नाश नहीं होता। जो धर्म्म विरुद्ध शास्त्रों को देखते हैं उनमें विधित्सा अर्थात् कार्य के प्रारम्भ में व्यग्रता (व्याकुलता) उत्पन्न होती है। लेकिन तत्वज्ञान होने पर ऐसा स्वभाव नहीं रहता। सत्यके त्यागने तथा अनिष्ट विपयों की सेवा करने से मत्सरता (डाह) उपजती है और साधु-श्रेष्ठ सज्जनों की संगति से नाश हो जाती है। कुल मर्य्यादा और विद्या-ऐश्वर्य से मद उत्पन्न होता है। पुत्रि! काम, क्रोध, लोभ, मोहकी भांति विद्या ऐश्वर्यादि के मद में भरे हुए नरनारी भी यथार्थ सुखों को नहीं भोग सक्ते, क्योंकि उनके यहां न पूजने योग्य मुह देखी ठकुर सुहाती कहने वालोंका आदर सत्कार मान सन्मान न होता है। और पूजने योग्य जनोंका वैसा आदर सन्मान नहीं होता क्योंकि वे ठकुर सुहाती वार्तो के कहने वाले नहीं होते दूसरे 'मद' में चूर अर्थात् अभिमानमें भरे हुए नर नारी अपने सामने दूसरे की कोई हस्ती (हमरे सामने वह कितना बल रखता है) नहीं समझते इसलिये उनके यहाँ प्रतिदिन किसी न किसी से लड़ाई झगड़ा होता ही रहता है—औरऐसी दशा में सुख कहां इस प्रकार उनका एक अभिमान ही उनके सारे सुखों का नाशक होजाता है देखो कहा है।

जरा रूपं हरति हि धैर्य्य माशा,
मृत्युः प्राणान्धर्म्म-चर्य्यामसूया।
कामो ह्रियं वृत्त मनार्य सेवा,
क्रोधः श्रियं सर्व मेवाभिमानः॥

अर्थात् जैसे बुढ़पा रूप, आशा धैर्य्य, मृत्यु प्राण, निंदा धर्म्म, काम लज्जा, नीचों की सेवा वृत्ति और क्रोध लक्ष्मी का नाश करदेता है वैसे ही **अभिमान** सारे सुखों के साधनों को नष्ट कर देता है।

लेकिन जिस समय विद्या, ऐश्वर्य, कुल, मर्य्यादा की यथार्थता वे समझने लगते हैं इन सबके भीतर 'सार' क्या है यह जान लेते हैं उस समय उनके मद का नाश हो जाता है। समाज श्रेणी से गिरे हुए लोगों के भ्रम से द्वेष तथा विपरीत वचनों से **कुत्सा** (निन्दा) उपजती है, परस्पर बिना किसी भेदभाव से शिष्टाचार की अधिकता होते ही निन्दित स्वभाव का नाश हो जाता है। पुत्र पौत्रादि के वियोग होने पर 'शोक' उत्पन्न होता है लेकिन 'अब नहीं मिल सक्ता' इस प्रकार के विचार के दृढ़ होते ही शोक शांत होजाता है।

पुत्री! इस तरह इन ग्यारहों दोषों की अलग अलग उत्पत्ति और उनके नाश होने का कारण भी बतलाया परन्तु बुद्धिमानों का कहना है कि एक शान्ति रूपी महास्त्र द्वारा शरीरस्थ इन ग्यारहों दोषों को पराजित किया जा सक्ता है। क्योंकि शांति चुप चाप रहने और सबकी सुन लेने वा आलसी बनकर बैठे रहने को नहीं कहते बरन् **दृढ़ प्रतिज्ञा उद्देश्य** की **स्थिरता आत्म निर्भरता** और **आत्मबल** के समूह का नाम **शांति** है।

लेकिन शान्त प्रकृत और स्थिर बुद्धि वाला बनने के लिये इन्द्रियों के राजा मनको वश में करने की आवश्यकता है क्योंकि दूसरी सब इन्द्रियाँ मन के वश में हैं किन्तु उन इन्द्रियों में से मन किसी के भी वश में नहीं है।

मनो वशे ऽन्येह्य भवनस्म देवा।
मनस्तु नान्यस्य वशं समेति ॥ श्रीमद्भागवत.

और विचरती हुई इन्द्रियों के पीछे स्वतन्त्र **मन** बुद्धि का इस प्रकार हर लेता है जैसे वायु समुद्र में नौका को।

इसलिये वेद में कहा गया है :—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्प मस्तु ॥
यजु० अ० ३४ मं० १

जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा का पालन और विद्वानों की संगति करके वेग वाले पदार्थों में अति वेगवान ज्ञान के साधक एवं इन्द्रियों के प्रवृत्तक तथा जो जाग्रत अवस्था में दूर तक विहार करने एवं सुषुप्ति अवस्था में शान्त होने वाले सामर्थ्य युक्त **मन** को शुद्ध कर वश में करते हैं वे ही शुभाचारण में प्रवृत होसक्ते हैं।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतश्च यज्ज्योति रन्तरमृतम्प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्मक्रियते तन्मे मनः शिव सङ्कल्प मस्तु ॥

अन्तःकरण बुद्धि चित्त और अहङ्कार रूप वृत्ति वाला होकर चार प्रकार से बाहर भीतर प्रकाश करने वाला है नरनारियों के सब कर्म्मों के साधक उस अविनाशी **मन** को पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से निवृत्त कर न्याय एवं सत्य-आचरण में प्रवृत्त करो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि गृहीत ममृतेन सर्वम्। येनयज्ञ स्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जो, चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल तथा सब सृष्टि का जानने वाला कर्म्म उपासना और ज्ञान का साधक है उस **मन** को कल्याणयुक्त करो।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानान्तन्मे मनः शिव सङ्कल्प मस्तु ॥

जिस मन की स्वस्थता ही वेदादि विद्याओं का आधार एवं जिस में सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या एवं धर्म के आचरण से पवित्र करो।

सुषा रथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने नीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यद जिरञ्जविष्ठ तन्मे मनः शिव सङ्कल्प मस्तु ॥

जैसे सुन्दर चतुर गाड़ीवान लगामसे घोड़ों को अपने वशमें रखता है और अपनी इच्छानुसार चलाता है वैसे ही अपने मन के अनुकूल चलने वाले मनुष्य दुःखी होते हैं साथ ही जो मन को अपने वश में रखते हैं वे सुखी होते हैं इसलिये मनुष्यों को अपना मन वशमें रखना चाहियें। विद्वानों ने भी कहा है जबतक चित्त वश में है निश्चल है तब तक बल स्थित रहेगा चित्त के विकृत होतेही नरनारी बलक्षीण होजाते हैं।

चित्तायत्तं धातु बद्धं शरीरं नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्। तस्माद्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थेचित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति ॥

पुत्री, ! इन्द्रियों की प्रवृति स्वयं पाप की ओर चलायमान रहती है तिस पर जैसे विष में विष मिलने से वह अधिक विषैला बन कर प्राण घातक होजाता है उसी प्रकार, दुश्चरित्र नरनारियों के संग से चित्त में उठे हुए कुसंस्कारों से वह और भी पापों, कुकर्म्मों की ओर झुकने लगतीं है इस लिए जिस प्रकार चतुर और श्रेष्ठ वैद्य विष को विष से मार कर रोगी को सुखी करता है वैसेही विद्वान मनुष्य अपने इन्द्रिय दोषों को जितेन्द्रियता से नाश करे। हरबर्ट स्पेन्सर कहते हैं कि अपने आपको वश में रखने से मनुष्य पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त करसकता है।

महर्षि व्यासजी ने भी कहा है " वेदाधिगम का फल सत्य सत्या का फल दम अर्थात् बाह्य इन्द्रियों का निग्रह एवं दम का फल मोक्ष है अतएव इन्द्रियों सहित मन को वश में रखने के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रत के पालन करने का प्रण करना चाहिये क्योंकि–

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणाधिके पुंसिजनोऽनुरञ्जयते जनानुरागा प्रभवोऽहि सम्पदः ॥

अर्थात् जितेन्द्रियता के प्रभाव से विनय आती है, एवं विनय से ही गुणों का प्रकाश होता है, गुणों की अधिकता होने पर परस्पर प्रीति होती है, और मनुष्यों के अनुराग होने पर अनेक सम्पदाओं की प्राप्ती होती है। तथा विनय के विना अनेक गुण वाली विद्या की भी प्रतिष्ठा नहीं होती इसी लिये विनय से रहित मनुष्य धर्म्म अर्थ यश को भी प्राप्त नहीं करसक्ता।

गाढं गुणवतीविद्या नामुदेविनयं विना ।

इस लिये कहा है।

नभो भूषा पूषा कमलवन भूषा मधुकरो ।
वचो भूषा सत्यं वर विभव भूषा वितरणम् ।
मनो भूषा मैत्री मधु समय भूषा मनासिजा ।
सदो भूषा सूक्तिः सकल गुण भूषा च विनयः ॥

आकाश का चन्द्रमा, कमल-वन का सूर्य्य, वाणी का सत्य, ऐश्वर्य्य का दान, मन का मित्रता, वसंत का काम, सभा का श्रेष्ठ बोलना और सब गुणों का भूषण विनय है।

परन्तु वर्तमान काल में ब्रह्मचर्य्य की प्रथा के अभाव से उपरोक्त गुण वाले और पिछले ग्यारहों शत्रुओं के दमन करने में समर्थ नरनारी कहीं ही देखे जाते हैं। इसी कारण इस समय गृहस्थी जन न तो सांसारिक सुखों को भोगते और न परमार्थिक सुखों तक पहुँच सकते हैं।

क्योंकि शरीरस्थ इन ग्यारह शत्रुओं के दवाने से अन्यान्य साँसारिक शत्रुओं का स्वतः नाश होजाता है इस के अतिरिक्त इस नियमकी अवहेलना करने से सब से बड़ी दूसरी हानि यह हुई कि हम—तीव्र स्मरण शक्ति वाले बुद्धिवान् निरोग वलवान शरीर एवं दीर्घजीवी होनेकी अपेक्षा स्मरण शक्ति हीन मेधा रहित, निर्वल, और निस्तेज होकर अल्पायु में मरने लगे। और असमय मृत्यु का लक्ष्य वनना मनुष्य शरीर पाने की परम सिद्धि को खोना है अथवा नरतन पाने की यथार्थता—वा सुखों एवं अक्षय लाभ से वञ्चित रहजाना है इसी लिये महात्मा सुकरात ने कहा है कि मनुष्य के लिये पूर्ण आयु से पहले मरजाना पाप है। माननीय स्पेन्सर कहते है कि मनुष्य का सब से बड़ा कर्तव्य यह है कि उसका जीवन दीर्घ तथा लाभकारी कार्य्यों से पूर्ण हो।

प्राचीन काल में हमारे पुरुषाओं की आयु का औसत परिणाम सौ का था और १०० का आयुफल होने से ही चार आश्रमों के लिये उपयुक्त विभाग किये गये थे। परन्तु न तो इस समय हमारी आयु का औसत ही १०० का है और न आश्रमों की दशाही ठीक है। परन्तु बेटी! चारों आश्रमोंसे दीर्घ जीवनका वैसाही गाढ़ सम्बन्ध है—जैसा, कारण और कार्य्य का सृष्टि की उत्पत्ति के लिये प्रकृति और पुरुष का, अस्तु जब आश्रमोंकी दशा ठीक और सुव्यवस्थित होगी तो अवश्य ही आयुका परिणाम ऊँचा होगा क्योंकि विद्याध्ययनके साथ ब्रह्मचर्य्य अवस्था में वे नियम पालन कराये जाते हैं उस व्यवहार और उत्तम आचरणकी शिक्षा दी जाती थी जिन से भविष्य जीवन की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। इसके अतिरिक्त जो वालकपन से दीर्घ जीवन की आवश्यकता और दीर्घ जीवन वनाने वाले आरोग्यता देवी के आराध्य नियमों का पालन न करेंगे वे भविष्य में कभी वली और दीर्घायु वाले नहीं हो सक्ते। क्योंकि प्रकृति के नियम के विरुद्ध चलनाही जीवन के भाग को अपने हाथ से खोना है एक प्रसिद्ध डाक्टर ने कहा है "दीर्घ जीवन के लिये सफाई व्यायाम और मादक द्रव्यों के त्याग की प्रवल आवश्यकता

है" ब्रह्मचर्य्याश्रम में जाते ही बालक को अन्यान्य नियम पालनके साथ इनके त्याग की भी शिक्षा की जाती है।

अस्तु। अल्पायु की हानियों के भयंकर परिणाम को विचार योरप के प्रायः समग्र देशवासियों ने हमारे तत्ववेत्ता ऋषिगणों के बताये मार्गों अथवा नियमों पर चलना आरम्भ करदिया है वा किसी न किसी रूप से उनको ग्रहण किया है जिसका, आज यह प्रत्यक्ष फल हो रहा कि वे हमारी अपेक्षा कहीं अधिक विद्याव्यसनी, स्वच्छता प्रेमी, उच्च विचार युक्त बुद्धिमान सबल और निरोग शरीर तथा दीर्घायु वाले हो रहे हैं। देखो स्वीडन देशवासियों के पुरुषों का औसत आयु ५१ डेनमार्क ५० फ्रांस ४६ इंगलेण्ड ४४ संयुक्त राज्य अमेरिका ४४ इटली ४३ और भारत की २३ इसी प्रकार स्त्रियों में स्वीडन ५४ डेनमार्क ५४ फ्रांस ४९ इंगलैंड ४७ संयुक्त ४७ इटली ४३ भारत २४ है।

बताओ २३ वा २४ की आयु में हम अपनी संतान तथा कुटम्ब का कितना पालन वा सुधार कर सक्ते हैं। फिर देश जाति के हित में भाग लेना कैसा ? यही दशा रही तो अवश्य हमारे प्रतिपक्षियों के सुख साधनों की वृद्धि के साथ आयु का औसत भी बढ़ जायगा। और हम शनैः शनैः नाना सुखों को भोगते हुए और भी थोड़ी आयु मरने लगेंगे साथ ही जीवन के उस परम सुख से भी वञ्चित रहेंगे—क्योंकि जिनका शरीर पुष्ट है उनकी ही मानसिक शक्तियां विकसित होती हैं। उनकी बुद्धि बलवान और तेज युक्त होती है। वही सत्य बुद्धि वाले होसक्ते हैं। वे ही ईश्वर प्रेमी हो सक्ते हैं। उन्हीं की आत्मा में ईश्वर की भक्ति और दृढ़ उद्योग वा पुरुषार्थ को स्थान मिलता है। अधिक क्या मानसिक और आत्मिक बलको बढ़ाने और सामाजिक बलको परिपुष्ट तथा विस्तृत करने का प्रथम साधन और पहला आश्रम शरीर की पुष्टता और दृढ़ता है।

अतएव जो शरीर से बली हैं वे ही दूसरे बलों अथवा जीवन की प्रधान शक्तियों से युक्त होसक्ते हैं और जिस जाति में जिस देश में जिस राष्ट्र में ऐसे नर नारी होंगे वही उन्नति की लहर प्रवाहित होगी

और वही उन्नति स्थाई होगी लेकिन इस प्रकार की शारीरिकदृढ़ता और पुष्टता ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने से ही प्राप्त हो सक्ती है।

इसके अतिरिक्त आज भारतमें सर्वत्र स्वार्थान्धता और स्वार्थ लोलुपता का जाल बिछा हुआ है ढूंढने पर भी यहाँ त्यागी पण्डित और त्यागी शिक्षक त्यागी उपदेशक एवं साधू सन्यासी कहीं ही मिलेंगे कारण इन का विकास गृहस्थाश्रम में से होता है गृहस्थियों में से ही यह निकलते हैं अतः जैसी गृहस्थों की प्रकृति बुद्धि ज्ञान शक्ति आदि होगी वैसे ही यह भी होंगे तब कहो पहले यहां त्याग का महत्व जानने और उसका आदर करने वाले कितने स्वार्थ त्यागी गृहस्थ हैं ?

अतएव प्रिय पुत्री, शारीरिक मानसिक आत्मिक आदि सभी प्रकार से गृहस्थाश्रम की दशा सुधारने और संसार में सच्चा सुख पाने के लिये भावि गृह पति और पत्नि अथवा पुत्र पुत्रियों को ब्रह्मचर्य व्रत करना ही सर्वतोमुख्य कर्तव्य है। कहा है कि जिस प्रकार जहाज आदि के द्वारा समुद्र को पार कर सकते हैं उसी प्रकार संसार रूपी विस्तृत और दुस्तीर्य्य समुद्रकेपार करनेका आधार और आश्रम ब्रह्मचर्य्य हीहै।

इसलिये बेटी, मिथ्या खुशी में फंस न्यूनावस्था के विवाहसे अपने पुत्र पुत्रियों का बुद्धि विद्या, पौरुष, तेज, साहस गौरव ज्ञान सौन्दर्य अधिक क्या उनके पवित्र जीवन को ही नाश कर देने का प्रयत्न न करना प्रत्युत उनके सर्वाङ्ग को पुष्ट तथा गुणों का पूर्णतया विकसित तथा वास्तविक सुख शांति उपलब्ध करने के लिये सन्तानों को ब्रह्मचर्याश्रम में अवश्य प्रविष्ट करना योग्य है। एक वर्तमान काल में जिन गृहस्थों ने ब्रह्मचर्य रूपी व्रत नहीं किया उन्हें महाराजा मनु के कथनानुकूल ऋतुगामी होकर संतानोत्पत्ति करते हुए इन्द्रियों के क्षीणक सुख देने वाली विषय वासनाको छोड़ शरीर के बलको बढ़ाना चाहिये क्योंकि नाना विषयों में फंसी हुई चित्त वृत्ति के हटाने से जो बल इकट्ठा होता है उससे भी दीर्घ जीवन के साथ अनेक सुख मिल सकते हैं गृहस्थाश्रम की दशा में भारी परिवर्तन हो सकता है, दुख, शोक के स्थान पर परम शांति और सुख प्राप्त होसक्ता है।

गृहप्रबन्ध की उचित मीमांसा।

प्यारी पुत्री ! जैसे राज्य शासक को अपने शासन के दृढ़ और श्रेष्ठ बनानेके लिये अपनी सम्पूर्ण प्रजाको प्रसन्न एवं उनके दुःख दूर करने तथा प्रत्येक प्रकार से उन्नति के लिये अनेक प्रयत्न करने होते हैं वैसे ही घर में शांति और सुख की स्थिति के लिये गृहपति और पत्नि को भी अपने परिवार को प्रसन्न, एवं उसके सुख दुःख तथा उन्नति अवनति का विचार करना होता है। अतएव गृहशासन और राज्यशासन गृहप्रबंध और राज्य-प्रबंध में यदि कुछ भेद है तो केवल इतना कि गृहशासक के आधीन एक परिवार होता है और राज्यशासक के आधीन अनेक परिवार, इसलिये गृहशासक की अपेक्षा राज्य-शासक का कार्य्यक्षेत्र बहुत विस्तृत एवं अधिक दायित्व पूर्ण होता है। परन्तु राज्यप्रबंध करने वालों को इस विषय में सहायता वा सम्मति देने के लिये अनेकान छोटी बड़ी पुस्तकें कौंसलर मंत्री और महामंत्री आदि उपस्थित रहते हैं। जिनके सहारे वह अपना कार्य्य सुचारु रूप से चला सक्ता है।

परन्तु गृहशासन करनेवाले गृहपतिके लिये इन सब बातोंका अभाव नहीं तो कमी अवश्य है। इसके अतिरिक्त अज्ञानता वा मूर्खता के कारण गृहपति को अपने इस अधिकार का कुछ गर्व भी रहता है, जिसके कारण वह स्वयं कभी एक सुनियम और अच्छी परिपाटी के अनुसार अपने जीवन को बनाने की आवश्यकता नहीं समझते—अपने परिवार वालोंकी रुचि को जानना और उसको यथा समय पूर्ण करते रहना ज़रूरी नहीं जानते—अपने ही कुटुम्बीजनों पर उन्हें पूर्ण विश्वास नहीं होता और न वे स्वयं उनके विश्वास पात्र बनने की चेष्टा करते हैं अथवा ऐसा प्रयत्न भी करते रहने की ज़रूरत नहीं समझते जिससे कुटम्बी जनों के हृदयों में विश्वासिता का भाव जमा रहे—साथ ही अपने परिवार वालों की किसी भी विषय में सम्मति सुनने और जानने की आवश्यकता ही नहीं जानते प्रत्युत सदा अपने अधिकाररूपी अमोघ अस्त्र का प्रयोग मर्य्यादा के बाहर करते रहते हैं।

परन्तु बेटी, ऐसे शासन और व्यवहारका फ़ल यह होता है कि गृह-पति और पत्नि के साथ परिवार वालों का ही अनुराग प्रेम परस्पर सहा-नुभूति कम नहीं होती प्रत्युत पति पत्नि में भी वैसा प्रेम और अनुराग नहीं

रहता। इसके अतिरिक्त कुटुम्बी जन अपने को क्रीतदास एवं भाररूप समझने लगते हैं—बेटी! इस बुरे भाव के दृढ़ होजाने पर वे घरके हानि लाभकी चिन्तना नहीं करते वरन् उन्हें प्रतिक्षण अपना चौका चूल्हा अलग करनेकी इच्छा रहती है। बेटी आजकल जो बाप बेटोंऔर भाई भाइयोंसे जुदा होनेकी प्रथा प्रचलित है वह इसीका दुःखदाई परिणाम है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जिस प्रकार एक राजा के कुप्रबन्धसे सारी प्रजा दुःखी रहती और हर प्रकारसे राज्यकी अवनति होजातीहै वैसे ही गृह पति पत्नि के कुशासन और कुव्यवहार से वह अपना भी दुःखी होते और साथ ही अपने परिवार के शांति और सुख को नष्ट कर अंत में उसे छिन्न भिन्न कर देते हैं। जैसे राजा के कठोर शासन और सहानुभूति शून्य अधिकार के प्रयोग से संतप्त प्रजा का चित्त उत्तेजित होजाता है। और वह नियम भंग करने तथा राज्य को नाना प्रकार से हानि पहुंचाने के लिये तैय्यार होजाती है वैसेही गृह पति और पत्नि की अधिकार रूपी भयंकर मार से पीड़ित परिवार अपने शासकों की अवज्ञा करने लगता है और दूसरे शत्रु गण भी ऐसे सुअवसर से अपना प्रयोजन निकालते हैं— तब, घरका भेदी लंका ढावे वाली कहावत अक्षरशः घटित होजाती है इसलिये जैसे राज्य की अवनति का भार प्रजा पर नहीं होता वैसे ही परिवार में उत्पन्न हुई अशांति और लड़ाई झगड़े का दायित्व परिवार वालों पर नहीं रखा जा सक्ता प्रत्युत राज्य शासक के समान गृहशासक और शासिका के शासन का ही दोष है।

अतएव पुत्री! अपने पारवारिक जीवन को अच्छा और आदर्श जीवन बनाने के लिये गृह पति और पत्नि को स्वयं, अच्छे नियम और सुनियमित परिपाटी पर चलना चाहिये—क्योंकि यदि शासक शासिका स्वयं छली, कपटाचारी और मिथ्याभाषी हैं तो उनके परिवारवार वाले कभी निःश्च्छली निष्कपटी और सत्यवक्ता नहीं होसक्ते। इसके अतिरिक्त अपने परिवार के सभी स्त्री पुरुषों बच्चों तथा दास दासियों की प्रकृति पहचान प्रत्येकके चित्तको यथा शक्ति प्रसन्न रखने का यत्न करता रहे—सदा उनके दुःख सुख में तन मन धन से सच्ची सहानुभूति रखे—अपने परि-

वार वालों की रुचि पूर्ण करने के लिये सब प्रकार की सहायता और अवसर देता रहे—गृह शासन के प्रत्येक कार्य्य में सब की सम्मति प्रेम से सुने और सार को ग्रहण करने की चेष्टा करे साथ ही कभी घर में किसी तरह परस्पर मन मुटाव या लड़ाई होजाय तो अपने प्रेम मिश्रित निष्पक्ष न्याय से अपराधी को उचित दण्ड देते हुए घरमें जो शान्त प्रेमी हो उन-पर अधिक दवाव न डाले वरन् जिस प्रकार व्याधा नाना प्रकार की बो-लियों से पक्षियों को वशमें करता है उसी तरह गृहपति–पत्नि अपने दान मान सत्कार तथा सुव्यवहार से प्रसन्न रखते हुए सबको आधीन रखे—क्योंकि मनुष्य पशु नहींहै जो धारवाले अंकुशों से अथवा भय एवं आंतक से घिर कर वश में रहसके—प्रत्युत उसके लिये तो सुव्यवहार रूपी ही एक ऐसी पाश है जिससे बंधा हुआ वह प्रसन्नता से रहसक्ता है। सुव्यवहार रूपी ही एक ऐसा वल है जो कट्टरसे कट्टर शत्रुको भी मित्र बना देताहै। इसलिये बेटी! अपने व्यवहार को कभी न बिगड़ने दे क्योंकि निरंतर क-ठोर और निर्दयी व्यवहार करते रहने से मनुष्य का हृदय इतना संकीर्ण होजाता है कि उससे मनुष्यत्व और महत्व ए दोनों एक साथ लोप हो जाते हैं।

इसीलिये एक विद्वान् ने कहा है यदि संसार में तुम्हें अपना नाम करने की इच्छा है यदि तुम्हें अपना निर्मल यश फैलना है तो अपना व्यवहार अच्छा अपना स्वभाव और अपना विशाल हृदय नम्रता से भरो। जार्ज हरबर्ट का कहना है जगत् में महात्मा होने के लिये तुम्हें अपने उद्देश्यों को उन्नत अर्थात् ऊँचा और अपने व्यवहार को नीचा यानि नम्र बनाना चाहिये।

प्यारी पुत्री! यह बहुत ही ठीक कहा गया है साधारणतया भी जो इमारत बहुत ऊँची और विशाल बनाना होती है उसकी नींव भी बहुत गहरी लगाई जाती है।

वस्तुतः जिनका व्यवहार अच्छा और दयापूर्ण नम्रता से युक्त रहता है उन्हें संसार के सब स्थानों में आनन्द और विजय प्राप्त होती है। देखो मैथिली के स्वयंवर स्थान में परशुराम और लक्ष्मण का विवाद जिस ढंग

से हो रहा था यदि कुछ कालभी और चालू रहता तो अवश्य ही उसका परिणाम भयंकर होता, परन्तु श्रीरामजी ने उसके अंतिम फल को विचार अपनी स्वाभाविक नम्र नीति से काम लिया. प्रति. फल में उत्तप्त सूर्य्य तुल्य परशुराम सहज में ही शांत होगये। इसी प्रकार लीपज़िग की लड़ाई के पीछे योरूप विजेता वीर नैपोलियन को फ्रांस का राज्य पद त्याग सन्धि पत्र के अनुसार एल्वा नामी द्वीप में जाना पड़ा-बादही फ्रांस का अधिपति बूर्वा वंश का अठारहवां लुई बनायागया, फ्रांसीसी प्रजाकी यह नितांत इच्छा थी कि नैपोलियन ही उनका शासक हो इसीलिये विजित शक्तियों का उपरोक्त कार्य्य उन्हें बहुत बुरा लगा। इधर द्वीप में चलेजाने पर भी नई फ्रांसीसी सरकारने सन्धिपत्र की शर्तों को पूरा नहीं किया अतएव दसमास के पीछे सम्राट नैपोलियन—प्रजा के प्रति किये हुए अपने सुव्यवहार के भरोसे केवल ६०० सैनिकों को ले कर फ्रांस की ओर रवाना हुए ग्रीनोवल नामक स्थान पर फ्रांस के नये राजा की भेजी हुई सेना उनके मार्ग विरोध के लिये खड़ी थी।

युद्ध के प्रस्तुत सेना को देखकर वीर नैपोलियन अकेले ही निःशस्त्र हो अपने सैनिकों से बीस कदम आगे बढ़कर अपनी छाती को खोल सम्मुख खड़े सैनिकों को लक्ष्य करते हुए बोले " मेरे प्यारे वीरो! यदि आज तुम में से कोई भी अपने सम्राट् को मारने की इच्छा करता हो तो मारो मैं तुम्हारे हाथ से मरने को तैय्यार हूं। "

बेटी! सम्राट् के इन शब्दोंके प्रस्फुटित होते ही कुछ क्षण तक सेना में सन्नाटा परन्तु फिर ज़रा ही देर पीछे सारी की सारी सेना की बंदूकें गिरगई और सब के सब प्रेम पूर्वक अपने प्यारे सम्राट् से मिले। परस्पर प्रेम सम्भाषण समाप्त होजाने पर सम्राट् ने एक वृद्ध सैनिक से पूंछा कि " अपने सम्राट् के वध करने का साहस तुम्हें कैसे हुआ? "

उत्तर में उसने अपनी बिना भरी बंदूक को दिखाते हुए आँखों में आँसू भरकर कहा कि महाराज सबों की यही दशा है इनके द्वारा आपको तनिक भी हानि न पहुंच सक्ती थी।

इसके अनन्तर समाट् जहाँ जहाँ गये ऐसी ही घटनायें हुईं जिसका

अंतिम परिणाम यह हुआ कि नैपोलियन ने फ्रांस के शासन को ऐसी सरलता से हस्तगत करलिया उस प्रकार अथवा उस रीति पर नैपोलियन जैसी अवस्था में पड़े हुए अन्य राजाओं के लिये सिद्ध मनोरथ होना, असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य था–परन्तु नैपोलियन के दया युक्त स्वर्गीय सुव्यवहार ने उसके मार्ग से सारी कठिनाइयों को हटा लिया।

कर्मवीर मोहनदास कर्मचन्दजी गांधी का वक्तव्य है कि संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति पर जैसी विजय प्रेम और सद्व्यवहार द्वारा प्राप्त की जा सक्ती है वैसी विजय तेज तलवार के प्रयोग से नहीं।

अतएव पुत्री! अपने व्यवहार को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बनाने की चेष्टा करना सबके लिये आवश्यक है–साथ ही गृहपति और पत्नि को अपने अधिकारके झूठे गर्वको छोड़ सदा उसका प्रयोग मर्य्यादाके भीतर करना चाहिये क्योंकि बेटी! संसार के जितने भी कार्य्य हैं वे सब जब तक अपनी मर्य्यादा यानी नियम की सीमा के भीतर रहते हैं तबतक उनका फल सुखदायक विपरीत उन्हीं से दुःख मिलने लगता है।

वस्तुतः जगत् के सारे कार्य्यक्रम को ठीक और सुव्यवस्थित चलाने के लिये नियम वा मर्य्यादा ही ऐसी एक धारा है जिसके द्वारा वह सब अच्छे प्रकार सिद्ध होते रहते हैं। इसी हेतू जगत्के मान्य पुरुष मर्यादा की रक्षा में अपने तन, मन, धन अधिक क्या सर्वस्व तक को अर्पण कर देते हैं, क्योंकि छोटे इतरजन उन्हीं के अनुगामी होते हैं–अतः राजकुमार भरत ने इसके लिये ही सारे सुखों को तिलाञ्जली दे दी–महाराणा प्रताप ने अपने कुल की मर्य्यादा रक्षा के लिये यावज्जन्म अपार दुःखों को सहन किया—

अतएव जो सुख शांति और आनन्द मर्य्यादा की सीमा में कार्य्य करने वालों को मिल सक्ते हैं वह अन्यों को कदापि नहीं। इसका कारण यह है कि संसार में होने वाले नाना उपद्रवों और अनेक प्रकारके दुःखों का जन्म एवं अशांति की लौ–अधिकार के दुरुपयोग अथवा अनधिकार चेष्टा से ही निकलती है इस हेतू इससे बचे हुए गृहपति–पत्नि

के शासन और व्यवहार से परस्पर जितना विश्वास, प्रेम और अनुराग की वृद्धि होगी उतना ही शांति एवं सुखों का साम्राज्य बढ़ेगा। इसके अतिरिक्त—

(२) अपने आश्रित अन्य परिवार के नर नारी—बालक वृद्ध दास दासी आदि को सुखी रखना, उनके स्वत्वों (हक्कों) की रक्षा करते हुए उनके स्वत्व देते रहना किसी भाँति उन पर अन्याय न करना ही गृहपति पत्नि का सबसे बड़ा मुख्य धर्म्म है। क्योंकि हक़दारोंके हक्कोंको यथोचित न देने से अधिकतर झगड़े होते रहते हैं। जिससे सुख किसी प्रकार से भी नहीं मिल सक्ते। अतएव गृहपति पत्नि को प्रत्येक की स्वत्वरक्षा का विशेषतः ध्यान बनाये रखना चाहिये।

(३) जिन गृहपति पत्निकी जिह्वा में सरसता माधुर्य्यता, और सत्यता होती है तथा जो अपनी वचन रक्षा का सदा ध्यान रखते और पूर्वा पर विचार कर बोलते एवं वैसा ही आचरण करते अर्थात् अपने कायिक, वाचिक, मानसिक कार्य्यों को सत्य व्यवहार से युक्त रखते हैं उनके वचनों को सब शिर झुकाकर मानते हैं। क्योंकि सत्यता जीवन का परमोद्देश्य एवं न्याय उसका प्राण है बेटी! "मैं बनारस से आया हूं वा अमुक पुस्तक देख रहा हूं" बस केवल इतना कहने और इसी श्रेणी का आचरण करने वालों को सत्यवादी और सत्य व्यवहार कर्ता नहीं कह सक्ते। किंतु—समता, दम, मत्सरहीनता, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूयता, त्याग, ध्यान, धृति, आर्य्यत्व सब जीवों पर दया, अहिंसा इन तेरह सत्यरूप वा इन सत्यके अङ्गोंको जो धारण करते हैं, जो इनसे सम्पन्न होते हैं, यथार्थ में वे ही सत्यवादी और सत्यभाषी हैं। क्योंकि प्यारी पुत्री! इच्छा, द्वेष, काम और क्रोधके नष्ट होने पर अपने शत्रु के इष्ट और अनिष्ट विषयों में तुल्य दृष्टिको समता कहते हैं। इन्द्रियों के विषय में आसक्ति हीनता को दम दान और धर्म विषयक संयम का नाम ही अमात्सर्य्य है तथा इस पथमें चलने वाले

ही मत्सररहित होते हैं। प्रिय और अप्रिय वस्तु के लाभ तथा हानि होने पर जिस शक्ति के सहारे शिष्ट तथा साधु लोग उन भावों को भुला दया दर्शाते हैं उस अनुपम शक्ति का नाम ही क्षमा है। शान्तचित्त, स्थिर वचन वाले बुद्धिमान् पुरुष जिस शक्ति के सहारे कार्यों को सिद्ध करते हुए ग्लानि युक्त नहीं होते उसे ही लज्जा कहते हैं। धर्म अर्थके निमित्त लोक संग्रहके लिये (परस्पर मेल रखने) क्षमा करनेका नाम ही तितिक्षा है और जो धैर्यवान हैं वे ही तितिक्षा से युक्त हो सक्ते हैं। ममता और विषय वासना के परित्याग का नाम ही त्याग है। एवं जो राग द्वेष से रहित होते हैं वे ही त्यागी हो सक्ते हैं। सब जीवों के शुभ कार्यों को यत्न पूर्वक सिद्ध करते रहने का नाम ही आर्यता है जिसके द्वारा सुख एवं बड़े दुःख पड़ने पर भी अधिक चित्त दुःखित नहीं होता उसे ही धृति कहते हैं और जिन्होंने हर्ष, भय, क्रोध छोड़ दिया है वे ही धृति लाभ करने में समर्थ होते हैं। बेटी! इन तेरह अङ्गों से युक्त होने के कारण ही धर्म्म का अधार और इसका गुरुत्व सहस्रों अश्वमेधों से अधिक बताया गया है। इसलिये तेरह अँगों वाले सत्य के अतिरिक्त इस क्षण-भंगुर शरीर को पवित्र करने तथा सुफलता के साँचे में ढालने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं।

जिस समय शुद्ध अभ्यान्तर (हृदय मंदिर के भीतर) में सचाई की निर्मल ज्योति प्रकाश होता है तब ही जीवात्मा का कल्याण होजाता है

एक इंग्लिश नीतिकार ने कहा है कि कुवेर की विभूति से भी सचाई का मूल्य अधिक है। वस्तुतः बेटी! सत्य ही एक ऐसा पदार्थ है जिसका मूल्य नहीं आँका जासक्ता सत्य ही एक ऐसी पात्र है जिस में लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के सुख ठसाठस भरे हुए हैं सत्य ही एक ऐसा आश्रय है जिसके सहारे जगत की सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो सक्ती हैं जिसके बल पर संसार के सब स्थानों पर विजय प्राप्त हो सक्ती है। बेटी! वेद में कहा है कि जो सबके लिये सत्य-युक्त व्यव-

वहार करते हैं-सत्य सम्राश्रित आचरण बनाते हैं। वे ही श्रेष्ठ,सज्जन और महात्मा हैं, तभी तो इसकी रक्षा के लिये राजा दशरथ ने अपने प्यारे पुत्र, प्रजा परिवार चक्रवर्ती विस्तृत राज्य एवं प्राणों को भी त्याग दिया, इसी सत्य की रक्षा के लिये महाराजा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल की सेवा की इसी सत्य के पालन करने के लिये महाराजा शिवि ने अपने शरीर का मांस तक दे दिया—इसी सत्य की रक्षा के लिये महाराजा प्रह्लाद ने अपने एक मात्र पुत्र के प्राणों का भी मोह न किया—इसी सत्य के पालन अर्थ राजर्षि भीष्म ने जीवन परियत ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण किया इसी सत्य की रक्षा के लिये महाराजा युधिष्ठिर ने भाइयों के साथ में तेरह वर्ष तक वनके कष्टों को वीरता और धीरता से सहन किया। सन् १८२० के फैले हुए धार्मिक जगत के अधंकार में इसी सत्य का प्रकाश डालने लिये राजा राममोहन राय ने अपने जीवन को लगादिया। इसी सत्य के मालूम करने के लिये श्रद्धेय श्री ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर ने बंगाल के तत्कालीन छोटे लाट हालिडे साहब के अनुरोध करते रहने पर भी कालेज की प्रोफेसरी से इस्तीफा दे दिया, यावज्जन्म के लिये जन्म भूमि का निवास छोड़ा, और लक्षाधि पति होते हुए भी ऋण लेते रहे। इसी सत्य के प्रचार के लिये पूज्यास्पद श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा ल्यूथर ने सब प्रकार कष्टों को सहनकिया।

इसी सत्य की रक्षा और इसी सत्य विश्वासपर महात्मा सुक़रात को शूलीपर लटकते हुए किञ्चित भी दुःख प्रतीत नहीं हुआ इसी सत्य की रक्षा अथवा सत्य की विश्वासितापर मन्सूर को फांसी पर लटकता रोमनिवासी ब्रूनों का जीवत ही अपनी देह को अग्नि के समर्पणकर देना साधारण काम हुआ।

इसी सत्यनीति की रक्षाके लिये स्वनाम धन्य मि० गोखले ने रुगणावस्था में भी एफ्रीका की यात्रा की इसी सत्य व्यवहार के प्रचार के

लिये धर्मवीर मोहनदास कर्मचन्द गांधी ने अपने जीवन को अर्पण करदिया।

इसी सत्य के लिये भारत की अनेक देवियों ने कष्टों को सहनकिया और अब वर्तमान में भी अधः पतित भारत का मुख उज्वल करने के अर्थ दक्षिण एफ्रीका में घोरतर दुःखों का सामना कर अपने शुभ नाम को इतिहास के पृष्ठों पर सदा के लिये अमर करदिया। और अब भी जोजन इस तत्व का जितना पालन करेंगें वे उतना ही अपने कार्य्य और नाम को चिरस्थाई बनाने में समर्थ होंगें।

(४) जो गृहणी और गृहपती स्वयं अपना आचरण शुद्ध रख, करने योग्य कार्य्यों के विषय में भली भाँति पूर्वापर विचार कार्य आरंभ करते तथा दृढ़ता और धैर्य्यता के साथ उसमें वैसी ही गाढ़ प्रीति एवं उस कार्य से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक छोटी २ बात पर भी पूरा ध्यान रखते हैं वे ही सफल मनोरथ होने के साथ लाभ और यश प्राप्त करते हैं। परन्तु बहुधा नर नारी बड़ी २ बातों पर जैसी तत्परता से ध्यान देते हैं वैसा छोटी २ बातों पर नहीं। लेकिन इसी एक थोड़ी सी भूल के कारण उनके मनोरथ प्रायः असफल रहते और अधिक हानि उठाते हैं। इसलिये प्रत्येक सफलताभिलाषी को अपने कार्य्य की छोटी और बड़ी बातों पर एक सा ध्यान देना चाहिये। देखो छोटी २ ईंटों से बनी हुई नींव पर ही मकान की भव्य इमारत खड़ी होती है। असंख्य रेतके अवयवों से ही विस्तृत मरुस्थल की रचना होती है। अगणित सूक्ष्म परमाणुओं के मेल से ही इस पृथ्वी की सृष्टि होती है। छोटे छोटे तारागणों का सम्मिलित समूह ही रात्रि के घोर अंधकार में नरनारियों को प्रकाश देने के साथ आकाश को जगमगा देता है। बड़े २ केसोंमें सुयोग्य वकील शब्दों की बारीकियों के सहारे ही अपने आसामी को बचा लेता है। एक एक शब्द को विचार कर गद्य या पद्य बनाने वाला अपने काव्य को चित्ताकर्षक, ग्रन्थ की भाषा को ललित और रसमई बना लेता है। इसी तरह युद्ध में जरा सी सेनापती की भूल से कभी २ जय के स्थान पर पराजय होजाया करती है।

देखो एक स्थान पर लिखा है कि जब दाराशिकोह औरङ्गजेब से लड़ रहा था और दारा की जीत होने वाली थी, इसी बीच उसका हाथी भड़का और वह एक कपटी सर्दार के कहने से हाथी पर से उतर घोड़े पर सवार होगया—परन्तु फौजी सिपाहियों ने जाना कि बादशाह मारा गया, बस फिर क्या फ़ौज में भगदड़ मच गई, जिसका रोकना दारा और उसके सेनापतियों की शक्ति से बाहर होगया अंत में दारा को भी भागना पड़ा और जरासी ही भूल से विजय के स्थान पर पराजय प्राप्त हुई—जिसने उसके जीवन को भयानक दुःखों में डाल दिया। इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण मिल सक्ते हैं।

एक *इंगलिश ग्रन्थकार* ने कहा है कि "कितने ही गुणवान् मनुष्य छोटी २ बातों पर ध्यान न रखने वा अपने एक २ छोटे दोष के कारण प्रसिद्धि पाने से रहजाते और अपने अच्छे गुणों और सारी उत्तमता को खो बैठते हैं। एक इसके विपरीत अपने भीतर बाहर एकसा दृष्टि और तत्परता रखने वाले थोड़ी योग्यता के अप्रसिद्ध नरनारी सभ्य संसार के माननीय बन जाते हैं।" हेल्प साहब का कहना है "सफलता प्राप्त करने के लिये केवल परिश्रम की ही ज़रूरत नहीं किन्तु अपने कार्य्य से संबन्ध रखनेवाली छोटी२ बातोंपर प्रेमपूर्वक ध्यान रखनेकी प्रबल आवश्यकता है।

अतएव पुत्री! अपने कार्य्य के सम्पूर्ण अङ्ग उपाङ्गों पर एक सा ध्यानरखना औरनिर्भयहो विचार पूर्वक कठिन परिश्रम और उद्योगके साथ अपने कार्यमें अग्रसर होते रहना ही **सफलता** का **मूलमन्त्र** है। इस के साथ ही जो कार्य्य विना किसी उद्देश्यके निश्चित और स्थिर विचारकिये अथवा "किसी न किसी में सफलता अवश्य प्राप्त होगी केवल इसी आश्रय से एक साथ कई कामों को प्रारम्भ करदेते हैं। बेटी! ऐसे कार्य्य-कर्ताओं के लिये सफलता "**आकाश कुसुम**" तुल्य होजातीहै। अंत में वे हत मनोरथ हो निराशा के अन्धकार में पड़ अपनी जीवन की भावि उन्नति और उसके महत्व को खो देते हैं। इसलिये ऐसा कभी न करना चाहिये वरन प्रत्येक कार्य्य करने के पहले, लाभ हानिकी बात विचारने के पीछे अपनी **योग्यता** अपनी **अवस्था** और**शक्ति** अपने **कुल के गौरव**

अपनी जाति की मर्यादा अपने धर्म की दशा कोभी विचारकर देखना चाहिये, जिससे पीछे कार्य्य का परिणाम इनमें से किसी एक के लियेभी हानि दायक सिद्ध न हो क्योंकि कार्य्य के परिणाम से ही दूसरे नरनारी तुम्हारी समग्र जाति, धर्म, कुल की भली बुरी दशाकी योग्यताका अनुमान लगा लेते हैं। देखो इस विषय में मुझे एक दृष्टान्त स्मरण होता है— बेटी, एक बार एक बहरूपिये ने एक राज दर्बार में जा, अपने चुने हुए वेषों को दिखा अन्त में एक हजार रुपयों के देने की राजा से प्रार्थना की यद्यपि राजा उसके वेष विन्यास की चतुरता से प्रसन्न हो चुके थे. परन्तु और भी उसकी कुशलता, दक्षता बुद्धिमतादि की परीक्षा करने की इच्छा से उन्होंने कहा जब तक तुम मुझे कोई ऐसा रूप न दिखाओ, ' जिस से मेरे साथ मेरे दर्बारीगण भी तुम्हें न पहचान सकें" तब तक मैं तुम्हे इतना पारितोषिक नहीं दे सकता।

राजा की इस आज्ञा को सुन बहरूपिये ने कहा, अन्नदाता प्रभु! मेरे एक स्यानी लड़की है उसके विवाह के लिये ही रुपये की आवश्यक्ता थी परन्तु आप अभी प्रसन्न नहीं हुए अतएव आपकी आज्ञा अवश्य ही पालन करूंगा।

राजा, हम कहचुके यदि तुम्हारा रूप वैसाही होगा तो दर्बार अवश्य ही तुम्हें उचित पुरस्कार देगा। इसके पीछे बहरूपिया उचित अभिवादन कर चलागया। कुछ दिनों तक राजा और राज दर्बार को बहरूपिया की बात याद रही और बाट भी देखी परन्तु बहरूपिये का कोई रूप देखनेमें न आया। धीरे धीरे पूरा वर्ष बीतगया। इसके बाद ही उस नगर में एक पहुंचे हुए साधु के आने का संवाद फैला, साधु की कुटी शहर से एक मील बाहर जंगल में थी, इसलिये भक्तजनों को दर्शन के लिये वहीं जाना होता था। परन्तु ईश्वर की दया से साधु की प्रसिद्धी शीघ्र होगई भक्त भावुकजनों की संख्या बढ़ने लगी धीरे धीरे दर्बारीगणों में भी उसकी चर्चा फैली यही नहीं कई दर्बारी सभ्य जो अच्छे साधु जनों से मिलने के प्रेमी थे, मिलगये और साधु जी के स्वभाव की सौम्यता, शान्तिमूर्त्ति को देख सरल और शिक्षात्मक छोटे २ उपदेश वाक्यों को सुन प्रसन्न हो

लौटे। परन्तु उनके चित्त में यह विचार क्षणभर के लिये भी न हुआ कि साधु वेष में सहस्र रुपयों का मांगने वाला जानकी प्रसाद वहरूपिया छिपा हुआ है। अस्तु। महाराज के सामने भी यह वात चलाईगई-यही नहीं दर्वारी महाशयों ने इसरीति से कहा जिस से महाराज ने चलने के लिये पूर्ण विचार करलिया।

दूसरे दिन सायं लग भग चारवजे महाराज की सवारी सज्जितहुई। महाराजा साहव ने वहां पहुंचकर एक सोने के थालमें एक वढ़िया दुशाला पांचसौ अशर्फियोंके सहित भेंट किया। यह देख साधूजी ने कहा-राजन्! यह अशर्फियाँ ऐसे वढ़िया शाल दुशालों की भेंट हमारे योग्य नहीं साधुओं को कोपीन, वस्त्र और दो चार फलों को छोड़कर किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती उदर तृप्ति योग्य जो कुछ मिला उसेही खाकर ईश्वर भजन में मग्न रहना ही उचित काम है। इस चमकते हुए द्रव्य की आवश्यकता गृहस्थी लोगों के लिये है-हमने घरवार छोड़ तनमें भस्मी लगाई है ईश्वर भजन करने ईश्वर का गुण गाने उनके नामकी कीर्तन करने और उनके गुणों के अनुसार अपनी प्रकृति शुद्ध वनाने के लिये फिर यदि गृहस्थों की भांति यहां भी धनकी इच्छा करते और उसी पर मरते रहे तो क्या लाभ हुआ? राजन्! यदि यहां आकर भी हम वैसेही राग रंगों में फंसे रहे तो गृहस्थों और साधुओं में क्या विशेषता रहजायगी इसलिये इस भेंट को मैं अपने आशीर्वाद के सहित वापिस देता हूं। हां यदि आपकी इच्छा हो तो किसी पुण्य कार्य्य में लगादेवो।

राजा यद्यपि आपका कहना युक्ति संगतहै तो भी आप अपनी इच्छानुसार यदि किसी पुण्य जनक कार्य्य में लगा दें तो कोई हानि नहीं। दर्वार की इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कर लेते तो मैं परम उपकृत होता।

साधू राजन्! तुम बुद्धिमान हो एक वड़े राज्य का शासन कररहेहो, फिर ऐसा आग्रह करना तुम्हारे लिये शोभा नहीं देता। इसकी चमक संसारी जनों के चित्त को मोहित और प्रभावित करने वाली शक्ति को तुम जानते हो इसके फंदे में फंसे हुए नरनारी इसकी लालसा में क्या २ नहीं करते अतएव राजन्! संसारिक झगड़ों से मुक्त हुए जनोंजितना इस से दूर रहेंगे उनके लिये उतनाही आनन्द और कल्याण है इसी हेतु मैं

तुम्हारे इस अनुरोध को मानने में असमर्थ हूं। इसके पीछे कुछ समयतक राजा साहब साधूजी के साथ अन्यान्य बातें कर बिदाहो घरको आये और वह भेंट का समान पुण्य खाते में डलवा दिया। प्रातः काल वह कुटिया खाली होगई और दो चार दिन में नगर निवासियों ने जानलिया कि साधू जी कहीं चले गये।

दो मास के पीछे द्वारपाल ने राज दर्बार में आकर सूचना दी कि जानकी प्रसाद नामक बहरूपिया प्रभुकी सेवामें कुछ निवेदन करनेके लिये हाजिर है, स्वीकृति पाने पर कुछ मिनटों के भीतर वे हाजिर कियेगये। सामने आने पर राजाने देखा कि यह वही बहरूपिया है जिसे 'सहस्र' रुपये देने की प्रतिज्ञा की थी। अस्तु। उन्होंने कहा तुमने अब तक तो अपना कार्य्य पूरा किया नहीं फिर अब क्या कहना चाहते हो।

बहरूपिया—स्वामिन्! मैंने तो आपकी आज्ञा पालन की—

राजा ने आश्चर्य्य में होकर कहा—कब और कैसे हमें तो जरा भी ख़बर नहीं।

बहरूपिया—अन्नदाता! उस साधू का स्मरण कीजिये जिसकी भेंट के लिये आप स्वयम् दुशाला और अशर्फियां ले गये थे।

इसको सुनते ही दर्बारी लोगों के कान खड़े होगये, एक साथ सब की दृष्टि उस ओर चलीगई जो साधु से मिलचुके थे उन्होंने मन ही मन मिलान, करना आरम्भ करदिया। अस्तु थोड़ी देरमें राजा ने कहा कि भाई यदि तुम्हीने साधु वेष रखाथा तो उस समय तुमने उस भेंट को जिसमें सहस्र रुपयों के स्थान पर पाँच सौ अशर्फियां सोने का थाल दुशाला था क्यों नहीं लिया।

बहरूपिया, श्रीमहाराज! साधुओंका परमव्रत त्याग होताहै उनकी प्रतिष्ठा त्याग से ही होती है यही उनका जातीय चिन्ह है। वस्तुतः जो त्यागी नहीं, जो त्याग रूपी व्रतका पालन नहीं करता वह साधू नहीं, उसको साधु नामसे पुकारना "साधु" नामका उपहास करना है। अतएव यदि मैं उस समय आपकी बहुमूल्य भेटको ले लेता तो मेरे अकेले के स्वार्थ लाभ के कारण साधु जाति मात्रका अपमान होता, साधुओंका

मुख्य व्रतभंग और उनके परम धर्म का नाश होता। उनके यश पर कलंक का धब्बा लगजाता।

बहरूपिये की इस यथार्थ और युक्ति संगत बातको सुन सब ही बड़े, प्रसन्न हुए एवं इसी उपलक्ष्य में दो हजार का भारी पुरस्कार उन्हें दिया गया। अस्तु इस कथा के कहने का मुख्य तात्पर्य यह है कि हमको सर्वदा वे ही कार्य्य करने चाहिये जिनसे कुल का गौरव, पूर्व पुरुषाओं की मान की वृद्धि, जातिकी प्रतिष्ठा बढ़े, तुम्हारे धर्म्मकी गुरुता और दृढ़ता का ज्ञान दूसरों को हो।

बेटी! संसार में सदा, करने योग्य कार्य्य वही हैं जिनके करने के लिये किसी छिपे स्थान की जरूरत न हो जिनके विषयमें दूसरोंसे कहने में, भय और लज्जा न लगे, जिनके सर्व साधारण पर प्रकाशित होने के समय अथवा उसके पीछे मानसिक खेद और पश्चाताप न हो किसी प्रकार का लोकापवाद न उठाना पड़े।

महर्षि मनु बतलाते हैं नरनारियों को प्रयत्न पूर्वक वही कार्य्य करने चाहिये जिनसे अपनी आत्मा को भली भांति सन्तोष हो किसी प्रकार की उसमें, भय निराशा अथवा घबराहट न उठे।

यत्कर्मकुर्वतोऽस्यस्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।

साथ ही जो सांसारिक झगड़ों में अधिक नहीं फंसते उनका ही चित्त स्थिर रहता है और चित्त की स्थिरता से विचार ठीक रहते हैं एवं जिनके विचार दृढ़ और ठीक होते हैं। उनके कार्य्य ठीक तथा सुव्यवस्थित और सीमा तक पहुचने अर्थात् सफल होने वाले होते हैं। परन्तु मनमें विचारे हुए कार्य्यों को उस समय तक सब ओर प्रकाशित करना अच्छा नहीं जबतक भली भांति उस के साधन इकट्ठे होकर कार्य्य का प्रारम्भ न होजाय, क्योंकि ऐसा न करने पर बहुधा विघ्न आ उपस्थित होते हैं और उससे या तौ वह विचार ही छोड़ना पड़ता अथवा अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी पूर्व सम्भावना के अनुसार वैसा फल नहीं मिलता इसलिये यत्न से अपने विचारों को गुप्त रखना चाहिये।

(५) गृहपति पत्नि को दान शील पर निन्दा रहित जितेन्द्रिय होकर ऋत्विज, पुरोहित, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बालक, आचार्य्य, मामा, वैश्य स्वजन, सम्बन्धी, बान्धव, मौसा, पिता, बहन, सगोत्रा, स्त्रियों, भ्राता, भार्य्या पुत्र, कन्या, एवं सेवकों के साथ निष्प्रयोजन विवाद न करना चाहिये। क्योंकि बड़ा भाई पिता तुल्य भार्य्या पुत्र निज शरीर स्वरूप दास दासी निज परछाई के समान एवं कन्या अत्यन्त कृपापात्री है। ऋत्विक पुरोहित, आदि मान्यजनों की कोटी में हैं अतएव इनके साथ ही क्या अन्यान्यजनों से भी निष्प्रयोजन वाद विवाद न करें, क्योंकि बहुधा यह देखनें में आता है, कि वाद विवाद होते होते ऐसी बातें उत्पन्न होजाती हैं जो दोनों पक्षों के हृदयों में खटकने वाली होती हैं जिनका परिणाम यह होता है कि फिर प्रत्येक बात और कार्य्य में एक न एक झगड़ा उत्पन्न हो ही जाता है। एवं ऐसे २ छोटे झगड़ों के होते २ फिर बड़े २ उपद्रव होते हैं जिनमें लाखों खर्च होते, पुरुषार्थों का यश, मान मर्य्यादा, का नाश होजाता है। इतना ही नहीं प्रत्युत कितने ही खान्दान पीढ़ियों तकके लिये अलग होते देखेगये हैं। इसलिये यथा सम्भव इससे बचे और ऐसे समय को बुद्धिमानी से टालदे।

(६) प्रत्येक गृहपति या पत्निको अपनी अवस्थाके अनुसार कमसे कम दो विस्तरे फालतू रखने चाहिये-जिस से घर में आयेहुए अतिथियों महमानों को, तथा निर्धन व्यक्तियों को देकर परितृप्त कियाजासके बेटी! बहुधा यह देखने में आया है कि जिनके यहां कार्य्यों में आने वाले कपड़े बर्तन, गहना, और सवारी आदि का सञ्चय रहता है वे जरूरत आनेपर दूसरों को देनेमें बड़ा घमंड वा मिजाज दिखाते हैं विशेष साधारण और निर्धन व्यक्तियोंके लिये, और ऐसे को यदि देनेका वचन भी देदिया तो फिर समय पर टाल बाल बता देते हैं। प्यारी पुत्री! तुम्हें मालूम है कि पक्षी उसी वृक्षपर जाकर बैठते हैं जिनपर फल हों, मुसाफिर उसी पेड़के नीचे बैठकर विश्राम लेते हैं जिसकी डालियाँ सघन हो जिसके नीचे ठंडी छाया हो चिड़ियां वहीं बैठती, अथवा उसी स्थान में, घरमें अधिक जाती है जहां चूगा अर्थात् पेट भरने का सामान सुगमता और अधिकता से प्राप्त हो उसी प्रकार साधारण एवं निम्नश्रेणी वाले अपनी आवश्यकता-

ओं की पूर्ति के लिये उन्हीं भाग्यवानों के पास जाते हैं, जो ईश्वर की दया से इस योग्य हैं परन्तु ऐसा जानते और समझते हुए भी देनेके लिये नाहीं करदेना वा देनेको कहकर टालवाल वताना कितना बुरा है। प्रत्युत बेटी! तुम्हारे घर में अनेक वस्तुओं के संग्रह होने की सफलता इसी में है जबकि दूसरे चार व्यक्तियों का काम निकल जाये, उन वस्तुओं के स्वामी होने का गौरव उसी में है जबकि अन्य जनों की आवश्यकता तुम्हारे कारण सहज में पूरी होजाय। उन वस्तुओं के खरीदने और रक्षा करने में व्यय किये हुए धनका सदुपयोग अथवा महत्व उसी में है जबकि तुम्हारे पार पड़ोसियों और नगरनिवासियों को उन वस्तुओं की खोज में इधर उधर भटकना न पड़े अतएव पुत्री, इसका सदा ध्यान रखना चाहिये, सदा समानता की दृष्टि से जहांतक होसके तुम दूसरों की आवश्यकतायें सहज में ही पूर्ण करने की स्वयं सहायता करो, और अपनी सामर्थ्य से वाहर हो तो दूसरों से पूरी करानेका यत्न करो। स्मरण रखो मनुष्य की उन्नति में 'सहयोग' की शक्ति बलवान सहायक है।

(७) क्षत्रिय होकर कादर, सर्वभक्षी, ब्राह्मण कृषि वाणिज्य की चेष्टा से रहित वैश्य आलसी शूद्र, असद्वृत्त (बुरी जीविका द्वारा धन संचित करनेवाला) विद्वान, कुलीन वृत्तिहीन वेदज्ञ सत्य से भ्रष्ट, योगी विषयानुरागी मूर्खवक्ता, वेद का न जानने वाला योगी कर्जा देने वाला ऋणी और व्यभिचारी गृहपति सदा अप्रतिष्ठित होते और दुःख उठाते हैं। अतः ऐसे स्वभावों को छोड़देना उचित है।

(८) मूर्खों को माया, मृदुता, दम्भ, आलस्य, प्रमाद घेरते हैं परन्तु उत्तम पुरुष मृदुलता के अतिरिक्त सब को छोड़ देते हैं।

(९) सुयोग्य गृहपति और पत्नि अपने धन का नाश गृहणी (पत्नि पतिका) बुरा व्यवहार किसी नीचके द्वारा किये गये अपमान वा मानसिक दुःख को, यथा सम्भव चित्तमें गुप्तही रखे क्योंकि उपरोक्त प्रकार की वातों के प्रकाशित होने से यश नाश के साथ गृहपति पत्नि का लाघव प्रकट होता है।

(१०) छोटे २ बच्चों को ऐसी शिक्षा दें जो वृद्धावस्था तक के लिये उपयोगी हो क्योंकि वालक का हृदय धरती के समान होता है बचपन में जैसी भली बुरी शिक्षा का, भाव का, कामनाओं का, संस्कारों का बीज डालोगी भविष्यत में वे वैसे ही भाव और कामना एवं संस्कार वाले होंगे जीवन रहते वे भाव और कामना अर्थात् इच्छायें एवं संस्कार मिट नहीं सक्ते - इसलिये स्वयम् अपने आचरण व्यवहार पर बहुत ध्यान रखना चाहिये अनेक सम्मुख विषय वासना से युक्त वार्तालाप ऐसे चित्रों का दर्शन और पुस्तकों का पाठ नहीं कराना योग्य है-प्रत्युत अपने घरमें ऐसी कुसंस्कार पूर्ण वस्तुओं का संग्रह ही न करना चाहिये इस प्रकार अपना सुनियमित जीवन बना लेनेपर वालक सहजमें ही उस अच्छी परिपाटी पर चलने के अभ्यासी बनजायंगे और साधारण शिक्षा का अंत तुम्हारे कार्य्य कलाप एवं व्यवहारिक प्रणाली द्वारा होजायगा इसके साथ ही बच्चे को खेलने कूदने के लिये पूरी स्वतन्त्रतादी जानी चाहिये जिससे उनकी प्रकृति और मन विकसित हों परन्तु ऐसे समय देख रेख की परमावश्यकताहै क्योंकि स्वतन्त्रता के अवसर में वे कहीं ऐसे कार्य्य और खेल, न खेलने लगें जिनसे उनकी शारीरक, मानसिक आत्मिक हानि होने की सम्भावना हो।

(११) बेटी! हमारे घरों में आजकल यह प्रचलित परिपाटी देखी जाती है कि छोटे वालकों को प्रसन्न तथा अपना प्रेम दर्शाने के लिये, नित्य ही दो चार छै पैसे देते हैं और घर में आये हुए अतिथी तो, दो आने से लेकर दो चार रुपये तकपर पहुंचते हैं, यदि यह पैसे जमा करे तो अच्छा था परन्तु वालक इन पैसों को लेकर नौकरों, वा अपने खिलाने वालियों के साथ वाजार जाकर मन मानी वस्तु खरीद कर आपखाते और साथ में काट कपट कर उन के नौकर खाते हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष में इस में कोई दोष नहीं दिखाई नहीं देता परन्तु वास्तव में वालक की सभ्यता का नाश और आचार हीनता का सूत्रपात करना है, क्योंकि विना समय का विचार किये वालक अपने बड़ों से पैसे मांगने और ले लेनेके लिये जिद करते हैं किसी समय यह वर्ताव बुरा लगता है लेकिन बच्चे जिने नित्य का स्वभाव पड़ा हुवा है कब मानते हैं

दूसरे मनमानी अनाप शनाप वस्तुओं से पेट भरने के कारण वे रातदिन के रोगी निर्बल तथा मंद बुद्धि तथा अपव्ययी होने के साथ चोरी आदि दुर्गुणों के भी अभ्यासी बनजाते हैं। और आयु वृद्धि के साथ बढ़े हुए खर्च के लिये जब घर से मनोनीत रुपया पैसा नहीं मिलता तब दुष्टजन अपने फंदे में फांसलेते हैं इस प्रकार बेटी ! एक तुम्हारी अनुचित रीति से वे अपने भविष्य जीवन की उन्नति से हाथ धो बैठते हैं अतएव इस प्रकार का दुलार वास्तविक दुलार नहीं किंतु कोमल बालक के साथ घोर शत्रुताका व्यवहार करना है इसलिये बच्चों को इस प्रथा से सदैव बचाना चाहिये।

(१२) अन्यान्य रीतियों द्वारा बालक पर प्यार करने की अपेक्षा बच्चों को खुली हवा में रखने स्वच्छ कमरे में सुलाने साफ़ सादा समय पर भोजन खिलाने, पहरने ओढ़ने के कपड़ों को साफ रखने पर अधिक ध्यान देना चाहिये बेटी ! ऐसा ध्यान होनेपर तुम्हारा और दुलार भी सार्थक होगा। बालक सदा स्वस्थ और सबल होगा। रातदिन के रोगों में रुपया खर्च करने और व्यर्थ की चिंता से बचजाओगी।

(१३) बच्चेका अच्छा आचार व्यवहार बनाने उसको स्वच्छ और पवित्र रखने के लिये उनके खेलने कूदने जाने आने के स्थान, खिलाने वाले नोकरों चाकरनियों और साथ खेलने वाले बालकों की स्वच्छता पवित्रता आचार वा स्वभाव एवं प्रकृति पर पहले विचारना एवं नित्य प्रति एकबार दृष्टि डाललेना चाहिये क्योंकि बालक पर इन सब बातों का पूर्ण प्रभाव होता है।

(१४) बच्चेके किसी रोगमें फंसते ही उसे स्कूल आदिमें नहीं भेजना चाहिये और न दूसरे बच्चों के साथ खिलाना चाहिये क्योंकि तुम्हारे बच्चे की दूषित वायु का प्रभाव दूसरों की आरोग्यता परभी पड़ेगा और और उस भांति रोग की वृद्धि होगी सचमुच यदि प्रत्येक भारत ललना इसका ध्यान रखें तो बालक बहुत कम रोगी हों विशेषतः छूतसे होनेवाले रोगों की वृद्धि रुकही जाय।

(१५) बालकों को छोटी २ ऐतिहासिक घटनायें और शिक्षा युक्त अनेक लोरियां सुनानी चाहिये बेटी ! उनसे बालक के हृदयपर

तुम्हारे पूर्व पुरुषाओं का गौरव बुद्धिमानी और शूरवीरतादि का प्रभाव पड़ेगा, उच्चविचारों और उच्चभावों का जन्म होगा।

प्रत्येक गृहपति-पत्नि को वर्ष में खर्च होने योग्य फ़स्लकी सारी वस्तुएं फ़स्ल पर ही खरीद कर रख लेना चाहिये-इससे वर्ष भर तक वस्तुएं अच्छी खाने को मिलती-खर्च में किफ़ायत होती रोज़ रोज़ के लाने आदि के झगड़ों से खर्च होनें वाला समय बच सक्ता है।

(१६) जिस प्रकार कालका चक्र लौट पौट होता रहताहै वैसेही-सुख और दुःख का चक्र भी और वेटी ये दोनों दो प्रकार के हैं-शारीरिक वा मानसिक सुख, और शरीर वा मानसिक दुःख; इनमें शारीरक दुःख जनता के समक्ष और प्रत्यक्ष रहते हैं परन्तु मानसिक दुःख अन्तर जगत में छिपे रहते हैं। और गिने चुने जनही उनकी स्थिरता को जानते हैं।

तथापि चिंता की प्रज्वलित अग्नि से भी कई गुण अधिक मानसिक दुःख विनाशकारी होते हैं इसलिये शारीरिक दुःखों से जितना मनुष्य जीर्ण, निर्वल और दुर्वल तथा निस्तेज नहीं होता जितना मानसिक दुःखों से इस लिये कवि ने कहा है।

चिन्ता चिता द्वयोर्मध्येचिंताचैव गरीयसी।
चितादहति निर्जीवं चिंता दहति सजीवकम्॥

चिंता और चिता में चिंता ही बड़ी है क्योंकि चिता तो निर्जीव को जला देती, परन्तु चिंता-सजीवों को जलाया करती है। लेकिन तो भी हम केवल अपनी मूर्खता से अनेक निर्मूल कल्पनाओं पर चिंता के द्वारा मानसिक दुःखों को उत्पन्न करते हैं और घटनाओं पर विवेक द्वारा विचार न करने से वह चिंतायें बढ़ती रहती हैं। इस व्यापार का फल यह होता है कि अच्छा भोजन खाने, अच्छे घरमें रहने, अच्छे वस्त्रों के पहरने एवं दास दासियों से सेवित तथा अन्य सुख सामग्रियोंसे युक्त होने पर दुर्वल तन और निस्तेज हैं तथा बुद्धिहीन होजाते हैं। अतएव पुत्री! चिंताकी जाज्वल्यमान अग्नि से वचाने के लिये किसी भी वात पर अनेक मिथ्या कल्पनायें न कर स्वस्थ चित्त से उसपर विचार करना चाहिये इस प्रकार यदि चिंता के दुःख से दूर रहेंगे तो शारीरक दुःख इतना दुःखी नहीं

करसक्ते । अतएव सभी श्रेणी की स्थिति में सुखी रहने के इच्छा रखने वालों को सब से पहले इसपर ध्यान देना चाहिये ।

(१७) जो गृहपति और पत्नि अपने ज्ञात अज्ञात अपराधों के लिये अपने पूज्य माता, पिता, आचार्य्य और मित्र आदि से क्षमा द्वारा अपना प्रायश्चित करते हुए अपने छोटे २ दोषों को प्रतिदिन समूल नष्ट करते रहते हैं वे कभी बड़े २ विघ्नों में नहीं फंसते अतः उनका जीवन सुखमय होजाते हैं ।

(१८) जो गृहपति अपनी उन्नति के समय में अपने पूजनीय जनों का आदर, मान, सन्मान, सत्कार करने के साथ उनकी अज्ञानुसार चलते रहते हैं वे उन्नति के प्रकाश में यथेच्छ सुख और आनन्द भोगते हैं ।

(१६) जो सत्य संकल्पी, सत्यवादी और सत्यकर्म्मा होने के साथ सभी श्रेणी के नरनारि के दोषों अथवा भूलों की आलोचना पीछे करते हैं वे कभी दोषियों को नहीं सुधार सक्ते क्योंकि यह चुगली है और इस का प्रभाव उल्टा होता है इसलिये जो दोषी नरनारियों के सम्मुख ही एकांत में नम्रता पूर्वक निःसंकोच और यथार्थ टीका करते हुए समझाते हैं उनको भविष्य में सचेत रहने के लिये ध्यान दिलाते हैं वे स्वयम् सुखी होते और दूसरों को सुखी करते हैं ।

(२०) जो गृहपति—पत्नि अच्छे कुल में उत्पन्न शीलवान् धैर्य्ययुक्त प्रियवादी, विनयशील, उदारप्रकृति, विद्याव्यसनी, स्वपत्नि सेवी, संयमी, ईश्वर में भक्ति, मधुरभाषी छल दम्भरहित, गुरु आचार्य आदि बड़े जनों में भक्ति और नम्र व्यवहार कर्त्ता, गम्भीर प्रकृति पवित्राचार गुणों के रसिक, शास्त्रों से प्रीति, महानुभवजनों से मित्रता और निर्धनी होकर भी परहित करने वाले धार्मिक विद्वानजनों से प्रशंसित सज्जनों को अपना सहायक बना उनकी सम्मति के अनुसार कार्य्य करते हैं उन्हीं के सर्वदा मनोरथ सफल होते और वे, सुखी रहते हैं । इतनाही नहीं वरन् जिस तरह कमलके पत्ते में रखा हुआ पानी भी मोती की तरह मालूम होता है, जिस प्रकार मलयाचल की गन्ध से अन्य वृक्ष भी सुगंध वाले हो जाते हैं, वैसे ही सज्जनों के साथ और सहवास से बुरे स्वभाव वाले भी अच्छे होकर उन्नति को ही नहीं पाते वरन जैसे सोनेके साथ में काँच

भी मरकत मणि की भांति शोभित होता है सूर्य से शीशे में जलाने की शक्ति, उत्पन्न होजाती है वैसे ही उनकी सहायता से दुःसाध्य कामों को भी पूरा करलेते हैं।

> बुद्धिं वर्धयतिश्रियं वितनुते वैदग्धमामुञ्चति।
> श्रेयः पल्लव पत्यधानि दलपत्युन मलियतित्युन्दतिम्॥
> विज्ञानंपरि शोधयतित्युप चिनो त्युचैःकलाकौशलम्।
> किं किं ना रमते हरे खि कथा जरियं सतां सङ्गतिम्॥

साथ ही पुत्री धर्महीन दुष्ट स्वभावी चुगली खाने में सिद्ध हस्त होना ही जिनकी विद्या है, परदोष कहनाही जिनका भूषण है, पर दुःख देख हंसना ही जिन्होंने अपनी महत्वता सिद्ध कर रखी है, जो अपने तुल्य अन्य किसी को वाग्मि चतुर और बुद्धिमान् नहीं समझते, शुभकार्य में अपने तन, मन, धन तीनों को समर्पित कर छल छद्म रहित हो सम्मिलित नहीं होते, जो अपने वचनों को पूरा करने का ध्यान ही भुला देते हैं, परन्तु अन्यों से उनके वचनों को पूरा कराने की चेष्टा रखते हैं, ऐसी स्त्री पुरुषों से सम्मति लेना सहायक बनाना बात चीत राह रस्म और विवाह शादी का सम्बन्ध भी न करना चाहिये। क्योंकि संगति के गुण दोष आते ही हैं और वे लोग भी अपना कुछ न कुछ प्रभाव जमा ही देते हैं।

अतएव कवि ने कहा है :—

> दुर्जनेन सम सौख्यं प्रतिं चापि न कारयेत्।
> उष्णो दहति चाङ्गारः शीताय कृष्णायकाम्॥

दुर्जनों के साथ मित्रता और प्रीति भी न करें क्योंकि जलता हुआ अंगारा हाथ को जलाता और ठंडा हाथ को काला करता है।

प्रियपुत्री! संसार में आज तक केकई की बुद्धिमानी प्रसिद्ध है और स्त्री सुलभ कोमलाङ्गी होते हुए भी उसकी रणशूरता के लिये कहा जावे, लेकिन जब मंथरा ने आकर राम तिलक के साथ अपनी सम्मति कही तब रानी ने कहा :—

कौशिल्यासम सब महतारी, रामहिं सहज स्वभाव पियारी।
मोपर करहि सनेह विशेषी, मैं करि प्रीति परीक्षा देखी।
जो विधि जन्म देइ करि छोहू। होहु राम सिय पूत पतोहू॥
प्राण ते अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्हके तिलक क्षोभ कस तोरे॥

दोहा—भरत शपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हर्ष समय विस्मय करसि, कारण मोहिं सुनाउ॥

जेठ स्वामि सेवक लघुभाई। यह दिनकर कुलरीति सुहाई॥
रामतिलक जो साँचहु काली। देऊँ मांगु मन भावत आली॥

श्रीराम कौशिल्या के समान ही सब माताओं से प्रेम करते हैं—और मैंने परीक्षा कर देखा है श्रीमती कौशिल्या भी मुझ पर बहुत प्रेम करती हैं-विधाता इनका साथ न छुटावे और यदि जन्म दे तो राम सा पुत्र और सीतासी पुत्र वधू मिले—राम मुझे प्राणों से अधिक प्यारे हैं—फिर उनके तिलक से तुझे कैसे क्षोभ हुआ—तुझे भरत की शपथ है—तू कपट छोड़ इस हर्ष के समय दुःख करने का कारण सत्य २ कह—सूर्य्यकुल में बड़े को ही स्वामित्व पद दिया जाता है छोटे सब सेवक होते हैं—यदि कल श्रीराम के तिलक होने की बात सत्य है तो हे सुंदरी! मनोनीत वस्तु मुझ से मांग।

देखा—बुद्धिमती केकई के हृदय का भाव—लेकिन कुछ ही समय के अनन्तर वही केकई राजा से कहती है—

सुनहु प्राणपति भावत जीका। देहु एक वर भरतहि टीका॥

....

तापस वेष विशेष उदासी। चौदहवर्ष राम वनवासी॥

कितना आकाश पाताल का अन्तर है—इसी लिये कहा है।

कीचकी संगति मैल बढ़े अरु नीचकी संगति बुद्धि घटेजू।
कामिकी संगति काम बढ़े अरु क्रोध की संगति रार बढ़ेजू॥

लोभि की संगति लोभ बढ़ै परिवार की संगति मोह बढ़ैजू ॥
ऐते पर संग तजो हरिदास, आकाश के पंथ विमान चढ़ैजू ॥

प्यारी पुत्री ! जिस तरह बिच्छू समय पाते ही अपना डंक मार देता है उसी तरह दुर्जन जन प्रत्यक्ष में मिले रहते हैं परन्तु समय पाते ही अपना दांव ज़रूर खेलते हैं। इसलिये विष खाने पर ही प्राण नाशक होता है। परन्तु दुर्जन जन पद पद पर दुःखदाई होते हैं—यही नहीं जैसे मणि से युक्त भी सर्प भयंकर होता है ठीक उसी प्रकार विद्या से अलंकृत भी दुर्जन बुरा है। अतएव ऐसे स्त्री पुरुषों से सावधानता पूर्वक अलग रहते हुए जो गृहपति और पत्नि सदा अपने चित्त को धार्मिक विषयों में रत रख ज्ञान शील हो, पूर्वोक्त गुणों से युक्त सज्जन जनों के साथ, मित्रता कर शक्ति के अनुसार दान, मान, सत्कारादि से सबको तृप्त एवं संतोषित करते हैं उनपर कोई सांसारिक विपत्ति अपना प्रभाव नहीं डाल सक्ती। क्योंकि ऐसे सज्जन जन बड़े ऐश्वर्यवान् होने पर भी क्षमा सरलता, सुशीलता, दया और विनय को न छोड़ने वाले विवेकी विचारवान् एवं अपने नियम और व्रतों के पालन करने वाले होते हैं। अतएव वे उन्नति और अवनति तथा मध्यमावस्था होने पर भी न तो अपने मित्रों को छोड़ते, और न अपनी हितकारी सम्मति देने के साथ प्रत्येक प्रकार से सहायता करने में पीछे हटते हैं। वरन् जैसे वृक्ष, फल, पृथ्वी, अन्न, सूर्य्य ताप, चन्द्र शीतलता, समुद्र रत्न, पुष्प गंध, वायु जीवनशक्ति एवं जैसे मेघ बिना मांगे ही पानी देते हैं ठीक उसी प्रकार सज्जन पुरुष परहित में निःसंकोच अपने तन, मन, धन को समर्पित करते हैं। वे उपकार करने अथवा किसीके उद्धार करने के समय किसी अन्य के द्वारा कहेजाने की प्रतीक्षा नहीं करते। (अर्थात् वह जब कहेगा तब देखाजायगा) प्रत्युत घिसने से जैसे चन्दन सुगंध देता है, एवं जैसे २ ईख पेरी जाती है वैसे २ ही मीठा रस प्राप्त होता है, सोना जितना तपाया जाता है उतनाही वह विशेष कांति वाला होता हैं, वैसे ही सज्जन जन अन्यान्यजनों से बार बार सताये एवं दुःखित किये जाने पर भी अपने हित करने वाले स्वभाव को नहीं छोड़ते।

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनः चन्दनं चारु गन्धं।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकाण्डम् ॥
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं।
ना प्राणान्ते प्रकृति विकृतिर्जायते सज्जनानाम् ॥

(२१) अपनी मित्रता को चिरस्थाई बनाने के लिये मित्रों, सखी सहेलियों के साथ वादविवाद लेन देन यानी रुपये पैसे का व्यौहार न करे एवं यथा समय सहायता रूप दिये धन को वापिस लेने की इच्छा से कदापि न दे क्योंकि यदि वह फिरता न दे सका तो तुम्हारे हृदयको कष्ट होगा—इसलिये देनेसे प्रथम ही ऐसा सोच विचार अपनी अवस्थानुसार कार्य करे—साथ ही मित्रकी पत्नि (पति) से एकांत में वार्तालाप न करे।

इच्छेच्चेद्विपुलां मैत्रीं त्रीणि तत्र न कारयेत्।
वाग्वादमर्थ सम्बधं तत्पत्नि परिभाषणम् ॥

(२२) जो अपनी आत्मा तुल्य ही सब को देखते और वैसा ही आचरण करते तथा परधन, परस्त्री वा भूमि उत्तम सवारी इत्यादि वस्तुओं को तृणवत् समझ द्वेष बुद्धि को स्थान नहीं देते अर्थात् दूसरों के पुत्र पौत्र ऐश्वर्यादि वैभव को देख जलते नहीं हैं परमात्मा स्वयं उनको उन उन पदार्थों का स्वामी बना सुखी करते हैं। और जो दूसरे के वैभवको देख जलते हैं वे कभी सुखी नहीं होसक्ते। क्यों जलनकी आगसे जलते ही उनके सद्भाव नष्ट होजाते हैं और उनकी प्रवृत्ति अधर्मजनित कार्य्यों की ओर झुकजाती है। ऐसी अवस्था में उनकी इच्छाओं का पूरा होना एक ओर वे पिशाचिणी जलन की आग में जलते एवं जिस तरह ऊसर भूमि अन्न के उपजाने के अयोग्य होजाती है मुर्दे का मन कुछ भी नहीं कर सक्ता उसी तरह वह नाना दुःखों को भोगते हुए पाले पड़े वृक्ष की नाईं नष्ट होजाते हैं।

अथर्ववेद का० ७ सू० ४६ मं० २ में कहा है कि ईर्ष्यालु अर्थात् दूसरे की उन्नति को न देख सकने अन्यों के अभ्युदय को न सहनेवाला

मनुष्य आगके समान भीतर ही भीतर जलकर राखके तुल्य नाश होजाता है। खेद की बात है-कि यह अवगुण इस समय हमारी स्त्रीजाति के भीतर बहुत प्रबल होरहा है-वे, पास पड़ोसियों की कौन कहे अपनी सास, ननद, जिठानी, धौरानी, भावज आदि निकटस्थ सम्बन्धियों को सुन्दर वस्त्र अच्छे २ आभूषण उत्तम गृह में निवास, दास दासियों सेवित पुत्र, पौत्र पुत्रवधुओं से परिपूर्ण देख जलन की कठोर आग में जलने लगती हैं और धीरे इसका यह फल होता है कि परस्पर साझा न्यारा, हिस्सा बांट ही नहीं, फौजदारी और दीवानी तक की दौड़ होती है, एक दूसरे की जान के ग्राहक वन वर्षों वकीलों के द्वार की धूल झाड़ते, कचहरी के अमला मुन्शियों नकलनवीसों की चौवीसों घंटे खुशामद ही नहीं वरन् नक़दनारायण से मुट्ठी गरम करते २ स्वयं ठंडे होजाते हैं।

अतएव पुत्रि! यदि अधिक ऐश्वर्य की इच्छा हो यदि धर्म, सत्य, बल, लक्ष्मी के फल स्वरूप सुख भोगना चाहो तो वचन, मन, कर्म से सब प्राणियों के हितमें सत्पात्र एवं दुःखी जनों को दान संतप्त हृदयों को शांत करती हुई शीलवान बनो। क्योंकि इसलोक में कोई ऐसा कार्य्य नहीं जिसे दयायुक्त शीलवान मनुष्य सिद्ध न करसके।

इसलिये कहा है ऐश्वर्य का भूषण सुजनता, सज्जनता का वाणी, का संयम, ज्ञान का शांति, कुलका विनय, धनका सत्पात्र में व्यय करना तपका क्रोध रहित होना, बलवान का क्षमा, वाणी का सत्यसे युक्त होना वैसा ही परमभूषण है जैसे सुन्दर स्त्रियों की कमर का पतला होना तथा द्विजों का विद्या भूषण है परन्तु सब नर नारियों का भूषण शील है।

वचोहि सत्यं परमं विभूषणं यथाङ्गनाया कृषता कटौ तथा, द्विजस्य विद्यैव पुनस्तथा क्षमा शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम् ॥

इस हेतु वेदमें कहा है कि जो नरनारी निश्चित धर्म व्रत और शील को धारण करते हैं वे निश्चल सुख के अधिकारी होते हैं।

व्रतेनस्थो ध्रुव क्षेमा धर्म्मणा यात यज्जना।
निबर्हिषि स दक्षं सोम पीतये ॥ ऋ० मं० ५ अ० ५ सू० ७२ मं० २

इसलिये विंध्याटवीमें भूँखा और प्यासा मरजाना अच्छा है सर्प या तृण से भरे हुए कुए में गिरना अथवा गहरे जल की भँवर में डूब जाना श्रेष्ठ है परन्तु अच्छे कुल में उत्पन्न एवं विद्वान् होकर शील रहित होना अच्छा नहीं। क्योंकि जो नर नारी शीलवान होते हैं उनमें धर्म सत्य बल और लक्ष्मी स्वयं निवास करती हैं—साथ ही एक शील के छूटते ही सब स्वयं दूर होजाते हैं—इसलिये शील हीन मनुष्य प्रथम तो धन धान्य से परिपूर्ण नहीं होते और कदाचित् हो भी जायँ तो चिरकाल तक उसके भोगनेमें समर्थ नही होते। अतः बेटी, गृहस्थाश्रमीके लिये शीलवान् बनना बड़ा आवश्यक है।

(२३)जो गृहपति पर गृहस्थों से भोजन धन,वस्त्र,आभूषण माँगनेकी इच्छा करते हैं वे अनेक कष्ट उठाने के साथ संसार में निर्मल कीर्ति लाभ नहीं करसकते यही नहीं किंतु वे उस समय तक ही गुणी चतुर साधु स्वभावी श्रेष्ठाचारी, निःकलंक और मानी, कृतज्ञ, कवि, सुशील, धर्म्मपरायण शूरवीर और नम्रतादि गुणों से युक्त प्रतिष्ठित एवं प्रशंसित रहते हैं जबतक वे किसी से कुछ मांगते नहीं।

तावत्सर्वं गुणलयः पटुमतिः साधुः सतां वल्लभः।
शूराः सच्चरिता कलंक रहिता मानी कृतज्ञः कविः॥
दक्षो धर्म्मरतः सुशील गुणवान तावत्प्रतिष्ठान मिते।
यावन्निष्ठुर वज्रपात सदृशं देहीतिनो भाषते॥

अतएव अपनी प्रतिष्ठा कुलका गौरव स्थिर रखने एवं सुख प्राप्त करनेके लिये ऐसा स्वभाव बनाना वा ऐसी इच्छा न करना ही उत्तम है। विवाह आदि बड़े २ उत्सवों पर जरूरी वस्तुयें मँगाना बुरा नहीं। इसके अतिरिक्त बहुत से सेठ, धनी व्यक्ति अपने धनके मद से गर्वित हो रूखा मुख टेढ़ी दृष्टि कुटिल भौं कर निष्ठुर बोलते हैं। प्रिय पुत्री! ऐसे नर नारी सार्वजनिक हित के किसी बड़े कार्य्य को पूरा करके भी यश प्राप्त नहीं करसकते क्योंकि जो वचन रूपी बाण शरीर से बाहर होते हैं वे दूसरों के मर्म्मस्थान में लगते हैं तथा जीवन रहते

उनकी पीड़ा नहीं भूली जासक्ती। इसलिये विद्वानों ने धन पृथ्वी सुवर्ण आदि के बड़े २ दान देने के प्रतिपक्ष में उचित समय पर परोपकारी इच्छा से मधुर और दयार्द्र वाणी में कही हुई छोटी वक्तृता का महत्व अधिक बताया है। वाणी के आकर्षण से बड़े बड़े क्रोधित और मदमत्त शत्रु को भी एक बार वश में कर सक्ते हैं। इस लिये अच्छे वक्ता व्याख्यान देने वा कथा कहने वाले की संसार प्रशंसा और प्रतिष्ठा करता है। कहा है—

किमहारैः किम कंकणैः किम समैः कर्णावतंसैरलं।
केयूरैर्मणि कुंडलैरलमलं साडम्बरै रम्बरैः॥
पुंसा मेक मखण्डितं पुनरिदं मन्यामहे मण्डनं।
यन्निष्पीडितपारवणामृत करस्यन्दोमनः सूक्तयः॥

अर्थात् उत्तम सुगन्धवाले हारों, मणि मुक्ता जटित आभूषणों, तथा दर्शनीय कीमती वस्त्रों के पहरने से वैसी प्रतिष्ठा प्रशंसा यश और कीर्ति प्राप्त नहीं होती, जैसी मृदु और समयानुकूल उचित सम्भाषण करने से मनु अ० १० श्लोक ५८ में कहा है वैदिक अनुष्ठान से रहित हिंसकता और निष्ठुरता युक्त कठोर भाषण करने वाले नरनारियों से, कुल और जातिकी निन्दा होती है। अतएव पुत्री! किसी को कुछ न देने की अपेक्षा मीठे शब्दों में इन्कार करदेना अच्छा है परन्तु देते हुए दया शून्य क्रोध एवं घृणा से भरा हुआ व्यवहार करना अच्छा नहीं, इस आचरण से उनकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती क्योंकि यत्र तत्र प्रशंसा के फैलाने वाले मध्य और निम्न श्रेणी के नरनारी होते हैं—माननीय यानी संभ्रान्त व्यक्ति कभी २ ही किसी के आचरण व्यवहार की आलोचना करते हैं सो भी गिने चुने शब्दों में लेकिन साधारण स्थिति वाले समय पाते ही अपनी शक्ति के अनुसार बुरी या भली अथवा जैसा उनके साथ व्यवहार हो चुका उसी के मुताबिक कहडालते हैं अतः और कुछ न सही तो अपना यश बढ़ाने के लिये ही धन और अपने प्रभुत्व की बात को भूल अपने व्यवहार को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बनाने का ध्यान रखना चाहिये। देखो सन् १७८६ में एक बार किसी कार्य्य वश जर्मन सम्राट् द्वितीय जोजफ ब्रुसेल्स को गये। वे अपने निवास स्थान से प्रति

दिन वायु सेवन के लिये बाहर जाते थे एक दिन शामको जब वायु सेवन से महाराज लौट कर आरहे थे एकाएकी बड़ी जोर से हवा चल ने लगी पानी जोर से बरसने लगा मार्ग की कीचड़ से छप २ होने लगी–गाड़ी धीरे २ चलने लगी–इसी समय एक वृद्ध मनुष्य जो विचारा पुराने और फटे कपड़े पहने होने से शीत के मारे काँप रहा था, लकड़ी टेकता हुआ आया और दीनता से गाड़ी के साथ २ डग धरता हुआ बैठने के लिये स्थान देने की प्रार्थना करने लगा–सम्राट् ने विना किसी संकोच के तुरंत गाड़ी रुकवा वृद्ध को बैठा लिया–वृद्ध महाशय ने सम्राट् को एक साधारण रईस समझा और इसलिये वह खूब मनोनीत बातों से सम्राट् का चित्त प्रसन्न करने लगा। और सम्राट् ने भी अपने स्वभाव के अनुसार बराबर निःसंकोचता का व्यवहार किया कुछ काल में सम्राट् का डेरा आगया तब उन्होंने वृद्ध से पूंछा कि तुम्हारा घर किधर है वृद्ध ने बड़ी नम्रता से कहा-मेरा घर यहां से दूर है परन्तु पानी बंद होगया है इस लिये मैं चला जाऊंगा–साथ ही इतनी कृपा के लिये कृतज्ञता प्रकाश करते हुए गाड़ी से उतरने की चेष्टा करने लगा–यह देख सम्राट् ने तुरंत बैठाते हुए कहा–नहीं २ उतरने की कोई आवश्यकता नहीं गाड़ी ही घर पर पहुंचादेगी–और गाड़ी को उधर ही ले चलने का हुक्म दिया–

सम्राट् की गाड़ी शहर की छोटी गली के बीच जाते देख ब्रुसेल्स वासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ एवं सब बादशाह को उचित प्रकार से अभिवादन करने लगे। अब वृद्ध महामहिम जर्मन सम्राट् को अपने साथ बैठा जान बड़ा मनमें खुश और सम्राट् से अपने अनुचित वार्तालाप के लिये विनीत भाव से क्षमा मांगने लगा। सम्राट् जोजफ ने में आश्वासन देते हुए कहा आपने अपनी बातों से मेरा बहुत मनोरंजन किया इसके लिये मुझे आपका धन्यवाद देना चाहिये। अस्तु–घर आने पर वृद्ध अनेक आशीर्वाद देता हुआ उतर आया पीछे बादशाह अपने बंगले की ओर लौटगये। बेटी! ऐसे निरभिमानता और दयायुक्त व्यवहार से सम्राट् का क्या मान–प्रतिष्ठा का नाश होगया–नहीं नहीं सम्राट की प्रजा उनको और भी प्रेम की दृष्टि से देखने लगी वस्तुतः निरभिमानता ही उच्चता का लक्षण है।

हमारी राजराजेश्वरी विक्टोरिया का जीवन ऐसी अनेक घटनाओं से भरा हुआ है—वस्तुतः अन्यान्य शुभगुणों के साथ महारानी की अभिमान शून्यता प्रजाप्रिय होने के लिये सोने में सुगन्धवत हुई। बेटी सम्पूर्ण वृटेन और भारतवासी अपनी ऐसी महारानी को कभी नहीं भूल सक्ते।

लेकिन बड़े खेद की बात है कि हमारे सेठ साहूकारों में ऐसा स्वभाव बहुत कम पाया जाता है। बल्कि कहीं २ तो इतना बढ़ा हुआ देखा गया है कि सेठजी एक अपने गरीब सम्बन्धी से अमीर और सेठ रिश्तेदार जैसा व्यौहार करना अपनी प्रतिष्ठा एवं गौरव का नाश सझते हैं यही दशा उन के घरकी स्त्रियों की भी होती है प्रत्युत किसी दर्जे में अधिक, वे निर्धन और साधारण स्थिति वाले नातेदारको अपने यहां हर बात में नीचा दिखाने और लज्जित करने का अवसर देखती रहती है—मौका हाथ लगतेही मन माना कह सुन कर अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाती हैं वे मन से समझतीहैं कि हमने बहुत बड़ा और बहुत अच्छा काम किया। जब नातेदारों की यह दशा तो फिर अन्यों के लिये कहना ही क्या, साधारण श्रेणी की आई हुई महिलाओं से खुल कर वे दो बात करना भी पसंद नहीं करतीं—उनके बच्चों को, दया, और प्रेम शून्य दृष्टि से देखती हैं—उन्हें और उनके बच्चों को अपने अन्य सेठ साहूकार सम्बन्धियों के लिये तय्यार की हुई वस्तुएं उत्तम पदार्थ वैसी ही निःसंकोचता से देने और खिलाने की आवश्यकता कभी अनुभव नहीं करती प्रत्युत अच्छे धन वाले कुटम्बियों का खूब सत्कार होजानाही अपने प्रबंध की उत्तमता अपने धनके व्यय की सार्थकता और अपने कर्तव्य की इति समझ लेतीं हैं—बेटी! ऐसी ही व्यवहारिक लीलाओं को देखते हुए यहां यह बात प्रसिद्ध है "बड़ों और सेठों के घर छोटे और साधारण स्थिति वालों का आदर कैसा"?

वस्तुतः यह भेद भाव बहुत ही बुरा है, प्यारी पुत्री! बड़े आदमियों का एवं उनके बच्चों का आदर मान सन्मान सत्कार उनकी पद मर्यादा की लज्जा से, अनुरोध से, तुम आपही करती हो वा विवश होकर तुम्हें करना पड़ता है तब तुमने क्या किया? कर्तव्य पालन तो उस समय हो सक्ता है जब तुम्हारी दृष्टि से यह भेद दूर होजाय—तुम्हारा व्यवहार समा-

नता की सतह पर हो तुम दोनों को एकही कोटि का समझो। वस्तुतः बेटी! तुम्हारी प्रतिष्ठा तुम्हारे धन का गुरुत्व तुम्हारे कुल का गौरव इसी व्यवहार पर बढ़ सक्ता है—आशा है—देश के— धनी और प्रतिष्ठा सम्पन्न नरनारी अपने कर्तव्य को समझ कर— अपने स्वभाव को सुधार कर इस बुरी प्रथा को दूर करने की चेष्टा करेंगे।

(२४) संसार के कार्य-क्षेत्र में प्रति समय अनेक बातें और अनेक घटनायें होती हैं—जिनमें कभी प्रशंसा सूचक और कभी लज्जित एवं भर्त्सित होना पड़ता है। अतएव जब जुबानी, लेख बद्ध पत्र द्वारा किसी मनुष्य अथवा स्त्री की मार्फत तुम पर लाञ्छन लगा दिया जाय तब उसी समय जुबानी लेख द्वारा पत्रोत्तर से उस लाञ्छन का उत्तर न दो क्योंकि इसप्रकार की बातों के सुनने से अवश्य ही चित्त में क्रोध उपजता है मन जले अंगार के समान क्रोध की आग से जलने लगता है—ठीक रीति पर विचार शक्ति काम नहीं देती विवेचना लोपसी हो जाती है-इसलिये हित अहित का ज्ञान नहीं रहता अतः उस समय का दिया हुआ उत्तर कदापि ठीक नहीं होसक्ता और उस समय पर कही हुई बातों के लिये अवश्यही पछताना होगा। अतएव जहाँ तक हो ऐसे प्रकरणों पर देरी से धीरता से विचार से उत्तर देने का स्वभाव बनाओ।

(२५) प्रियपुत्री! जिसतरह उत्तम मध्यम तीन श्रेणी के नरनारी होते हैं उसी प्रकार इन लोगों के बोलने वार्तालापकरने के भी तीनप्रकार हैं। एक बोलनाही पसंद नहीं करते, दूसरे थोड़ीसी बातको बड़े विचारसे, तीसरी श्रेणीके साधारण रूपसे अर्थात् न बहुत विस्तारसे न संक्षेपसे बात करने वालेहैं। इनमें जो अधिक बोलनाही पसंद नहीं करते उनसे किसी२ विषय में बात पूछते २ आदमी तंग आजाता है—और किसी २ समय बार २ पूछने पर मतलब की बात मालूम नहीं होती। साथही यदि कोई बड़े सम्माननीय व्यक्ति हुए तो पूछने वाले को पूरी बात बिना जाने ही अपना विचार छोड़ना पड़ता है और उस बात का आशय जानने वाले सेठजी के किसी मुख्य कर्मचारी की सहारा लेना पड़ता है। लेकिन इस अवस्था में कभी २ दोनों को ही बड़ी हानियां उठानी पड़ती है। इसीलिये इस प्रकार का वार्तालाप करना ठीक नहीं और इसी प्रकार

तनिक सी बात को बड़े विस्तार से कहने वालों की बात को सुनते २ आदमी ऊब जाते हैं तब कहीं मतलब मिलता है जैसे-क्या आप त्रिभोई जरूर ही जायेंगे ? जाने वाले ने कहा हां-तब बड़ी अच्छी बात है मैं भी वहां जाने का इरादा रखता हूं लेकिन ठीक नहीं कहसक्ता आपको मिलूं या नहीं लेकिन देखिये आपकी बड़ी कृपा होगी जो वहां मेरी मौसी के यहां से मेरी बहन के कपड़े लेते आयेंगे वह विवाह में गई थी पर समझ की खूबी से वह उन्हें भूल आई-समझा बेटी, इतनी लम्बी बात के कहने का मतलब सिर्फ यह था कि "विवाह में भूले हुए बहन के कपड़े मेरी मौसी के यहां से लेते आवें" इतना भर न कह कर उन्होंने उसे कितना तूल दिया-तिस पर कदाचित जाने वाला अपनी गाड़ी में बैठजाय, और रेल के छूटने का समय करीब आगया हो उस समय उन्होंने तूलतमाल से कहना शुरू किया-पस तुम समझसक्ती हो कि कहने वाले का उद्देश्य कहांतक सिद्ध होगा इस लिये संकेत से या बहुत ही थोड़ा बोलना जितना बुरा तथा हानिकारक है, उतना ही जरासी बात को बहुत उठा कर कहने से समय को नष्ट करने के साथ सुनने वालों को दिक करना बुरा है। लेकिन बहुतसे नरनारी इस बुराई को बड़ी गौरव की बात समझते हैं-इसके साथ अधिकांश व्यक्तियों का यह भी स्वभाव होता है कि किसी के विषय में सुनी हुई अच्छी या बुरी बात को ज्यों की त्यों दूसरों से कह देते हैं उस समय वे इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रखते और न पहले से ही इस विषय में विचार करते हैं कि उस बात में कौनसा अंश कहने योग्य है कौनसा नहीं वरन जिस तरह चित्र बनाने वाला शरीर के सम्पूर्ण अंगों को ज्योंका त्यों उतार लेता है ठीक ऐसे व्यक्तियों को भी हर किसीसे जैसी की तैसी बात कहने में ही आनन्द आता है। बेटी ऐसे नर नारियों का मुख, मुख नहीं वरन फूटा हुआ बर्तन समझो जैसे फूटे हुए बर्तन के पेट में जरा भी पानी नहीं ठहरता वैसे ही इन के पेट में भी कोई बात नहीं ठहरती-ऐसे नरनारियों का कुछ भी मूल्य नहीं-क्योंकि ऐसे स्वभाववाले अपनी करतूत से परस्पर कलह का बीज बोने का कारण बनजाते हैं। क्योंकि पुत्री ! संसार में रहते हुए प्रतिदिन अनेक नरनारियों के राह रस्म

चाल ढाल नीति व्यवहार के विषय में बुरी भली सबही प्रकार की बातें सुनने में आती हैं—अब उनमें कितना सत्य का अंश है—कौन २ बात ठीक है—यह सब बिना सोचे-विचारे इन बातों की ठीक तौर से जांच किये बिना ही सबसे वैसा ही कहदेना—बड़ी मूर्खता है—क्योंकि बेटी ! कहने के पीछे यदि मालूम हुआ कि फलां बात झूठी है—योंही गप्प उड़ादी—तब कहने वाले को अवश्य ही पछतावा होगा क्योंकि अब उन लोगोंके हृदयों से उस बात को निकाल देना—उस विषय को भुलादेना उसकी सामर्थ्य से बाहर है। इसके अतिरिक्त घरमें कितने ही नरनारियों के साथ जीवन की प्रत्येक घड़ी का लगाव रहता है और इस समय के भीतर कितने विषय और कितनी तरह की बातें होजाती हैं—उसका हिसाब नहीं लगाया जासक्ता। परन्तु उनमें बहुतसी ऐसी बातें होती हैं जो किसी खास मौके पर चुने हुए नर नारियों से कही जासक्ती हैं और कुछ का कुछ अंश सब से कहसक्ते हैं-साथ ही कुछ बिल्कुल छिपा डालने के ही योग्य होती हैं। लेकिन इस प्रकार के 'विभाग' का महत्व न समझ, अर्थात् सब धान बावन पंसेरी के हिसाब से बेच देनेकी बुद्धि रखने वाले नरनारी ऐसा नहीं करते। जिससे घरमें एक गोल माल अथवा झगड़ा इस कारण भी होता रहता है और बाहरके नरनारी समयके अनुसार अपना २ प्रयोजन सिद्ध करते हैं। इसलिये समयानुकूल क्या और कितना कहना ठीक होगा इसको खूब सोच विचार कर बोलना चाहिये, इसके अतिरिक्त जब कोई दुःखी व्यक्ति अपनी दुःख कथा कहने या सुनाने आवे तब गृहपति वा पत्नि को उचित है कि उस समय प्रेम और ध्यान से उसकी बातें सुने और यदि उस विषय में स्वयं सहायता करने में असमर्थ हो तो अपनी स्पष्ट सम्मति देते हुए साफ इन्कार करदे जिससे वह दूसरे किसी व्यक्ति से सहायता मांगले परंतु प्रेम पूर्वक सुनने तक के लिये समय देने में संकीर्णता का व्यवहार न करे-हमने देखा है कि बहुत से गृहपति—पत्नी दुखी की आत्म कहानी सुननेकी अपेक्षा अपनी गृहकथा सुनाने लगते हैं—बेटी, यह बहुत बुरा है—लेकिन इससे भी बुरा-सहायता करने के लिये झूठा आश्वासन देना है अनेक व्यक्ति पहले बड़े लम्बे चौड़े शब्दों में सहायता का वचन देते हैं यही नहीं प्रत्युत अपना धन-जन एवं अन्य सभी बलों से उस के

दुःख त्राण करने की हामी भर लेते हैं लेकिन उस दुःखी व्यक्ति के आंख ओझल होते ही उस विषय को उस दिन तक भुलाये रहते हैं जब तक वह व्यक्ति पुनर्वार आकर सहायता के लिये अथवा-उनके वचनके पूरा करने का स्मरण न दिलावे-फिर याचना न करें-पर बेटी ? उसके लिये तैय्यार न होने से वे अब ऐसे सिटपिटाते हैं-ऐसे शब्दों में अपनी असमर्थता मकट करते हैं-जिनका शाब्दिक वर्णन करना कठिन है लेकिन तुम विचार सकतीहो कि उस समय उस दुःखाद्रहृदय व्यक्ति की क्या दशा होगी—पर उन्हें इस बात का ध्यान कहां—फल यह होता है कि वे निर्बल व्यक्ति सदा के लिये अपने हृदय में वैर भाव को स्थान दे लेते हैं—और उनके किसी मामले के उपस्थित होते ही-प्रकट में दोस्ताना, मैत्री का व्यवहार प्रगट करते हुए भी उनकी आन्तरिक चेष्टा और ही रहती है जैसा उचित था उस मनोयोग से वे कभी काम नहीं करते-परिणाम यह होता है कि अब उनका वह कार्य-उस मामले का रूप ही कुछ और होजाता है और इस प्रकार वे अपना मनोरथ पूरा कर चित्त शांत करते हैं।

अतएव प्यारी पुत्री ! कार्य्य क्षेत्र में अपने ही स्वभाव से शत्रुओं अथवा-वैर-विद्रोह की उत्पत्ति वा परस्पर की कलह एवं फूट की जड़ जमाने के लिये ऐसा स्वभाव बहुतही बुरा है। साथही अपने यहां जब कभी किसी लड़ाई झगड़े अथवा मुकद्दमात का प्रसंग आपड़े तो ऐसे चापूलीसी और हां हुजूरी का दम भरने वाले नर नारियों की सम्मति पर ध्यान न दे क्योंकि प्रत्यक्ष में उनकी सलाह सुखद और सरल मालूम होती है परन्तु निश्चय जानो उस का परिणाम भयंकर ही होगा अतएव उपरोक्त प्रकार के नर नारियों की बातों को सुनते हुए अपने पुराने विश्वासी सदा हित करने वाले अनुभवी जनों की सम्मति पर स्वयं खूब विचार कार्य्य करो। लेकिन प्रायः लड़ाई आदि में दोनों ओर धन नाश होने के साथ प्राण नाश भी होता है एवं अपने घर के पुरुषों के नाश से अपना बल पुरुषार्थ, धन, ऐश्वर्य, यश का प्रकाश, बड़प्पन आदि सभी बातों का नाश होजाता है देखो घरकी फूट से लंका को रामने जय किया रावण का प्राण गया। दुर्योधन और युधिष्ठिर की घरू विग्रह का फल महाभारत का युद्ध था। पृथ्वीराज और जयचंद के गृही द्वेषने भारत में

यवन राज्य के आसन जमाये-बेटी ऐसे अनेक बड़े २ उदाहरण इतिहास से दिये जा सक्ते हैं छोटी छोटी घटनायें तौ नित्य ही देखने में आती हैं। अतएव दो चार उल्टी सीधी सुन ले, और आर्थिक हानि सहन करले परंतु लड़ाई का मूल न पड़ने दे। क्योंकि जिसके कुटम्बी एवं अन्यान्य जन हृदय से सहायता करते हैं उस गृहस्थ की सदा बढ़ती होती है।

(२६) यदि किसी काम को तुम अपने देश वासियों के कल्याण अथवा लाभकी इच्छा से कर रहीहो तौ अन्य जनोंकी बुरी किम्वदन्तियों और मूर्ख अथवा वे सभ्य जिन्होंने तुम्हारे उद्देश्य को भली भांति नहीं समझा उनकी अनुचित टीका टिप्पणियों वा आलोचनाओं पर किञ्चित् भी ध्यान न दो और केवल ऐसे ही कारणों से अपने हाथ को उस पवित्र कार्य्य से कदापि न खींचो, बेटी! सत्कार्य्यों में ऐसी बुराइयां कभी विघ्न नहीं डाल सक्तीं, कठिन विघ्नों के पार करने पर ही सफलता मिलती है लौकिक विषयों से भीषण संग्राम करने पर ही चरित्र निर्मलता की परीक्षा पास कर मिलती है हां इसके लिये अपने चित्त को शांत रखना अपने स्वभाव को सौम्य तथा नम्र बनाये रखना परम आवश्यक है। इस परिपाटी पर कार्य्य करते हुए यह सम्भव है कि तत् विषयक सफलता देर में प्राप्तहो परंतु वह सफलता अवश्य और स्थाई प्राप्त होगी- देखो श्रद्धास्पद महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी ने इसी प्रकार अपनी स्वर्गीय शांति अनुपम दया पूर्ण व्यवहार और एकता वृद्धि के भाव की सहायता से एफ्रीकन (दक्षिण) सरकार के बलवान विचार और दृढ़ कानून पर भी विजय प्राप्त कर अपने भाइयों को सुखी किया।

(२७) बेटी, भारतके कितने ही प्रान्तोंमें पर्दा प्रणाली का खूब ही बोल बाला है, कपड़े से सारी देह को ढ़ाप कर गठरी मोटरी के स्वरूप में बनकर यात्रा करना डेढ़ हाथ लम्बा घूंघट काढ़कर चलना ही बड़े घरानों की कुलीनता का चिन्ह समझा जाता है लेकिन अनेक दुःखोंका सामना करते हुए पर्दा सिस्टम का पालन करने वाली कुलाङ्गनायें-बाहर के पुरुषों के सन्मुख असभ्य शब्दों वाले गीत गातीं साथही बहन-ननद आदि के युवा पतियों तथा ऐसेही अन्यान्य सम्बंधियों से घंटों एकांत में, हास्य रसमिश्रित वार्तालाप करती हैं बेटी, क्या यह उनका पर्दा ठीक कहा जा

सक्ता है। भगवान मनु ने कहा है कि एकांतमें स्वकन्या, भगनि और माता के साथ भी बहुत काल तक न बैठे इसी प्रकार स्त्रियां पांच वर्ष के बालक के साथ भी एकांत सेवन न करें लेकिन आज पर्दे की प्रणाली को मानने वाली देवियां और पुरुष जैसा व्यवहार करते हैं वह मैंने पहले कहा है एवं व्यवहारिक रूप में नित्यही देख सक्ती हो जैसे स्त्रियां ऐसा व्यवहार करना अपने पर्दे की प्रथा से अथवा पर्दे के नियम से बाहर नहीं समझतीं वैसे ही पर्दा सिस्टम के मानने वाले युवक-और अन्य श्रेणी के पुरुष भी अपने समय का अधिकांश भाग घरकी स्त्रियों के बीच बिताना बड़ा अच्छा समझते हैं। लेकिन यह दोनोंके लिये बहुत बुरा है-अपना आचार जिसकी प्रत्येक स्त्री पुरुष को रक्षा करना अवश्यक है परंतु समायान्तरमें इस बुरी प्रथा से उस पवित्राचार पर कलंक का धब्बा लग सक्ताहै अतएव प्रत्येक गृहपति-पत्नि को इस विषय में ध्यान रखना चाहिये और अपने परिवार के स्त्री पुरुषों को ऐसी प्रथा-और ऐसी इच्छा से बचाना चाहिये।

बेटी! पर्दे का न तो यह अर्थ है कि घर की चार दीवार को ही अपना कार्य्य क्षेत्र समझो और उसी में बंद रहते हुए अपने स्वास्थ एवं जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर डालो, पर्देका यह तात्पर्य्य नहीं है घर वालों से मुख को डेढ़ हाथ के कपड़े के भीतर छिपाओ-और विपक्ष में अपने पाधा पुरोहित पंडित परोसी-सम्बन्धी आदि परपुरुषों के साथ देश भ्रमण के लिये निकलो, पर्दे का यह मतलब नहीं है-यात्रा और मार्गों में ऐसे चलो जिसमें आंख रहते हुए भी अंधों की नाईं तुम्हारा व्यवहार हों-विपक्ष में मनुष्यों के मेलों, और उनके समूहों में मुह खोल तमाशा देखने के लिये दबती दबाती धक्के खाती हुई जाओ-पर्दे का यह अर्थ नहीं है कि कैसा ही कार्य्य बिगड़े या सम्हले पर तुम अपनी जीभ न हिलाओ विपरीत घर बाहर आने जाने वाले परपुरुषों से बातें करो।

प्रत्युत पुत्री सच्चा पर्दा और सच्ची लाज ज्ञान की है ज्ञानयुक्त आचरण और व्यवहार करते रहना ही पर्दा प्रणाली को मानना और पर्दा करना है प्राचीन भारत कालमें ऐसे पर्दे का प्रचार सर्वत्र था। इसी भाव

तथा इसी वास्तविक पर्देको करते रहने से ही—यशस्वी राजकुमार लक्ष्मण मैथिली के विछुओं के अतिरिक्त किसी आभूषण को पहचानने में असमर्थ हुए—ऐसेही पर्दे से मैथिली ने रावण के घर रहते हुए भी अपने युक्तियुक्त उत्तरों से उसे, छका दिया—वेटी ! आज के महिला मंडल में सीता जैसे भाव और पुरुषों में लक्ष्मण तुल्य दृष्टि से देखने वाले कितने हैं।

इस लिये पर्दे की प्रथा सुधारने के लिये अपने हृदयों को शुद्ध एवं अपने भावों को पवित्र बनाते हुए–ज्ञानमय आचरण और व्यवहार द्वारा पर्दे को करो।

(२८) अपनी आवश्यकताओं को यथासाध्य कम करने की चेष्टा करना, क्योंकि दुःखों का सूत्रपात यहीं से प्रारम्भ होता है—साधारणतया मनुष्य के हृदय में जो इच्छा उदित होती है—जब तक वह पूरी नहीं होजाती तबतक अन्य सुख जनक सामिग्रियों से वह पूर्णतः सुख अनुभव नहीं करसक्ता—और यदि उसके पूर्ण होने की आशाही टूट जावे तब तो एक बार वह दुःख से विकल ही हो वैठता है- साथ ही जैसे २ आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं वैसे २ उनके पूरा करने के लिये धनकी जरूरत भी बढ़ती जाती है—और अधिक धनकी लालसा ही मनुष्य को बेइमानी छल कपट विश्वास घात आदि नाना कुकर्म्मों के प्रवृत्ति को बढाती है जब ऐसा धन आने लगता है तब सुख की सामिग्रियां दुःखजनक होजाती है। इसी लिये ऋषियों ने कहा है—

अति तृष्णा परो व्याधि।

अतएव अपनी जरूरियात को कम करना अभीष्ट है प्रत्युत प्रथम से ही साधारण भोजन-साधारण वस्त्र तथा साधारण श्रेणी की ही अन्य व्यवहारिक सामिग्रियों से युक्त साधारण श्रेणी के घर में रहने का स्वभाव बनाओ हां दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ती और दूसरों के सुख साधनों के जुटाने का अधिक ध्यान और प्रयत्न करना चाहिये।

(२९) वेटी ! प्रायः हमने देखा है कि बड़े घरानों की वेटियां और बहुएँ एवं जिनके पतिदेव किसी उच्च पद पर अधिष्ठित हैं उन की धर्म्मपत्नियां अपने घरके कार्य्यों के करने में भी संकोच करने लगती हैं-फिर

उन्हें वैसा करते लज्जा मालूम होती है अथवा वे समझती हैं कि हमारा ऐसा व्यवहार हमारे पति के उस गौरव का नाश करने वाला है-भारत नारियों के यह भाव बहुत ही बुरे और उनके जीवन सुख को नाश करने वाले हैं क्योंकि ऐसे स्वभाव से और हानियां होती हैं वह तो होती ही हैं सब से अधिक हानि उनके स्वास्थ की होती ऐसी स्त्रियां दिन दिन दुर्बल और पीली पड़जाती हैं अथवा वादीसे फूल उठती हैं। पहली श्रेणी वालों की संतानें नितांत निर्बल और निस्तेज होती हैं-जो वादी से उथलथायल होती हैं वे प्रायः निःसन्तान ही देखी जाती हैं। इस लिये ऐसी इच्छा कभी स्वप्न में भी नहीं करना चाहिये प्रत्युत क्या तुमने नहीं पढ़ा नासरुद्दीन बादशाह की बेगम अपने हाथों ही रसोई बनाकर बादशाहको खिलाती थी। बंगालके प्रसिद्ध जज श्रीयुक्त जस्टिस द्वारिकानाथ मित्र की सुयोग्या पत्नि श्रीमती प्रसन्नमयी देवी लक्षाधीपणी होनेपर और दास दासियों के रहते भी घरका काम, यहांतक कि गांव के तालाव से पानी भी स्वयं भर लाती थी।

महाराष्ट्र कुलतिलक मान्यास्पद स्वर्गीय जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे सी० आई० ई की विदुषी पत्नि अपने घर का सारा कार्य्य स्वयं देखती और तीन बजे जलपान के लिये भोजन सामिग्री अपने हाथों ही तैय्यार करती थी।

बंगालके प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्या सागर की स्वनामधन्या माता भागवती देवी—सदा अपने हाथ से रसोई बनाकर दरिद्रों और अतिथियोंको खिलाती थी-अतएव बेटी, प्रेमसे घरका कामकरनेके साथ अपने परिवार को अपने हाथ से बनाये हुए अथवा स्वयं बैठकर बनवाये हुए भोजनों को प्रेम से खिलाओ-क्योंकि जैसा प्रेम तुम्हारा परिवार वालों के साथ है वैसा रसोइयों वा मिश्रानियों को नहीं होसक्ता—और शरीरका अधिकांश जीवन भोजन की अनुकूलता पर होता है अतएव इस ओर गृहणी का विशेष ध्यान होना आवश्यक है। साथ ही भोजन के समय चित्त प्रसन्न करने वाली बातों के अतिरिक्त कोई ऐसा वार्तालाप न छेड़ना चाहिये जिससे चित्त दुःखी हो जैसा कि आज कल की गृहणियां

करनी हैं। भोजनके समय ही घरके सारे दुःखों का रोना बहुत ही बुरा है क्योंकि इससे मनुष्य के स्वास्थ और आयु पर बड़ा धक्का पहुंचता है।

(३०) ऋतु और समय अनुकूल आहार विहार से अपनी आरोग्यता की सदां रक्षा करती रहो क्योंकि धर्म्म की सिद्धि, यश का सञ्चय कीर्ति का सम्पादन शरीर द्वारा ही होसक्ता है इसी हेतु कहा है।

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।

(३१) पुत्र पुत्रियों की शादी (सगाई) उस समय करो जब कि तुम एक वा दूसरे महीने में ही विवाह करने के लिये तैय्यार हो-पहले से विवाह सम्बन्ध की बात चीत पक्की करने में हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं।

(३२) पुत्र पुत्रियों की सुन्दरता, विद्वत्ता, चाल ढाल आचार व्यवहार के मिलान से पहले 'प्रकृति' का मिलान करलो-यदि प्रकृति मिलगई तो दूसरे सब गुणों के बराबर न होनें पर भी दम्पति सुख में कमी न होगी।

(३३) विवाह में दहेज की चिंता न करो प्रत्युत इस कुप्रथा के दूर करने के लिये सदां यथाशक्ति प्रयत्न करना।

(३४) विवाह इत्यादि उत्सवों के व्यय बजट अपनी स्थिति के अनुसार खूब सोच विचार कर पहले ही तैय्यार कर लेना चाहिये ताकि फिर किसी कारण विशेष अथवा किन्ही व्यर्थ के झगड़ों में पड़ कर व्यर्थ धन व्यय करने की ओर चित्त न झुके साथ ही अपयश न फैले-उत्सव के समाप्त होने पर ही धनवानों के सामने हाथ न फैलाना पड़े-लेकिन यदि बजट २५० का बनाया है तो २०० खर्च के लिये निश्चित करलो क्योंकि ऐसा न करने वाले उत्सव में एक २ पैसे की बचत के ऊपर दृष्टि रखते देखे गये हैं और उनका ऐसा कर्तव्य बहुत बड़े अपयश का कारण होजाता है।

(३५) बहुत से गृहस्थ अपने यहां होने वाले उत्सवों की विशेषता बढ़ाने के लिये—अपने जातिके, देशके, धनी, रईसों की बराबरी करते देखे गये हैं—ऐसा कदापि न करना चाहिये सदां अपनी अवस्था, अपनी

प्रतिष्ठा, और अपनी आयके अनुसार ही काम करो, क्योंकि बेटी! एक तो उस बराबरी के विचार से अपनी आय से अधिक खर्च करना पड़ता है जिस से भविष्य जीवन दुःखमय ही होजाता है दूसरे जाति के अन्य छोटे पुरुषों के हृदयमें भी वैसी ही इच्छा होती और वैसी सामर्थ्य न होनेसे इच्छाके पूरी न होने पर खेद, शोक, पश्चाताप होता है—तीसरे फिजूल खर्चों की वृद्धि और दुःखदायक नई परिपाटियों का प्रचार होता है।

(३६) अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक गृहपति पत्नि को बाहर देशाटन वा अन्य देशों की सैर के लिये जाना चाहिये परन्तु जाने आने के प्रबंध में ऐसी व्यवस्था करनी उचित है जिस से परिवार के सभी व्यक्तियों को जाने आने का अवसर मिले और उनमें से किसी का भी चित्त दुःखित न हो।

(३७) प्रत्येक गृहपति पत्नि को एक मजबूत कापी जरूर रख कर अपने घर में होने वाली घटनायें उत्सवों की विशेष बातें, ऋतुके परिवर्तन—सब ही प्रकार की वस्तुओं का बाज़ारी भाव आदि बातें तारीखवार लिखनी चाहिये—ताकि प्रत्येक घर में वंश परांगत पिछले २० वर्ष में हुई हुई मार्केकी घटनायें किस उत्सव में कितना और कैसे व्यय किया गया बाहर के सम्बन्धियों से कितना आया—और उन्हें क्या दिया गया इत्यादि बातें सहज में मालूम होसके।

(३८) प्यारी बेटी! वर्तमान काल में भारत के बीच रोगों की प्रबलता बहुतही अधिक देखी जाती है वर्ष के बारह महीनों में कोई मास ऐसा जाता होगा जिसमें घरका कोई न कोई नर नारी बालक बच्चा किसी न किसी रोग का शिकार न हो। इसका अन्य कारणों के साथ यह प्रबल कारण है कि यहां मूर्खता का अटल छत्र राज्य होने से कोई पथ्या पथ्य का विचार नहीं रखता, ऋतु कालके अनुसार सोने, उठने, नहाने, और भोजन तथा भोज्य वस्तुओं को व्यवहार में नहीं लाते घर की गृहणियां जिनकी देख रेख इन विषयों पर बहुत रहनी चाहिये आज तनिक भी इस ओर ध्यान नहीं देती, घरकी गृहपत्नी गृहीजनों को भोजन कराते समय एक साथ कौन २ वस्तुएं खिलानी चाहिये कौन नहीं इसका कि-

न्चित विचार अपने मनमें नहीं करती प्रत्युत यदि किसी में नाहीं भी तो यह उत्तर प्रायः सुना जाता कि " जरा खालो नहीं ऐसा नुक्सान करे देती " बेटी उन्हें यह नहीं बोध होता कि ' विष ' जरासा ही प्राण हर लेता है इसी तरह घर के बच्चे प्रातः से लेकर शामतक क्या २ वस्तुएं खा डालते हैं क्या नहीं इसके लिये तनिक भी सोच विचार नहीं किया जाता—

इस लिये बेटी ! स्वास्थ रक्षा के लिये दूसरी बातों का ध्याने करने से पहले उपरोक्त विषय पर अत्याधिक ध्यान करना चाहिये।

दूसरे जैसे इन्हें रोगों से बचना और बचाना नहीं आता वैसे ही रोगी को शीघ्र रोग निर्मुक्त करने के लिये यथोचित रीतिसे रोगी की सेवादि काम करने की शक्ति बुद्धि और योग्यता नहीं रखती इस लिये जैसा रोगों से बचना कठिन है उससे कहीं अधिक कठिन रोगी होकर निरोग होना है।

अतएव वर्तमान काल में कन्याओं को अन्य विषयों के अध्ययन के अतिरिक्त रोगी की परिचर्य्या विधि और वैधक शास्त्र का अध्ययन कराना बहुत ही जरूरी है। बल्कि मेरी सम्मतिमें बिना इसको अध्ययन किये उन की शिक्षा ही अधूरी है क्योंकि सारे कार्य्यों की सिद्धि के लिये शरीररक्षा परम आवश्यक है।

घर में किसी के रोगी यानी बीमार होने पर दूसरी बातों के साथ निम्न बातों पर अवश्य ध्यान रक्खो।

(३९) अपने शहर में जिस किसी वैद्य-हकीम या डाक्टर पर तुम्हारा अधिक विश्वास हो जिसकी योग्यता पर तुम्हारा, तुम्हारे कुटम्बी-तथा मित्रों का किसी भांति का संदेह न हो जिसके हाथ में यश हो—अर्थात् जिसने अपनी विद्या बुद्धि वा योग्यता से अधिक नाम पाया हो जिसको प्रत्येक रोगों में बहुत काल का अनुभव हो चुका हो—बेटी ! सब की सम्मति से पहले ऐसे ही वैद्यकी औषध आरम्भ करावे और कमसे कम तीन दिनतक उसकी दवा जरूर दे—क्योंकि बार बार डाक्टर आदि के बदलने में अधिक लाभ नहीं सम्प्रति भारत में यह बड़ी कुप्रथा है कि यदि मित्रगण यह सुनते

हैं कि वैद्यराज जगन्नाथ जी की दवा कररहे हैं तो कहते हैं कि हकीम अकबरअली साहब को बुलाओ यदि अकबरअली का होता सुना तो डाक्टर की सलाह धड़ाधड़ देने लगते हैं-उन्हें यह नहीं मालूम होता कि इस जल्दी २ में अदला बदली के मामले से रोगी को क्या और कितनी हानि होगी रोगी के घर वालों के चित्तों में कैसा संशय व्याकुलता और घबराहट उत्पन्न होगी और इस का परिणाम क्या होगा-इस लिये पहले ही सबकी सम्मति से औषधिदाता को चुनकर दवा कराना चाहिये।

(४०) घर भर में रोगी के लिये वह कमरा चुनो जहां हवा बे रुकावट आती जाती हो-जहां सूरज की गर्म्मी खूब पहुंचती हो जिसके फर्श और दिवालों में सील न हो जिस कमरे के पासही मोरी पाखाना स्नान करने का स्थान गाय आदि पशुओं के बंधने की जगह न हो।

(४१) चाहे ऋतु सर्दी की हो-चाहे गर्मी अथवा बरसात हो वायु के आने जाने का मार्ग कभी बन्द करना चाहिये क्योंकि आती हुई स्वच्छ हवा से किसी प्रकार की हानि नहीं हो सक्ती प्रत्युत यह कहना असंगत नहीं कि जिन सोने या बैठनेके कमरोंमें धूपकी गर्मीऔर बाहरकी स्वच्छ हवा का प्रवेश नहीं होता उनमें सबल मनुष्य भी बहुत दिनों तक निरोग नहीं रहसक्ते फिर वहां रोगी का आरोग्य लाभ करना कसा।

(४२) रोगों की होने वाली वृद्धि में भारत के घरों का भी बहुत बड़ा दोष है-यहां के मकानों के पटाव प्रायः नीचे आंगन छोटे होने के साथ कोठरियों के भीतर कोठिरियां बनवाई जाती हैं जहां धूप की रोशनी और खुली हवा का झोंका भी नहीं जाने पाता तिस पर तुर्रा यह है कि जाड़ों के दिनों में ऐसी तंग कोठड़ियों में सोते हैं—हवा और प्रकाश आने के लिये खिड़कियों और रोशनदानों के लगाने की प्रथा बहुतही कम है। बेटी! स्वास्थ्य के लिये ऐसे मकानों का रहन सहन बहुत ही हानिदायक है यही कारण है कि आजकल गावोंकी अपेक्षा शहरों में रोगों की अधिकता रहती है।

(४३) रोगी का पलंग दर्वाजों और खिड़कियों के बीच में न बिछाना चाहिये-एवं पलंग भी न ऐसा नीचा हो जिसके नीचे आग की

अंगीठी न रखी जा सके और न ऐसा ऊंचा हो जो रोगी को उस से नीचे उतरते चढ़ते कष्ट हो।

(४४) रोगी के पलंग के चारों ओर इतना स्थान खाली करदेना चाहिए जिसमें भृत्यके कार्य्य करने वाले को इधर उधर जानेमें कष्ट न हो।

(४५) निरोगी मनुष्य की भाँति रोगियों के शरीर में गर्मी नहीं बनती इसलिये रोगी के शरीर को नंगा नहीं रखना चाहिये और न ऐसे स्थान पर बैठने दें जहां की खुली हवा के झपटे उसके शरीर में बे रोक टोक लगें।

(४६) जब रोगी को नींद लग रही हो तो उसके आस पास शोर और ऐसा कोई कार्य्य न होने दो जिस से उसकी निद्रा में बाधा पड़े—

(४७) रोगी के कमरे में आने जाने वालों को भले प्रकार समझादो कि जब वे जाना चाहें तब बहुत धीरे से किवाड़ों को खोल कर जायें और ऐसे ही बाहर आवें क्योंकि खाट पर पड़ते ही मनुष्य बहुत संशयालु चित्त हो जाता है जो कार्य उसे अपनी आंखों से ठीक दृष्टिगत नहीं होता उससे बहुत कालतक वह अनेक प्रकार से विचारतारही रहताहै।

(४८) बेटी! जैसे—वैद्य हकीमोंके परिवर्तन की बात बहुत होती है वैसे घरमें एक बड़ी यह भयङ्कर प्रथा है कि जब वैद्य महाशय के लिखे हुए पर्चे के अनुसार औषधियां आती हैं तब घरके स्त्री पुरुष आदि उस की परख कर कहती हैं इसमें इतनी ठंडी है इतनी बहुत गरम है फलाँ औषधियाँ तो ऐसी हैं वह कैसे पच सकेंगी? फल यह होता है कि रोगीके मुंहतक आधी ही औषधि जाती है और दवा का गुण जितना होना चाहिये उतना नहीं होता। इसलिये बेटी, स्वयम् बुद्धि से दवा में कमी हेर फेर नहीं करना चाहिये।

(४९) रोगी के अहार विषय में हमारे यहां बहुत ही कुप्रबन्ध रहता है—बेटी जब मनुष्य रोग में फंसा हुआ होता है तब भोजन विषय में उसकी रुचि ऐसे पदार्थ की ओर झुकती है जो कि थोड़े बहुत अपथ्य जनक जरूर होते हैं परन्तु प्रायः घरकी बूढ़ी बृद्धायें अथवा घर का प्रबंध करने वाला इसका विचार न कर रोगीकी प्रसन्नता अथवा कुछ न कुछ इस

के पेट पड़जाय इस विचारसे उसकी इच्छानुरूप वस्तुको खिला कर सबको ऐसा भुलाने की कोशिस करती हैं मानों कुछ हुआ ही नहीं फिर जिस की औषधि होती है उन डाक्टर साहब अथवा वैद्यराज के कानों तक पहुंचना कैसा ? परिणाम में रोग की वृद्धि होती, और उसका दोष डाक्टर वा वैद्य की योग्यता पर रखाजाता है साथ ही रोगी की पीड़ा ही नहीं बढ़ती वरन कभी २ तो प्राणों के बचने में भी संशय होजाता है। इसलिये वैद्य अथवा डाक्टर की इच्छा के प्रतिकूल रोगी के आहार में कुछ भी परिवर्तन न करें—क्योंकि निरोगी की अपेक्षा रोगी का आहार बहुत ठीक और उसकी सब अवस्थाओं के लिये उचित होना आवश्यक है कारण औषधी के प्रभाव से भोजन का प्रभाव कहीं अधिक होताहै।

(५०) रोगी के पीने का पानी साफ़ और मीठा होना चाहिये— उसके पानी का बर्तन भूल करके भी खुला नहीं रखना चाहिये क्योंकि दूषित हवा का प्रभाव पानी पर बहुत जल्द होता है।

(५१) शहर में एवं घरमें किसी प्रकार का रोग होने पर सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिये और रोगी के कमरे से तो यथा सम्भव असबाब उठाकर खाली करदेना चाहिये क्योंकि रोगों के कीटाणु कोनों की धूल और अंधेरे स्थानोंमें अपना घरबना लेते हैं—इसलिये जब वह बहुत साफ़ और खाली होगा तो स्वच्छ वायु सब तरफ जा सकेगी एवं कीटाणुओं की पैठ न होगी।

(५२) रोगी के कमरे में दो चार ताज़े गुलदस्ते आदि ऐसी दर्शनीय वस्तुयें रखदेना चाहिये जिससे पलंग पर पड़े २ उसका चित्त उदास होने की अपेक्षा सदा प्रफुल्लित रहे।

(५३) रोगी के प्रत्येक कपड़े को प्रति दिन प्रातःकाल से लेकर एक दो बजे तक कड़ी धूप में अवश्य रखदेना चाहिये और सुभीता हो तो चौथे दिन नहीं तो आठवे दिन ज़रूर बदलवादें क्योंकि रोगी के शरीर से प्रतिक्षण निकलने वाले दूषित परमाणु वस्त्रों में ही रहते हैं— और धूप की तेज़ी से वे फिर शरीर में घुस कर अपना वैसा प्रभाव जमानेमें असमर्थ होजाते हैं साथ ही सप्ताह भर में स्वभाविकता से इकट्ठा होने

वाले मैल के संयोग से दूसरे रोगों के कीटाणु सहज में अपना घर बना लेते हैं ऐसी दशामें रोगी के शीघ्र निरोग होने के स्थान पर, दूसरे रोगों के बीच फंसने में बहुत अधिक सम्भावना है इसलिये दूसरी बातों के साथ इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(५४) रोगी के शरीर को साफ़ करने के लिये गरम पानीमें खरदरा कपड़ा भिगोकर उससे मलना चाहिये—इस प्रकार बिना मले स्नान करने से—लाभ अधिक नहीं होता और इस रीति पर मैल अधिक उतरता शरीर साफ़ होजाता, मुसाम खुलजाते पानी की नमी भीतर कम जातीहै।

(५५) स्नान करनेके पीछे जल्दी सारा शरीर पोंछकर साफ़ कपड़े पहरादेना चाहिये जिससे उसके शरीर पर खुली हवाके झकोरे न लग सकें।

(५६) रोगी के कमरे में अथवा उसके आस पास कारोसन तेल का लैम्प नहीं रखना चाहिये क्योंकि इसकी दुर्गंधि बुरी होती है जिससे वहां की वायु और भी खराब होगी। और कड़ुवे तेल का दीपक भी यथा सम्भव सारी रात न जलने दे। क्योंकि एक दीपक सारी रात में जितने आक्सीजन से सात मनुष्यों की प्राण रक्षा होसक्ती है उतना खा जाता है इसलिये मेरी सम्मति में रात में जब प्रकाश की आवश्यकता हो तब जला लेना उत्तम है।

(५७) एकही आदमी आठों पहर रोगी को देख भाल नहीं कर सकता इसलिये घर में बारी बारी से उसकी शुश्रूसा का काम धीरता विचार और बुद्धिमानी से करें।

(५८) रोगी के सामने ही वैद्य अथवा डाक्टर से उस के रोग के विषय में पूंछ तांछ नहीं करना चाहिये वरन उस स्थान पर करना योग्य है जहां से रोगी के कान में बातों की फ़ुस फ़ुसाहट भी न पहुंच सके। क्योंकि अपने रोग की यथार्थता को जान कर उसके चित्त में घबराहट होने की सम्भावना है यही नहीं प्रत्युत आशंका है कि ऐसी घबराहट का प्रभाव भयंकर न हो जाय और रोगी के कमरे से बाहर घुस-फ़ुस करना उसके हृदय में व्यर्थ संदेह की जड़ जमानी है जिसका प्रभाव बहुत ही बुरा होसक्ता है अतएव ऐसी भूल कभी न करें।

(५६) प्रत्येक मनुष्य की अवस्था यानी उसकी प्रत्येक दशा पर उसके आंतरिक विचारों का प्रभाव बहुत पड़ता है इस हेतु रोगी के चित्त में बुरे विचारों को न उपजने के लिये उसके मनको हर्षित और प्रफुल्लित करने की यथा साध्य चेष्टा करता रहे उसके मनोरञ्जन का खूब प्रयत्न करे। निश्चय जानो बेटी, रोगी के रोग को दूर करने में जैसे अच्छी हवा जल रहने का अनुकूल स्थान और उचित आहार सहायक होता है वैसी ही चित्त की प्रसन्नता, विचारों की अनुकूलता भी, क्योंकि विचारों का असर बहुत गहरा और फिर जल्द दूर न होने वाला होता है. बेटी, कभी २ विचारावरोध से भयंकर घटनायें होजाती हैं-इसके प्रमाण में मैं अपने देखे हुए एक उदाहरणसे देताहूं बेटी मेरे एक मित्र अपने अंत जीवन में जब रोगी हुए तब उनकी औपधी एक प्रसिद्ध सिविलसर्जन की हो रही थी-सारी दशायें अच्छी थीं-उस समय कोई भी लक्षण ऐसा दीख न पड़ता था जिससे मृत्यु होजाने की सम्भावना हो। अस्तु एक दिन रात के करीब ६ बजे घरके प्रधान मुनीम जी मिलने आये और उन्होंने वातों ही वातों में यह भी कहदिया कि कल्ल दसहजार रुपया देनाहै यदि न दिया जासका तो दिवाला निकल जायगा।

पस इसको सुनते ही 'डिलेरियम' के लक्षण दीख पड़ने लगे और अन्त में उनके प्राण इसी रोग में समाप्त होगये।
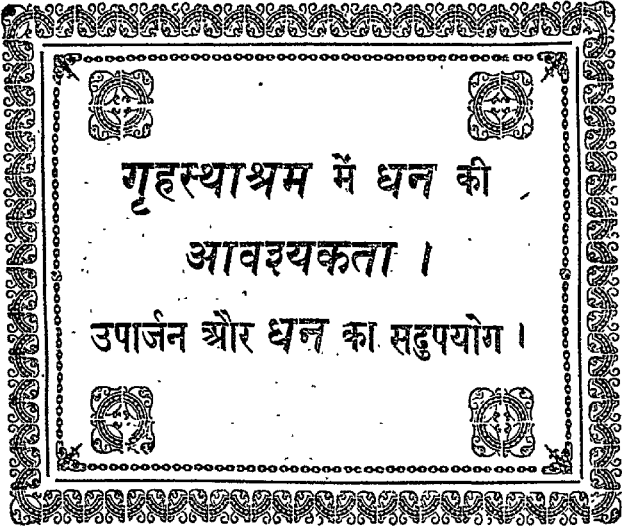
इस लिये रोगी के सामने इस प्रकार की सांसारिक वातें कभी नहीं कहनी चाहिये और भी जो कुछ कहो-वह साफ और थोड़े शब्दों में-जहांतक हो उसे वार्तालाप में अधिक श्रम न उठाने दे।

(६०) प्यारी बेटी! हमारे यहां जहां और और कुप्रबंधों की भरमार है वहां एक यह भी बहुत बुरा है कि रोगी के जितने भर देखने वाले आते हैं वे सब रोगी के पलंग को घेरकर वैठते हैं और उतने समय तक जबतक उनकी इच्छा होती है। उसके रोग होनेका कारण-कब से हुआ अब कैसे हो किसकी औपधी होती है यह सब पूछने के पीछे वैद्यक विद्या और उस विषय का अनुभूत ज्ञान न होने पर भी वे अपनी दवायें जरूर वतायेंगे अपने विचार से उसकी औषध पथ्य पानी में क्या, हेर

फेर होना चाहिये सोभी रोगीसे कहेंगे इसके वाद दूसरी सांसारिक वार्तों का नम्बर होता है।

बेटी! मेरी सम्मति में ऐसा करना रोगी के साथ घोर शत्रुता का व्यवहार करना है अथवा उसके रोगवृद्धि में उत्तेजना और अपने स्वस्थ शरीर में रोगों को निमंत्रण देना है। क्योंकि पहले रोगीके चारों ओर ही वैठने से वायु की रुकावट होगी, परस्पर वार्तालाप से रोगी के पास कुछ न कुछ शोर होगाही—रोगी के निकले हुए परमाणु वायु की घिरावट होने से दूर न जाकर आस पास वैठने वालों में ही घुसेंगे-दूसरे प्रत्येक से अपने रोग का कारण आदि कहना रोगी के लिये एक पुराण व्याख्या होजाती है—और दवा तथा पथ्य पानी के हेर फेर की वात तो रोगी और उसके परिचारक गणों के लिये और भी संकट सम्पन्न है। क्योंकि जितने मिलने वाले मनुष्य उतने ही दवायें सो भी उनके कथनानुसार अनुभूत के ट्रेड्मार्क से रजिष्टर्ड फिर वताओ रोगी के शुश्रूसा करने वाले किस किसकी माने और तत् अनुसार व्यवहार करें—रही सांसारिक वार्तें-सो इससे भी रोगी को थकाने और अपने समय को नष्ट करने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं, इस हेतु बेटी! रोगी के देखने वालों को इन वार्तों पर ध्यान कर इस प्रथा को छोड़ देना चाहिये। रोगी से अव कैसे हो ऐसी ही दो चार मामूली वातें पूछने के अतिरिक्त यदि कुछ परिवर्तन करने की जरूरत समझो तो वह एकान्त में परिचारकों से कहना चाहिये साथही रोगी के घरवालों को रोगी के कमरे से दूर (जहां की वातें रोगी के कानमें न पड़ें) ऐसा स्थान निर्दिष्ट करना चाहिये जहां कि रोगी को देखने के लिये आये हुए नरनारी मनोनीत समय तक वैठ कर वार्तालाप कर सकें।

गृहस्थाश्रम में धन की
आवश्यकता।
उपार्जन और धन का सदुपयोग।

ओ३म्

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥

ऋग्वेद १० मंडल

हे परमात्मन् ! विद्या, सहन शीलता प्रफुल्लता दयादि के द्वारा उपार्जित धन से हमें युक्त कीजिये, हे देव ! सुबुद्धि मान नेताओं की शुभ सम्मति और सहायता द्वारा प्राप्त किये धन से हमें युक्त कीजिये, चारों समुद्रों से लाये गये अर्थात् अनेक प्रकार के व्यापारों से उपार्जित, प्रसिद्धि और प्रशंसा देने वाले अनेक उपयोगी वस्तुओं के उत्पादक तथा नाना प्रकार की शक्तियुक्त धन हमको दीजिये—पवित्रदान द्वारा रक्षित धन के कोषों की वृद्धि हमारे घरों में कीजिये ॥

हे प्रभु !

हमारा धन कभी मिथ्या आहार विहार अर्थात् नाच
रंग शौक तमाशे बुरे थियेटरों के रचाने में व्यय
न हो, हमारा धन शराब अफीम आदि
मादक द्रव्यों और विलासिता के
बढ़ाने वाली वस्तुओं की खरीदारी
में खर्च न हो, हमारा
धन किसी निर्बल
आत्मा तथा
निरपराधियों
के सताने में
सहायक
न हो.

हमारे धन से किसी प्रकार जाति को हानि न पहुँचे
हमारे धन से हमारे प्यारे देश में धर्म और सुख
की हानि न
हो।

कमला-विकास विलोलतर चपला-प्रकाश समान है
धन लाभ का साफल्य बस सत्कार्य्य विषयक दान है
हा ! देश उपकार करना अब तुम्हें कब आयगा ?
विद्या कला कौशल बढ़ाओ धन स्वयम् बढ़जायगा ॥

भारत भारती ।
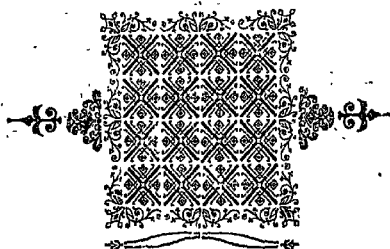
(६१) प्यारी पुत्री! गृहस्थ स्त्री पुरुषों के लिये धन की परम-आवश्यकता होती है प्रत्युत यों कहना असंगत नहीं है कि गृही जनों के इहलौकिक वा पारलौकिक कार्य्यों की सिद्धि में यदि किन्हीं अत्यावश्यक वस्तुओं की आवश्यकता होती है तो वह सब से बड़ी और मुख्य आवश्यकता धनकी है. इसलिये संसारमें आकर निर्धन होना पाप कर्म्मों का फल बताया गया है। क्योंकि निर्धनता से सारा उत्साह और उमंग भीतर की भीतर ही नष्ट होजाती हैं, सारी इच्छायें हृदय में ही रह जाती हैं, विचार की तरंगें हृदय रूपी मंदिर में नहीं ठहरती, बुद्धि भ्रष्ट होजाती है मुख से दीन वचन निकलते हैं। इतना ही नहीं वरन जिस प्रकार कंजूसों का यश क्रोधियों के गुण, मूर्ख एवं दम्भी का सत्य, व्यसनों से धन, विपत्ति से स्थिरता, चुगली से कुल, मद से विनय, दुश्चरित्रों से पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है। वैसे ही दरिद्रता से अपनी प्रतिष्ठा का नाश होजाता है। इस लिये कवि ने कहा है।

अहोनु कष्टं सततं प्रवासस्ततोऽति कष्टः परगेहवासः।
कष्टाधिका नीच जनस्य सेवा ततोऽति कष्टः धन हीनता च ॥

अर्थात् विदेश में निरंतर रहना ही कष्ट दायक है लेकिन इस से अधिक दूसरों के घर में रहना तथा नीचजनों की सेवा दुःखकारी है, परंतु इन दोनों से भी बढ़कर दुःख देने वाली दरिद्रता है। किसी ने कहा है।

वासुदेव जराकष्टं कष्टं निर्धन जीवनम्।
पुत्र शोको महा कष्टं कष्टात्कष्टतरं क्षुधा ॥

अर्थात् संसार में सब से बढ़ कर कष्ट देनेवाली दरिद्रता और उस से उठी हुई भूख की ज्वाला है। इसलिये बेटी! प्रत्येक गृहस्थ को यत्न पूर्वक धनका इकट्ठा करना बहुत ही आवश्यक है। ऐसा ही अथर्व वेद कां० २ सू० १४ मं० में कहा है—

निःसालं धृष्णुं धिषणमेकवाद्यांजिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः॥

लेकिन बेईमानी छल कपट विश्वासघात-अन्याय, और अत्याचार गरीब और निर्बल व्यक्तियों को कष्ट देकर विधवा की निःस्सहाय अवस्था छोटे छोटे बच्चों की अनाथ दशाको देखते हुए भी उसकी स्थावर अस्थावर (नक़दी वा जिमीदारी) एवं अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के सत्वों (हक्कों) को मार कर सञ्चित किया गया धन उपरोक्त प्रकार से उपार्जित किया गया द्रव्य दरिद्रता से भी अधिक कष्टदायक एवं अपयश का कारण होता है। ऐसे धन से गृहस्थाश्रम की इन आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर वास्तविक संतोषदायक परिणाम नहीं होसक्ता। ऐसे धन से जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं होसक्ती। ऐसे धन से अक्षय सुखों की प्राप्ति नहीं होसक्ती। ऐसे धन से मनुष्यत्व की महत्वता विकसित नहीं होसक्ती। क्योंकि यह धन धनहीं प्रत्युत यह रोते कलपते और नाना दुःख यन्त्रणाओं से आक्रांत हृदयों का ठंडी आह से भरा हुआ जहरीला विष है यह धन धन नहीं बल्कि निर्बल आत्माओं का उष्ण रक्त है। यह धन धन नहीं प्रत्युत सत्वाधिकारियोंके हृदय द्रावक विलाप के स्वर से भरी हुई मनुष्यत्व का नाश करने वाली प्रज्वलित अग्नि है। यह धन धन नहीं बल्कि रोती हुई माताओंके आंसू हैं यह धन धन नहीं प्रत्युत अनाथों की हड्डियां हैं। अतएव प्यारी बेटी! जिन कुलों और घरानों में ऐसे धन की वृद्धि होती है वहां से संतोष, क्षमा, दया सुबुद्धि आरोग्यता सुख और शांति का सदाके लिये लोप होता देखा गया है। क्योंकि—मनु अ० १२ श्लोक ५ में कहा है-पर द्रव्य अन्याय से लेना मानसिक पाप है।

पर द्रव्येश्व भिध्यानं।

पराई वस्तु अथवा धन ले लेने में अनेक प्रकार से मिथ्या भाषण करना होता है इस लिये उनको वाणी के पाप भी होते हैं बिना दिये धन का गृहण करलेना शरीर का अशुभ कर्म्म है।

अदत्ताना मुपादानं।

अतएव बेटी, ऐसे नर नारियों को मन वाणी और शरीर इन तीनों द्वारा कृत कर्म्म का दण्ड भोगना पड़ता है उनको तीनों प्रकार की पात-

नायें सहनी होती है। बेटी! जब वाणी के पाप से उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और मानसिक पाप के प्रति फल में मनुष्य नाना बुरे संकल्पों के समूह में घिरा रहता है—तब शरीर में उसके सारे कार्य्य अधर्म्म युक्त अथवा कल्याणकारी मार्ग से गिराने वाले होते हैं—एवं उन के फल में नरनारियों के दुःखों का राज्य बढ़ने लगता है। इसी को दूसरे प्रकार यों समझो—कि मनुष्यका जैसा धन होता है उसका अन्न और सारी खाद्य सामिग्रियां भी उसी भाव से युक्त रहती हैं—एवं खाद्य भोजन से रस—रस से रक्त—रक्त से मांस—मांस से मेदा—मेदा से हड्डी—हड्डी से मज्जा—मज्जा से शुक्र अर्थात् वीर्य्य बनता है साथ ही शरीर पोषक इन सप्त धातुओं में क्रमानुसार वह भाव भी जाता है—अतएव निकृष्ट भावों से बुद्धि पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है और बुद्धि नाशसे मनुष्य का नाश आवश्यम्भावि है। इसी हेतु नाना अधर्मों द्वारा सञ्चित होने से दुष्टों का धन दुख देनेवाला और धर्म्माचरण भाव से सञ्चित होने के कारण सज्जनों का धन सुख जनक होता है।

ऋगु में कहा है कि जो अन्याय से इकट्ठे किये हुए किसी पदार्थ का भोग करते हैं उनका धन, सामर्थ्य विद्या और आयु का क्षय होता है। इसी लिये, कुरु पाण्डवों की संधि कराने के लिये हस्तिनापुर में गये हुए *श्री कृष्ण जी* ने—भोजन के लिये निमंत्रित किये जाने पर महाराजा दुर्योधन से कहा था कि "आप का दुष्ट भावों से पूरित अशुभ अन्न मेरे ग्रहण तथा भोजन करने योग्य नहीं है।"

धर्म्माचार्य्य महाराजा मनु भी सब शुद्धि में धन की शुद्धि मुख्य मानते हैं। उनका वक्तव्य है कि सर्व प्रकार की शुद्धियों की अपेक्षा धन की शुद्धि ही मुख्य है—जो धन के विषय में पवित्र अर्थात् जो अन्याय और अधर्म्म से धन सञ्चय नहीं करते वही वास्तव में पवित्र है मृतिका जल आदि से शरीर को धोलेना वास्तविक शुचि नहीं है।

सर्वेषामेव शौचानामर्थं शौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारि शुचिः शुचिः॥

मनु० अ० ५-श्लोक १०६

साथ ही अन्याय और अधर्म से धन सञ्चय करने वालों की बुद्धि भ्रष्ट रहने के कारण उनमें धर्म्म शिक्षाके सद्भाव नहीं ठहरते–यजुर्वेद अ० ४० मंत्र १५ में कहा है कि चमकीली धन आदि वस्तुओं की इच्छा रूपी वर्तन से सत्य का, सत्यरूप ब्रह्म का–सत्यरूप ज्ञान का, अथवा सत्यरूप धर्म्म का मुख ढका हुआ है–अतः यदि उसको प्राप्त कर अपनी उन्नति करना चाहते हो, अपनी महत्वताको प्राप्त करना चाहते हो, अपनी उच्चता और उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहते हो तो, अपनी उस इच्छारूपी वर्तन को उठाओ अर्थात् चमकते हुए द्रव्यों की इच्छा से आंख मीचकर अर्थ लोलुप न वनो।

हिरण्य मयेन पात्रेण सत्यस्या पिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषनपा वृणु सत्य धर्माय दृष्टये॥

इस हेतु ऐसी कुरीतियों से धन जमा करने का स्वभाव वनाने से प्रथम इस प्रकार धन वटोरने और सञ्चित करने वाले अपने सम्वन्धियों और मित्रों पार पड़ोसियों तथा नगर निवासियों पर दृष्टि डालो तो तुम्हें मालूम होगा कि वह शारीरक और सामाजिक दुःखोंसे निरंतर दुःखी रहे–और वास्तव में जिन कार्य्यों अथवा मंतव्यों की पूर्ति के लिये धन सञ्चय करना आवश्यक था उस धन से इन कार्य्यों और मन्तव्यों की पूर्ति कोसों दूर रही।

प्यारी वेटी! इसका कारण यह है कि संसार में धन ही एक ऐसा पदार्थ है जिस से लौकिक और पारलौकिक इच्छाओं की पूर्ति हो सक्ती है। धन ही एक ऐसा स्रोत ह जहां से सभी प्रकार के सुखों का विकास होता है अतएव जब तुमने अन्याय पूर्वक दूसरों से ऐसी मूल्यवान वस्तु को छीन लिया तव निश्चय जानो उस की सारी उन्नतियों पर कुठाराघात किया। उसकी सारी इच्छाओं पर पानी फ़ेर दिया। उसके सारे संकल्पों और मनोरथों को चूर्ण करदिया। भला फिर तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की उन्नति कैसे हो सक्ती है? तुम्हारी इच्छायें कैसे पूर्ण हो सक्ती तुम्हारे संकल्प और तुम्हारे मनोरथ कैसे सफल होसक्ते हैं। महात्मा भर्तृहरि कहते हैं।

"जो जन अपने स्वार्थ के लिये दूसरों की स्वार्थ रक्षाका ध्यान नहीं धरते अर्थात् उनके हानि लाभ की चिन्तना (पर्वाह) नहीं करते वे मनुष्य नहीं किन्तु मानवस्वरूप में राक्षस हैं।"

तेऽमी मानव राक्षसाः परहितं स्वार्थायनिघ्नतिये।

अथर्ववेद का० ६ सू० ४ मं० १६ में कहागया है कि धनादि पर पदार्थ हरण करनेवाले नरनारी ईश्वरीय नियम से कुत्ता कुतिया कछुए और कीट आदि नाना हिंसक स्वभाव वाली योनियों में जन्म लेते हैं।

ते कुष्ठिकाः सरमायकूर्मेभ्या अदधुः शफान्।
अबध्य मस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन्॥

इसी हेतु यजु० अ० ६ मं० ६ में कहागया है, कि सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ दृष्टिगत होता है उन सब में परमेश्वर व्यापक है जो नरनारी उसकी आज्ञाओं को भूल जाते हैं वे सब दुःखों को भोगते हैं इसलिये हे जीव! तू किसी का धन लेने की इच्छा न कर।

ईशा वास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम्॥

इसलिये सुख भोगने के हेतु अथवा मनुष्य जीवन को निर्दोष एवं निष्पाप बनाये रखने के लिये धर्म्म और न्याय से धन सञ्चित करनेका स्वभाव बनाओ।

ऋग्वेद में कहागया है, हे मनुष्यो! यदि तुम धन की इच्छा करो तौ धर्मयुक्त पुरुषार्थ द्वारा सञ्चय करने की चेष्टा करो। यजु० अ० २० मं० ६६ में कहा है कि जो धर्म के आचरण से धन को बढ़ाते हैं। वे ही प्रशंसनीय हैं। ऋ० मं० ५ अ० ५ सू० ६१ मं० १२ में बतलाया है कि जो पुरुषार्थ द्वारा न्याय और धर्म्म से चांदी सोना आदि धन धान्य को इकट्ठा करते हैं वे ही सूर्य्य तुल्य प्रकाशित और यशस्वी होते हैं एवं वेही महात्माजन सच्चे परोपकारी हैं।

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेश्वा।
दिवि रुक्म इवे परि॥

ऐसा ही यजु अ० ६ मं० ७२—७६ में कहागया है लेकिन यह वहुत सम्भव है कि इस रीतिपर तुम लक्षाधिपति न होसको परन्तु निश्चय रखो कि अधर्म और अन्याय से धन सञ्चित करनेवालों से कहीं अधिक सुख और शांति का अनुभव करोगी। साथ ही यद्यपि लक्ष्मी चञ्चल कही जाती है। परन्तु जो धर्म्म से उपार्जन करते हुए अपने कर्त्तव्यों को पूरा करते एवं किसी भी समय में धैर्य्य से, विचलित नहीं होते, दान, अध्ययन, यज्ञ, और पितृ, गुरु, अतिथियों की विधिवत पूजा करते, जितेन्द्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, श्रद्धावान, अक्रोधी, पर निन्दा से विलग, दान शील, तथा अन्यों की उन्नति और समृद्धि की वढ़ती को देख ईर्षा द्वेष के वश हो शत्रुता करने के ध्यान से विरत, श्रेष्ठाचार सम्पन्न, मित सञ्चयी, और अपने हक्क पर सन्तुष्ट तथा दूसरों को भी उनके स्वत्व के अनुसार समग्र वस्तुयें देनेवाले, कृपावन्त एवं सरल स्वभावी अपने कुटम्बी अथच सेवकों को यथोचित भोजन वस्त्र धनादि से सन्तोषित रखने वाले, लज्जाशील, दस वजे पीछे शयन और सूर्य्योदय से प्रथम ब्राह्म मुहूर्त में उठ परब्रह्म के ध्यान में लगने वाले, मङ्गलमय सुन्दर २ वस्तुओं से द्विज श्रेष्ठों की पूजा में अनुरक्त, दीन हीन अनाथ आतुर, वूढ़े, निर्वल, अवला, की सहायता देने वाले, त्रासित, दुःखित, व्याकुल, भयसे आर्त व्याधित, कृश, हत सर्वस्व आदि आपद्ग्रस्त को आश्वासन देनेवाले, अहिंसक, सत्यनिष्ठ, सर्व जीवोंपर यथेच्छ दया, एवं पर स्त्री सम्पर्क को पाप समझने वाले, सदा दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, अहंकार हीनता, परम सुहृदता, क्षमा, सत्य, दान, तपस्या, शौच, करुणा, निठुरता रहित वचन मित्रों के विषय में अद्रोह, तथा, असूया, विषाद, स्पृहा रहित नीतिवान साहसी परिश्रमी होने के साथ अपने देश एवं मनुष्यजाति की आवश्यकताओं को देश और कालके अनुसार पूरा करनेमें लगे रहते हैं उनके समीप लक्ष्मी अपना चञ्चलपन छोड़ देती है अर्थात् सदा रहती है।

इसके अतिरिक्त बेटी ! परिवर्तनी माया की रंगत में गृहस्थाश्रम की ऐसी सभी रीतियों और व्यवहारों की अवस्था बदल गई है पहले जो गृहस्थ दस रुपयोंमें निर्वाह करसक्ता था उसे आज पचासमें गुजारा करना दुर्लभ है—इसका कारण कुछ तो वस्तुओं की गिरानी भी है। लेकिन सबसे बड़ा कारण हमारी इच्छाओंका बढ़ना है बेटी ! जब हम खाते थे एक तरकारी दाल चावल रोटी, पर अब हमारे लियें चाहिये कमसे कम चार तरकारियां कुछ मिठाई कुछ नमकीन कुछ चटपटी चीजें, इनके बिना पेट भरना कैसा ? जब हम कुए के जलसे ही अपनी प्यास को शांत कर लेते थे-तृप्त रहते थे-परंतु अब वर्फ-चाहिये। जब हमारा हाजमा स्वयं (व्यायामी जितेन्द्रियता और उचित आहार विहार से) होजाता था, परंतु अब जठराग्नि दीप्त करने के लिये लिमुनेड और सोडा की बोतलें चाहिये सिगार और सिग्रेटकी जरूरत है। जब एक पैसेके पानोंमें गुजर होती थी पर अब कमसे कम दो आने के तो चाहिये। अपनी दिमागी ताकत के लिये घी दूध फल के अतिरिक्त किसी वस्तु के उपयोग की आवश्यकता न थी परंतु अब अनेक पौष्टिक औषधियों और सुगन्धि तैलों की जरूरत है । जब हमारी बढ़िया से बढ़िया पोषाक का बिल यदि १० का था तो आज सौका होता है, और पचास से कमका तो किसी हालत में कम नहीं ऊपर से, कालर टाई नेकटाई फुलबूट का खर्चा अलग इस प्रकार कहांतक गिनावें, ऐसी इच्छाओं के विस्तार की सीमा पाना कठिन है और इनकी पूर्ति के लिए बहुत धन की आवश्यकता है—पस यही समस्या मनुष्य को स्वतः अधर्म से धन उपार्जन-सञ्चय और इकट्ठा करने के लिये विवश करती अथवा उद्यत कर देती है—प्रमाण के लिये देखलो जैसे २ यह कामनायें बढीं तैसे २ ही बेइमानी, छल, विश्वासघात का बाज़ार गरम होता जारहा है, कोई भी, किसी भी, विषय में अपने स्वार्थ के लिये-चालाकी करने से नहीं चूकते, अपना अपराध होने पर दण्ड देकर प्रायश्चित करने की अपेक्षा, किसी प्रकार हमारे ऊपर अपराध सिद्ध न हो हम दण्डनीय न हो सकें निश्चय ही इसके लिये हम अपनीसारी शक्ती खर्च कर देते हैं ?

सारांश यह है कि जैसे देखा देखी इन इच्छाओं की वृद्धि होती जा रही है वैसे ही मैंने तुम्हारे साथ किया, तुमने औरों के साथ हाथ मारा,

इस बुरी प्रथा का प्रचार होगया, येनकेन प्रकारेण धन इकट्ठा करने की भी रीति पड़गई साथही जबतक हम इन अशांतियुक्त लौकिक विषयों की इच्छाओं को कम न करेंगे तबतक केवल धर्म और न्याय से धन उपार्जन करेंगे वा करावेंगे ऐसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना दुष्कर है ॥ इस लिए हमें अपनी ऐसी व्यर्थ की इच्छाओं के दमन करने का प्रयत्न करना चाहिए तबही ऊपर वाली प्रतिज्ञा के अनुसार चल सकेंगे-और फिर देखा देखी सबही अपनी बुरी कुटेवों को छोड़ इस श्रेय पथ पर चलने में अग्रसर होवेंगे देश में बढ़ता हुआ *विलासिता* का प्रवाह रुक जायगा। जनता आडम्बर शून्य रहना अच्छा समझेगी।

इसी हेतू वेद में कहा गया है कि संसारी जन थोड़े व्यय से शुद्ध आहार विहार करें। अथर्व का० ७ सू० ७४ मं० ११

अब वर्तमान भारत में धन उपार्जन के लिए किस मार्ग का आश्रय लिया जाता है उसे मैं मौ० हाली के शब्दों में बताता हूं।

नौकरी ठहरी है ले दे के अब औक़ात अपनी।
पेशा समझे थे जिसे होगई वह ज़ात अपनी ॥
न दिन अपना रहा और न रही रात अपनी।
जापढ़ी ग़ैर के हाथों में हर एक बात अपनी ॥
वर्ना दिन रात फिरें ठोकरें खाते दर दर।
सनदें चिट्ठियां पर्वाने दिखाते दर दर ॥
चापलूसी से दिल एक एक का लुभाते दर दर।
ताकि ज़िल्लत से बसर करने की आदत होजाय।
नफ़्स जिस तरह बने लायक़े ख़िदमत होजाय ॥

तुमने समझा आजकल कृषि और वाणिज प्रधान भारतवर्ष के धन, उपार्जनका मुख्य साधन यही (नौकरी) समझा जाता है अतएव इस

पदके प्राप्त करलेने की योग्यता प्राप्त कराने में ही हम अपने प्यारे बच्चोंके शरीर और मन की आहुती, धनका स्वाहान्त संस्कार कर डालते हैं और इसके योग्य होजाने में ही योग्यता की इति मानी जाती है। अतएव सबका लक्ष्य इसी पर रहता है-इसे पालेना कृत कृत्य होजाना, अथवा अपने जीवनकी सबसे बड़ी सिद्धि वा सफलताको प्राप्त कर लेनाहै। लेकिन हम भ्रम-बुद्धि से बहुत ही उल्टे प्रवाह में बहे जा रहे हैं, और धारा के प्रवाह के विपरीत जाने और तैरने वालेकी जो गति होती है निश्चयही आज हमभी वैसेही असमञ्जस में पड़े हुए हैं-पर इस महाभूल अथवा विपरीत वायुका स्पर्श लेने का स्वभाव होने का कारण मेरी मति में यह निश्चय हो सकाहै बेटी! महाभारत के पीछे यहां शिक्षा की दशा सुसंगठित न रही भारत के अन्यान्य शासकों ने प्रजा को शिक्षित करना अपना धर्म्म एवं कर्तव्य न समझा, परन्तु प्रजाहितैषिणी न्यायशीला गवर्नमेन्ट इंग्लिशिया ने अपने राज काल के आरम्भ से ही इस विषय पर विशेषरूप से ध्यान ही नहीं दिया प्रत्युत शिक्षा विषय में प्रजा की अत्याधिक रुचि बढ़ाने के लिये अनेक उपायों से उसको प्रोत्साहन भी दिया। बेटी, ! उन उपायों और उन साधनों में एक उत्कृष्ट उपाय-और साधन-भारत निवासियों का अनेक पदों पर नियुक्त करना भी रखागया, लेकिन सरकार के उक्त भावको न समझने से हम इस लहर में इतने दूर तक बह गये जिसमें तन बदन का सम्हार ही न रहा, हमारी सारी परस्थिती एकबार ही बदल गई, हम इस रंग में इतने रंगगये जिसमें अपने रंग की क्षीण रेखामात्र ही रहगई। हम इस ध्यान में इतने मस्त होगये जिसमें किसी अन्य धुन के लिये स्थान ही न रहा। हम इसके राग में ऐसे तल्लीन होगये जिससे और राग भूल ही गये। परन्तु इस ध्येय को सर्व सर्वामान कर अपनाने से हम समृद्धशाली नहीं हुए हमारे सुखोंकी वृद्धि नहीं हुई बल्कि आज जो दशा है उसको बतलाते हुए हृदय कांपता है। जिस भारतका निवासी अपने परिवार का भरण पोषण दो चार आने मात्र में कर सक्ता था वहां आज दश बीस रुपयों में करना दुलर्भ होरहा है। यद्यपि अब भी यहाँ न्यून से न्यून २० करोड़ का जीवन कृषि पर ही अवलम्बित है और प्रश्नीय समृद्धशाली (इंग्लैंड में जितना अन्न उत्पन्न होता है उससे वह

वर्ष में ६० दिन एवं जर्मनी १०४ दिन काट सक्ता है) देशों की अपेक्षा यहाँ अधिक अन्न उत्पन्न होता है परन्तु-यह देश अन्न के दानों को तरसता और पश्चमी देश इतना अन्न न पैदा करने पर भी चैन की वंशी बजाते हैं-यहां के निवासियों में से १० करोड़ को पेट भर खाना भी नहीं मिलता सन् १७९३ से १९०० अर्थात् एकसौ सात वर्षों में संसार के सारे युद्धोंमें ५० लाखसे अधिक प्राणी नहींमरे, परन्तु इतने ही समय के बीच अकेले भारत में अकालों की मार यानी अन्न के ही दुख से **तीन करोड़ पच्चीस लाख** प्राणियों ने अपना बलिदान कर दिया सम्राट अकबर के शासन काल में

गेहूं ३ऽ१३ सेर
जौ ४ऽ२२ ,,
बाजरा ४ऽ२२ ,,
चावल ३ऽ२२ ,,
दालमौंठ २ऽ३० ,,
दालमूंग २ऽ१० ,,
नमक ३ऽ१ ,,
बूरा ऽ२८ ,,
घी ऽ१५ ,,
तेल १ऽ२४ ,,
हल्दी १ऽ३५ ,,

सन् १८३७ में

गेहूं १ऽ५ चना १ऽ१५ बिभड़ा १।।ऽ जौ१।।ऽ बाजरा१ऽ५ उर्द मूंग ज्वार २ऽ२अरहर २ऽ चावल ।। ऽगुड़। ऽ३ घी ऽ४।। तेल ।ऽ४

सन् १८६७ में

गेहूं ऽ६।।। चना।ऽ बिभड़ा ।ऽ। जौ ।ऽ१।।। बाजरा ऽ७।। उर्द ऽ७।। मूंग ऽ६।। ज्वार ।ऽ।। अरहर ।ऽ।।। चावल ऽ८।। गुड़ ऽ८।।। घी ऽ१।। तेल ऽ३।।

सन् १८९७ से अबतक उक्त दर में बहुत कुछ हेर फेर होचुका है। इसके अतिरिक्त हमारी इस धुनका, इस लहरका, इस रागका, इस रंगका, इस इच्छा के प्रभाव की सीमा यहीं तक नही रह सकी वरन इसके प्रभाव की व्यापकता हमारी सारी अवस्थाओं पर हुई क्योंकि जीवन के कार्य्य क्षेत्र में खाद्य सामिग्री को छोड़ कर और भी अनेक छोटी बड़ी वस्तुओं की आवश्यकता होती है अतएव जो देश, जो सम्राज्य अपनी आवश्यकताओं की प्रत्येक प्रकार से पूर्ति का ध्यान रखता है-करलेता है- वही देश वही राज्य और वही सम्राज्य सुखी हो सक्ता है। परन्तु हम लोग तो अपनी धुन के पक्के **मस्तराम** ठहरे हमें सुख कहां? इसके विचार करने की ज़रू-

रत कौन समझे? इस ओर लक्ष्य देने का अवकाश किसे ? फल यह हुआ कि विदेशों के बाजारों से ही हमारा प्रभुत्व नहीं घटा प्रत्युत हमें अपनी आवश्यकताओं के पूरा करने के लिये बाहर के देशों का मुंह देखना पड़ा और धीरे २ प्रत्येक प्रकार से हमारे देश के बाजार उनके हाथ में होंगये प्रति वर्ष लाखों नहीं बल्कि करोड़ों की विदेशी वस्तुऐं यहां खपने लगी हैं और प्रति दिन इसकी वृद्धि ही होती जाती है।

सन् १९०६ में विदेशों से आये हुए विविध प्रकार के मालका मूल्य १,०८,३०,७५;८१८, रुपया था सन् १९०६×७ में ६३, १२, ७११ की केवल दियासलाइयां आई और सन् १९१३ + १४ में आईहुई दियासलाइयों का मूल्य ९८, ३५, ७१०, होगया सन् १९१३+१४ में केवलजर्मनि से ५३८०६६, पौण्ड का रंग शीशे का सामान १९०५७७, पौ० लोहे का सामान ४,८२,२८४ पौ० तांबे का सामान ८,६६,२१२ पौ० रुई का सामान ९४४, ५०४ पौ० ऊनी माल ७,१६,३८४ पौ० का आया इसी वर्ष आष्ट्रिया से शीशे और शीशे का सामान ५,८२,५४१ पौ० चीनी ९,२२,४६० कपास का समान २,२५,१५२ पौण्ड का भेजा। इसी वर्ष विदेशों से ८०,४४,८१५, रुपयों की चूड़ियां और अन्य कांच का सामान १,१४,०७,९७०, एवं ०१४+१५ में कांच की चूड़ियां ३७,५४,७३५ अन्य सामान ६८,८७००० और सन् १९१५ वा १६ में कांच की चूड़ियां २३,१५,८३५, कांच का अन्य समान ८३,२८,६६०– सन् १६ और १७ में चूड़ियों समेत सब प्रकार के कांच के सामान की कीमत १,५०,०९,१६७, रुपया थी। इसके अतिरिक्त सन् १३×१४ में ३,३९,२३७, के खिलौने आये एवं प्रति वर्ष ६,००,०००, नमक, बने बनाये औजारों और हथियारों के लिये १५,००,००,०००,६०,००, ००० रसयिनिक वस्तुओं केरस, एसिड (तेजाब) २,४०,०००, सारसा परेल (उशबा) ३७,५०० गन्धक ६,००,००० सोडा मिश्रण ३,३०,००, ०००,खनिजजल १,०५०००,और ४,२०,०००,रुपयोंकी फिटकरी आती है। इस प्रकार व्यापारके अधीश होने के स्थान पर हम अपनी उसी धुन के कारण आज व्यापारी नहीं किन्तु दल्लाल अथवा दूर देश वासियों

के माल की खपत कराने वाले एजन्ट रह गये, इसी लिये हमको सभी वस्तुऐं विदेशियों के मनमाने मूल्य पर लेनी और अपना कच्चा माल भी उनकी इच्छित दर पर ही बेचना पड़ता है—क्योंकि कच्चे माल को अधिक दिनों तक स्वदेश में रोक नहीं सक्ते—दूसरे यदि किसी तरह हमारे किसान व्यापारी कच्चे माल की दर भी चढ़ादें तो वह नफा हमारे घर में नहीं रह सक्ती बल्कि पक्के विविध प्रकार के माल को क्रय करने के समय—उतनी तेजी करनेके अपराध स्वरूपमें कुछ, अपनी गांठसे भी भेंटकर देना पड़ता है। प्रमाण के लिये इस प्रकार समझो—कि अपने लाभ के लिये यहां वालों ने ५०० खेड़ी के हिसाब से रुई को बेचा और वह यहां से म्यांचेष्टर अथवा जापान को गई एवं फिर वहां से कपड़ा आदि बनकर भारत में आया, तो दोनों ओर का जहाज का किराया, टैक्स, वीमा कम्पनी का चार्ज आदि अनेक खर्चों का बोझ कपड़े पर ही रखा गया, एवं खर्च आदि के अनुसार उसका मूल्य निर्धारित हुआ परिणाममें एक २) धोती जोड़े का मूल्य२ के स्थान में ५) और ।) गज के कपड़े की दर ।।-) ।।≈) पर जा पहुंची। अतएव सन् १६१५+१६ में जितने कपड़े मूल्य ४३ करोड़ देना पड़ा उसी का सन् १७ में ५२ करोड़ देना पड़ा। सन् १३+१४ में ६३३५०० टन शक्कर के लिये लग भग १२ करोड़ रुपया दिया गया परन्तु सन् १७ में ४४०१०० टन शक्कर का मूल्य लग भग पौने १५ करोड़ देने पड़े। १६११ में १३ करोड़ के खनिज पदार्थ भारत से विदेशों को गये और उन खनिज पदार्थों से बने हुए वस्तुओंके लिये २६३ करोड़हमने भेंट किया इसी प्रकार, दुआं अलसी राई सरसों आदि तिलहन आदि अनेक वस्तुयें विदेशों को यहां से मनों के हिसाब जातीं, और फिर वहांसे उन्हीं का तेल, अर्क रस, सत बनकर आता है जिसे हम सेरों, वा औन्सोंके हिसाबसे खरीदते हैं। अतएव बेटी, जितने कच्चे माल की कीमत हमें एक अरब पौने पैंतालीस करोड़ मिलती हैं यदि हम उसी से पक्का माल तैय्यार करें तो कम से कम साढ़े दस अरब और प्राप्त हो सक्ते हैं। लेकिन यह लाभ पश्चमी देश वासी उठाना भली भांति जानते हैं एवं इन्हीं कारणों से पश्चमी देश वासियों की आय का वार्षिक औसत बढ़ता एवं भारत का दिनों दिन घटता जाता है—इस

समय संयुक्त राज्य अमेरीका ६६० ग्रेट वृटेन ५४० फ्रांस ४६८ जर-मनी ३७२ वेलिजयम ४२० हालैंड ३०० नारवे २०१ आष्ट्रेलिया २५२ इटाली २४० स्पेन २४० और भारत की वार्षिक आमदनी का औसत १५) रुपया है। इसका दैनिक नौ पाई पड़ता है परन्तु ऐसी आय जो कि कुछ नहीं के बराबर है भारत वासी, पुत्र उत्सव, विवाह, एवं ५२ लाख साधुओं की पालना और मुकद्में वाजी में धूल की तरह रुपया फूंकने के अतिरिक्त करोड़ों का स्वाहा नशे वाजी में करडालते हैं। देखो १६१२ में सिंध की आवादी ३० लाख वहां १ लाख १५ हजार सेर भंग पीगई, वम्बई की जन संख्या १ करोड़ उसमें ७० लाख ६४ हजार सेर संयुक्त प्रांत ने १ करोड़ ६६ हजार सेर भंग आदि और ६४ हजार सेर अफीम, पंजाव जिसकी जन संख्या वम्बई के बरावर है १ करोड़ २६ हजार सेर भंग आदि और ६६ हजार सेर अफीम वंगाल में १ लाख ५१ हजार सेर भंग और ६७ हजार सेर अफीम खाई गई। अधिक क्या बेटी, सन् १६०१ और २ में आवकारी महकमे से ६ करोड़ १७ लाख की आय हुई वहां १६१०+११ में १० करोड़ ५४ लाख पर पहुंच गई।

लेकिन यूरोपके अमेरीका और फ्रांस देश के निवासियों की वार्षिक औसत आय क्रमशः ६६० और ४६८ होने पर वह यह बुरा व्यसन दिनों दिन कम हो रहा है **अमेरीका** के तीन चौथाई से भी अधिक में शराव का व्यापार भाया बंद सा है-जिन स्थानों और कोठियों में जिन २ कलों एवं मैशीन से शराव बना करती थी उन स्थानों में उन कलों से और ही काम होने लगे हैं।

फ्रांस में अब कोई शराव नहीं छूता अन्यान्य मादक द्रव्योंके लिये भी कानून बनने वाला है।

रूस की प्रजा प्रति वर्ष डेढ़ अरव रुपयों की शराव पीडालती थी लेकिन अब वहां शराब न बनती न दूसरे देशों से जाती और न विकती अतएव न कोई पीता है।

चीन में अफीम की खेती खूब होती थी और हर साल १२ करोड़ ४० लाख की भारत से जाया करती थी परन्तु न तो अब स्वदेश

में उपज कराई जाती और न वहां विदेशों से आती है। इस परिवर्तन के कारण में केवल मात्र सरकार का रूल, आइन की धारा अथवा कानूनकी रोक समझना भारी भूल है। बेटी! कानूनके-बलसे शिक्षाका बल, बहुत और स्थाई होता है-इसलिये जंगली और हबशियों को शासन करने की अपेक्षा शिक्षित समुदाय पर शासन करना कहीं अधिक सुगम और सुख जनक होता है। क्योंकि कर्तव्य अकर्तव्य, सुकर्म्म कुकर्म्म का ज्ञान कराने वाली शिक्षा है-विना शिक्षा के न तो कोई बुरे कामको छोड़ सक्ता और न अच्छे कार्य्यको आरम्भ करसक्ता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जन संख्या १० करोड़ है उसकी शिक्षा के लिये छोटी २ प्रारम्भिक पाठशाला मिडिल एवं हाईस्कूल तथा नार्मल स्कूलों को छोड़ कर लग भग ६०० कालिज और ४८ सरकारी यूनी वर्सिटियां हैं और सर्वसाधारण के धन से चलने वाले कालेज एवं महाविद्यालयों के अतिरिक्त छोटी बड़ी सौ यूनी वर्सिटियां हैं। प्रत्येक के लिये १४ वर्ष तक पढ़ना लाजिमी है, फीस किसी पर यहां तक नहीं ली जाती, किन्हीं स्थानों में पढ़ने लिखने का सामान भी दिया जाता है। सम्प्रति अमेरिका के मिनेष्टा(Minnesota) नामक रियासत का विश्व विद्यालय इस समय १,६२२ विषयों की शिक्षा देता है-हाईस्कूलों की शिक्षा समाप्त करके ५,३५६ विद्यार्थी शिक्षा यहां पारहे हैं। और अपने २ विषयों के निष्णात् अथवा पूर्ण विद्वान ५३८ अध्यापक हैं-सरकार ७,५६ ८२,८६०, रुपये प्रति वर्ष खर्च के लिये देती है।

इसी शिक्षा के प्रभाव से उधर नित्य नये आविष्कार होते हैं मजदूरी महंगी होने से मनुष्यों के स्थान पर आविष्कार की हुई नवीन २ मैशीनों और कलों से काम लिया जाता है और जिन वस्तुओं को हम बेकार समझ फेंक देते हैं वे लोग वैसी बेकार चीजों से बड़ी २ उपयोगी वस्तुयें बनाकर दाम खड़े करते हैं। देखो अमेरिका के प्रेस्टन नगर में गन्ने के छिलकों (रस निकल जाने पर जिन्हें हमारे यहां जला देते हैं) की ५० मन पिट्ठी तय्यार करा ३५ मन कागज तैय्यार करते हैं। जापान के कारीगर घोड़ों के सुम और नाखूनों से अनेक प्रकारके बटन और चाकू के बेंटे बनाते हैं। लकड़ी के बुरादे को कीचड़ में मिला खिलौने-एवं इसी

के २०० पौ० से दो ग्लेन शराब तैय्यार करते हैं। धातुओं के मैल से (भाफ देने वाले नल) ष्टीम पाइप आदि अनेक वस्तुयें तैय्यार की जाती हैं। कोयलों के मैल को चूने में मिला काले पत्थर के तुल्य एक पदार्थ बनाते हैं। लकड़ी के बुरादे से शक्कर बनाने की रीति भी निकाली आ चुकी है।

इसके अतिरिक्त ऐसे शिक्षा विस्तार के कारण संसार के सभ्यता भिमानी देशों के शिक्षितों से अमेरिका का नम्बर सब से ऊंचा है वहां (अमेरिका) प्रति लाख में २८० स्विटजलैन्ड २०१ स्काट लैंड १७८ फ्रांस १०७ वेल्स १०० स्पेन ८६ आष्ट्रिया ८३ जर्मनी ७७ इंग्लेंड ७४ आयर्लैंएड ७३ नारवे ७१ फिन लैंएड ७० स्वीडन ७० इटाली ६६ वेल- जियम ६५ हालैएड ६३ जापान ६२ हंगरी ५० अमेरिका के हवशी ४५ मेस्को २३ पोर्चूगाल २३ रूस २२ और भारत में-सन् १६१३+१४ में सरकारी और सर्व साधारण के व्यय से चलने वाली प्रारम्भिक संस्थायें १,३१,४४४ माध्यमिक ६,८७६ विशेष प्रकार की शिक्षा देन वाली ७,२०८ कालेज १६७ प्राइवेट ३६,८५६ थी-एवं इनके द्वारा शिक्षा प्राप्त कर भारत की ३१ करोड़ नर नारियों में से १,६६,३८,८१५ साक्षर तथा प्रति लाख में १० उच्च शिक्षित हैं। उपरोक्त संस्थाओं के चलाने में उसी वर्ष (१६१३×१४ में) ६६, ५८७ पौंड खर्च किये गये। और भी अन्य प्रकार से यों समझो भारत का क्षेत्र फल वर्ग मील है और एक वर्ग मील में केवल ५६ आदमी ऐसे हैं जो कुछ २ पढ़े हैं- एवं १० वर्ष से १५ की आयु वालों में तो केवल ६५-साथ ही स्कूल जाने योग्य बालकों में से १२ शिक्षा पाते हैं।

भला जिस देश में शिक्षाका शकट ऐसी चाल से चल रहा हो जहां के शिक्षा रूपी सूर्य्य का प्रकाश इतना नीचा हो वहां सुरीतियों का प्रचार कैसे होसक्ता है? वहां उन्नति किस विरते पर होसक्ती है? लेकिन शिक्षा की इस कमी का सारा दोष सरकार पर नहीं मढ़ा जा सक्ता प्रत्युत उस से कहीं अधिक दोष सर्वसाधारण का है। बेटी! साधारणतया यहाँ की जनता प्रति वर्ष ५० करोड़ रुपया दान कर डालती है यदि इस धन का उपयोग शिक्षा विषय में किया जावे तो क्या यहां सब प्रकार की शिक्षा

के सुभीते सुलभ न हो जांय? क्या राज्य में मूर्खों की संख्या शून्य मात्र न रह जाय? फिर शिक्षित भारत उन्नति के सोपान पर न चढ़े—अवश्य ही—यह सब सम्भव है परन्तु हम इसका ध्यान कब करते हैं। सारे जन समुदाय में उन्नति और जाग्रतिकी लहर प्रवाहित करने वाली उन्नीसवीं सदी में भी भारत वर्ष में अविद्या का अंधकार बना रहे वह, अवनति की कीचड़ में फसा रहे इसकी हमें कोई चिंता नहीं होती। वास्तविक शिक्षा के प्रचार के कारण हमारे देखते २ थोड़े से समय में कई द्वीप वा राष्ट्र असभ्यों की श्रेणी से निकल, सभ्य और उन्नत शील एवं हमारे लिये आदर्श हो गये।

इसके प्रमाण में *जापान* का नाम लेना उपयुक्त है। आज से साठ वर्ष पहले बड़े २ उन्नति प्रधान सभ्यता भिमानी देशों के सामने जापान निरीह बच्चा सा था राष्ट्रों की गणना से बाहर था—परन्तु आज इतने ही वर्षों से यह बात नहीं रही जापान—सभ्य होगया—राष्ट्रों की गणना में सम्मलित होगया, संसार की दृष्टि उस ओर लग गई—क्योंकि अब वह स्वदेश में प्रत्येक प्रकार की छोटी से छोटी और व्यापारी तथा युद्ध के बड़े २ जहाजों तक को अपनी अवश्यकता पूर्ति के लिये तैय्यार नहीं करता प्रत्युत प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों के रेशमी, सूती वस्त्र, कालीन, चीनी के वर्तन, छाते, रंग, वार्निश, दियासलाई, कपूर, कागज, पीतलकी चद्दरें और तांबे का सब प्रकार का तार बच्चों के खिलोने आदि अनेकों वस्तुऐं विदेशों के लिये भेजता है सन् १९१० में कागज बनाने के ६०,००० मैशीनों द्वारा कपड़ा बुनने के ४,६६२—मैशीनें और दूसरी लोहे की वस्तुऐं तैय्यार करने के १,१७५ फुट कर चीजों के बनाने वाले १,२९५—आधुनिक ढंग के ६,२५५ कारखाने थे। पुनः दस वर्ष के भीतर सुन्दर और सस्ता कपड़ा बनाने में जापानी कारीगरों ने जैसी निपुणता प्राप्त करली वैसी निपुणता चेष्टा करते रहने पर भी म्यांचेष्टर वाले तीन पीढ़ियों में नहीं प्राप्त कर सके। पिछले वर्षों में (१९१३×१४) में जापान भारत को पन्द्रह हजार की कांच चूड़ियां भेज सका—परंतु अन्य राष्ट्रों के युद्ध में सम्मलित होते ही और अपने कौशल उद्योग बल से १९१५×१६ में

१५ लाख की केवल चूड़ियां भेजीं और १९१६ × १७ में यहां ९० लाख का सब प्रकार का कांच का सामान भेजा गया।

इसका कारण यह है कि जापानी बालक और बालिकायें साधारण एवं उच्च साहित्य, शिल्प, औद्योगिक कार्य्य, और विज्ञान आदि सभी प्रकार की शिक्षा अपनी भाषा द्वारा ही प्राप्त करते हैं। जापान के अनेक प्रकार की दस्तकारी करनेवाले कारीगर, कपड़े बुनने वाले, कपड़ा आदि रखने वाले रंगरेज़, वैज्ञानिक रीति से खेती करने वाले किसान, मकान बनाने वाले वा खनिज पदार्थों के निकालने वाले बाग़ और उपवनों में काम करने वाले माली तथा गाने वाले भी अपने २ विषयों में उच्च शिक्षित और सुदक्ष मिलेंगे। अस्तु कहने का तात्पर्य्य यह है कि बिना सर्वांगिक शिक्षा के देश की *शिल्प* (कला कौशल नाना औद्योगिक कार्य) *वाणिज्य* और *कृषि* की उन्नति नहीं हो सक्ती क्योंकि—मूर्ख *शिल्पी* अपनी शिल्प अथवा प्रस्तुत पदार्थों में देशकाल के प्रवाह के अनुसार परिवर्तन नहीं करसका, देश की आवश्यकता के अनुसार उसको उपयोगी नहीं बना सक्ता और किसी भी वस्तु के समयानुकूल न होने से वह नष्ट प्राय होजाती है। और *व्यापारी* भी भले प्रकार देश का भूगोल इतिहास किस समय किस देश में कौन २ वस्तुओं की आवश्यकता होती और वह कहां से लाई जा सक्ती है उसके लाने में किस मार्ग में लाभ होसक्ता—कौन २ वस्तुयें कौन देशों में अधिक उत्पन्न होती है देश में किन २ पदार्थों के अधिक संख्या में उत्पन्न कराने से लाभ होगा इत्यादि विषय और अनेक भाष भाषी हुए बिना लाभ नहीं उठा सक्ता। *गंवार किसान* यह कभी नहीं जान सक्ता कि अमुक फसल के तैयार करनेके लिये भूमिमें कैसा खाद डालना लाभकारी होगा—अमुक फसल कितने दिनोंतक किस प्रकार सुरक्षित रखी जासक्ती है, अमुक अन्न, फल, उपजाने के लिये कैसा बीज अच्छा होगा, वह किस देश में अच्छा मिलता है—पानी कितनी बार देना लाभ दायक होगा—अमुक फल अन्न भाजी में कौन से द्रव्य युक्त जल देने अथवा कौन से गुण युक्त खाद देने से वह अधिक सुगंधित और गुण वाला सरस होगा इस फस्ल के साथ क्या २ वस्तुएं और उत्पन्न कर अपनी आय को बढ़ा सक्ते हैं।

इसके उपरांत वर्तमान काल में भारत वर्ष जिस प्रकार रोगों का घर हो रहा है वैसा शायद ही कोई रोगाक्रांत सम्राज्य हो। यहां के अखबारों में ४८ फीसदी ऐसे विज्ञापन दवाओं के छपते हैं। इसका अन्यान्य कारणों के साथ एक यह भी प्रबल कारण है कि यहां के किसान अज्ञान वश खेतों में भ्रष्ट खड्डी का खाद डालते और शहरों के नाबदानों के पानी से भरी हुई गाड़ियां को छुटवा कर सींचते हैं ऐसी खाद और सड़े गले अनेकान कीड़ों वाले पानी के द्वारा उत्पन्न की हुई शाक भाजी एवं अन्न को हम प्रति दिन खातेहुए अनेक रोगों के कीटाणुओं को अपने पेटमें रखते चले जाते हैं। फिर कहो हमारे मस्तिष्क शुद्ध बुद्धि पवित्र और शरीर कैसे पुष्ट रहे? लेकिन अविद्या के अंधकार में किसे कुछ सूझता है कि निर्बोध किसान स्वप्न में भी नहीं जानते, कि भूमि के दोष कैसे नष्ट किये जा सक्ते हैं, खेतों में वा खड़ी फसल के साथ लगते हुए नाना प्रकार के कीड़ों के नाश करने का उपाय क्या है? खेतोंका पोता देने,जमीनका पट्टा खेतों,की बे दखली, आबपाशी आदि के नियम क्या हैं पटवारियों, सिपाहियों, और जिमीदारों के अधिकार क्या हैं। और बेटी! इसतरह के आवश्यक विषयोंके अज्ञात होनेसे वे कठिन धूप और शीत सहते हुए भी वर्ष में ४ महीने भूखे ही रहते हैं।

परंतु भारत की भांति कृषि प्रधान देश न होने पर भी अमेरिका की कृषि और कृषकों की अवस्था को देख चकित होना पड़ता है इस समय वहां कृषि द्वारा प्राप्त की गई आय की संख्या २३ अरब ३३ करोड़ ४० लाख रुपया है। इस आय वृद्धिका कारण केवल मात्र कृषिशिक्षा का बाहुल्य ही समझना चाहिये। सम्प्रति वहां कृषिकी प्रथम श्रेणीकी शिक्षा देने वाली २६ पाठशालायें ४५ सरकारी और १६ प्राइवेट सहायता देने वाले हाईस्कूल और १६ पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा देने वाले स्कूल एवं ११६ जिला नार्मल स्कूल २५० सार्वजनिक और प्राइवेट ऐसे हाईस्कूल हैं जिनमें अन्यान्य विषयों के साथ थोड़ी बहुत कृषि की भी शिक्षा दी जाती है। सरकारी सहायता पाने वाले ६७ कृषि महाविद्यालय हैं इन सब के अतिरिक्त घूम फिरकर शिक्षा देने वाले स्कूलोंकी संख्या पृथक् है।

प्रिय पुत्री! हमारे यहां की शिक्षा की भांति इस शिक्षा की सीमा

पुस्तकों तक नहीं रहती प्रत्युत प्रत्येक कालिज के साथ एक २ प्रयोग शाला होती है जहां विद्यार्थी अपने पाठ को सप्रयोग व्यवहारिक रूप में अपने हाथों सम्पादन कर हृदयङ्गम कर लेता है साथ ही उसका शरीर बढ़ता, दृढ़ होता और प्रचुर धन की प्राप्ती होती है।

इसके अतिरिक्त प्रयोग शालाओं से प्रकाशित हुए उपयोगी प्रयोगों की सर्वसाधारण को सूचना दे दी जाती है। कृषक उसी प्रकार काम करते हैं—साथही खेतों में, खड़ी फस्ल में, अथवा पशुओं में जो खराबी किसानोंको मालूमपड़तीहै वह तुरंतपासकी प्रयोग शालाके अधिकारियोंको सूचित कर देते हैं वहां से उन्हें उचित परामर्श दिया जाता और यदि आवश्यकता हुई तो वहां से कोई आदमी वहां जांच करने के लियेभेजा जाताहै। किसानको इसके लियेकोई खर्च देना नहीं पड़ता-और सम्मति के अनुसार काम करने से जो नफा होती है वह अलग। अब तक कृषि विद्या सम्बन्धी विषयों पर १०,१,५०० पुस्तकें और रिसाले छप चुके हैं। सन् १९१० में प्रयोग शालाओं ने ५८३ छोटी बड़ी पुस्तकें प्रकाशित की जिनकी ९,५२,००० कापियां बिना मूल्य बांटी गईं।

सन् १९१४ में अकेली कैलीफोरनियां यूनि वर्सिटी ने अपने कृषि विषयक तजर्बों की ४,२५००० पुस्तकें किसानों को मुफ्त बांटी, इस यूनिवर्सिटी से पत्रों द्वारा दिये गये परामर्श के अनुसार ६७,४१७ किसानों ने अपनी कृषि में सुधार किये।

सन् १९१० में अमेरिकन सरकार ने कृषि प्रयोग शालाओं की इमारतों के लिये ९,९५,९२२, पुस्तकों के लिये २,३७,३५१, प्रयोग यन्त्रों के लिये १,४२,५१५ १,८८,८५० पशुओं के लिये १,०५,३७२ अन्य प्रयोग वस्तुओं के लिये ११,४६,२३७ और कृषि प्रयोगों के लिये १,०६,११,१०० से कुछ अधिक रुपया खर्च किया।

बेटी! केवल कृषि विषयक अन्यान्य समाचारों के छापने वाले १,४५० समाचार हैं।

ऐसी शिक्षा के कारण इस समय संसार का तृतीयांश धन अमेरिका में है और यही क्रम प्रचलित रहा तो बहुत शीघ्र यानी १९२२ में ही संसार के आधे धन का वह अधिपति होगा। अतएव यह कथन वस्तुतः

अक्षरशः सत्य है कि जिस देश वा जिस राज्य एवं जिस राष्ट्र थवा महासम्राज्य के कृषिशिल्प-वा वाणिज्य की दशा अच्छी नहीं वहां किसी प्रकार की उन्नति एक ओर प्रत्युत पेट भर अन्न और शरीर ढकने के लिये पर्याप्त वस्त्र भी नहीं मिल सक्ते, वहां धन धान्य की वृद्धि, श्रमजीवियों की रक्षा, उच्च विचारों का विकास, महत्वशाली परिवर्तनों का सूत्रपात और सुख तथा शांति का मनोराज्य कभी नहीं हो सक्ता।

प्राचीन भारत में इन सब की दशा बहुत उन्नत अवस्था में थी-यहां की अनेक टिकाऊ और उपयोगी वस्तुओं से भरे हुऐ जहाज फारिस के बन्दरों और चीन के तटों पर जाते थे। यहां के सौदागर और व्यापारी गण रोम और ग्रीस में जाकर माल वेचते थे-यूरोप देशीय कोमलाङ्गी ललनायें यहां के बुने हुए वारीक और सुंदर वस्त्रों को देख चकित होती थीं साथ ही उनके वेषभूषा की सुन्दरता का वे प्रधान आधार थे क्योंकि उस समय ढाके की घर्टिया मल मल के दस गज के थान का वज़न ८ तो० ४ रत्ती होता था और यहीं के बने हुए मसलिन नामक कपड़े के थान फूंक से उड़ सक्ते थे ! लेकिन पश्चिमी शिक्षित कारीगरों तथा-हम लोगों के उस ओर ज़रा भी ध्यान न देने से वह बातें-और वह अवस्था अब अतीत के गर्भ में चली गईं। परंतु इस गई बीती हालत में भी भारत के अनेक स्थानों में अनेक दर्शनीय वस्तुयें बनती हैं उदाहरण के लिये *मुर्शिदाबाद* की रेशमी वस्तुऐं *काशी* का काम ख्वाब और सलमें का काम *दिल्ली* में भी सलमें के काम की अनेक चीजें तैय्यार होती हैं *कश्मीर* में शाल दुशालों में सुई का काम एवं *कश्मीर आगरा मिरजापुर जयपुर अजमेर बीकानेर, मसूलीपटम, मैसूर* और *पूना* में कालीन और दरी बनानेका काम बहुत अच्छा होता है लकड़ी की नक्काशी में *बढ़ा* सब से आगे फिर *पन्जाब* एवं *कश्मीर* की बनी हुई एक एक खिड़की का मूल्य सौ सौ रुपया होता है *तिलहर* में लकड़ी पर रंगसाजी का काम अच्छा होता है।

इसके अतिरिक्त *नगीना, अलीगढ़, सहारनपुर, फर्रुखाबाद, अहमदाबाद,* वा *मैसूर* में भी अच्छा होता है *देहली* वा *आगरे* में हाथी दांतपर चित्रकारी *भरतपुर* में हाथीदांत की महीन चौरियां *मथुरा* में चंदन की पङ्खियाँ *मैसूर*

में हाथीदांत की मेज कुर्सी तथा बक्स अच्छे बनते हैं। लकड़ी की पच्ची कारी में होश्यारपुर, जालंधर, मैनपुरी, मॉईसूर प्रसिद्ध हैं। ढाका, भागलपुर, अहमदाबाद और लुधियानेके बुनेहुए कपड़े योरोपियन कपड़ोंसे मुकावलाकरतेहैं अभी हाल में ही फरीदपुर में एक प्रदर्शनी हुई थी वहां ढाके का बुना हुआ बीसगज का एक मल मल का थान दिखाया गया था—बीसगज का होने पर भी इसका वजन तीन छटांक मात्र था ! जयपुर की भिन्न २ रंगों और बेल बूटों से छपी हुई साड़ी दुपट्टे फेंटे अंगोछे धोती और लहगों की छींट अच्छी होती है इनका रंग पक्का होता है। सांगनेर की छपी हुई छींटों का मुकावला विलायतकी छींटें अवतक नहीं कर सकी क्योंकि इस का रङ्ग कभी फीका पड़कर उड़ता नहीं—कपड़े में मजबूत होती है। मथुरा, वृन्दावन तथा कोटा में भी छपाई का काम अच्छा होता है। फर्रुखाबाद के पलंगपोश टेबिल क्लाथ खिड़कियों के पर्दे विलायत तक जाते हैं। मुरादाबाद में भिन्न २ रङ्गों की लिहाफ फरदें छींटदार अच्छी रंगी और छापी जाती हैं जहांगीराबाद की तोशकें अच्छी होती हैं। बनारस वा मिरजापुर में पीतल नजीमाबाद में फूल के मुरादाबाद में कलई के वड़ौत में लोहे के कटक और बम्बई में चांदी के और सुनहरे वर्तन अच्छे वनते हैं।

परन्तु इनके व्यवसाय की जितनी उन्नति होनी आवश्यक थी इनके व्यवसायियों को जितनी उत्तेजना और प्रोत्साहन मिलना आवश्यक था वह कहीं भी नहीं मिल रहा-इसका कारण हमारा स्वदेश के व्यापार की ओर ध्यान न देना—तथा अपने देश की वस्तुओं से प्रेम एवं उन का आदर न करना है। बेटी ! विद्वानों ने कहा है

संसर्ग जः दोष गुणा भवंतिः।

अर्थात् संसर्ग से दोष भी गुण हो जाता है लेकिन आज इसका इस विषय में हम विपरीत परिणाम देख रहे हैं।

बेटी ! अनेक वर्षों से हम जिन महामना उदार चेता, गुण ग्राहक विद्वान् एवं अनेक शुभ गुणों से युक्त स्वदेश प्रेम रस में पगी हुई अंग्रेज जाति की छत्र छाया में हैं, जिनकी बुद्धि चातुर्य्यता पद पद पर दृष्टिगत होती रहती है, जिनकी सुन्दर और विचक्षण वक्तृतायें सुनते, काव्यावली

को देखते, अधिक क्या जिनके सहवास में हमारे जीवन का प्रतिक्षण व्यतीत हो रहा है, परंतु आज हम उन्हीं के गुणों के विपरीत अपना सारा का सारा कार्य्य क्रम कर रहे हैं। यदि उन्होंने इतनी वर्षे भारत के क्षेत्र में, भारत वसुन्धरा की गोद में व्यतीत करके भी अपनी पोशाक, अपना खान पानमें अपनी रहन सहनमें परिवर्तन नहीं किया यदि उन्होंने सात समुद्र पार आकर भी अपने प्यारे देश की भाषा, भाव, नीति और व्यवहार और स्वदेश प्रेम में यत्किञ्चित लौट पौट नहीं किया तो हमने स्वदेश में रहते अपने स्वदेशी वस्त्रों को छोड़ दिया, हम अपने मकानों और कमरों को सजाते हैं तो स्वदेशी सुन्दर और अनोखी वस्तुओं के स्थान पर विदेशी पदार्थों से, यदि हम अपने मित्रोंकी दावत करते और निमंत्रण भोज देते हैं तो वहां भी स्वदेषी अनेक स्वादित फलों और सुस्वादु पकवानों के स्थान पर पश्चिमी देशों के बने हुए बिस्कुटों आदि की भरमार रहती है—यदि वायु सेवन के लिये सवारी की जरूरत है—तो स्वदेशी सवारियों के स्थान पर विदेशी मोटरों की अधिकता है बेटी! भारत की ऐसी दरिद्रावस्था होने पर भी ऐसे विलासी जनों की विलासिता को शिखर पर पहुंचाने के लिये, सन् १९०९ में साढ़ेसैंतीस लाख १९१० में साठ लाख १९११ में एक करोड़ से अधिक और जून सन् १९१५ से नवम्बर सन् १५ तक ६ महीने के भीतर ही ४१ लाख की मोटरें आईं।

हमारी इस स्वदेश प्रियता की भी कुछ सीमा है? इस प्रकार के स्वदेश ममत्व तथा स्वदेश कल्याण चिन्तन का भी कुछ ठीक है—भला जिनके प्रभु—जिनके अधीश तो अपने देश से सूखी वस्तुऐं केवल स्वदेश प्रेम के विचार से मंगाकर खाएं व्यवहार में लाए—और हम यह सब अपनी आंखों देखते हुए भी स्वदेशी वस्तुओं से घृणा करें!?

पश्चमी देशोंमें प्रत्येक व्यवसायको मिलकर साझे द्वारा करनेकी नीति का प्रचार बहुत अधिक है और वे इस सम्मिलित शक्ति बल से यथेष्ठ लाभ उठाते हैं। बेटी! जर्मन व्यवसाय की उन्नतिका सबसे बड़ा कारण साझेदारी का प्रचार है—वे अपने देश भाइयों के साथ लड़ना-व्यापार में

ऊपरा चढी कर कलह करना पसंद नहीं करते, प्रत्युत ऐसी विद्वेषाग्नि के उत्पन्न न होने देने के लिये अपने यहांके बने हुए मालका मूल्य सभाद्वारा निर्धारित कराते और वही मूल्य सबको मान्य होता है।

इसी सम्मिलित शक्ती व सहयोगनीति व्यापार करने के कारण यूरोप के उत्तरी भाग में बसे हुए छोटेसे डेन्मार्क देश के किसान आज सब देशों के कृषकों से अधिक शिक्षित और धनाढ्य हैं परन्तु सन् १८८२ के पहले उनकी दशा भी हमारे यहां के वर्तमान कौलिक किसानों की भांति थी।

बेटी! यहां के किसान खेती करने की अपेक्षा गायों को अधिक पालते हैं उनके दूध घी मक्खन को बेचना ही उनका मुख्य व्यवसाय है। लेकिन इनके घी दूध मक्खन बनाने और बेचने का काम घर घर नहीं होता प्रत्युत सबका दूध दुह कर एक ही स्थान पर इकट्ठा किया जाता और वहीं उससे सारी चीजें तैय्यार कर बेची जाती हैं। यहां प्रतिवर्ष २५,००,००,०००, क्रोन का मक्खन बिकता है जिसमें से २१,३६,८४,००० क्रोने का बाहर भेजा जाता है एक क्रोन ।॥≈) का होता है। दूध का मूल्य घी और मक्खन के हिसाब से दिया जाता है। इसका प्रबंध करने के लिये कमेटी होती है कमेटी के योग्य पुरुष प्रत्येक के घर जाकर गायों की देख भाल करते हैं। वर्षान्त होने पर हिसाब का ब्योरा प्रकाशित होता है जिससे प्रत्येक गाय पर कितना खर्च पड़ा-दूध कितना दिया, घी मक्खन कितना निकला और नफा कितना हुआ, इत्यादि बातें मालूम होती हैं। अस्तु–

बेटी, यद्यपि खेतीके लिये इस देशमें अच्छे गाय बैलोंकी आवश्यकता मुख्यतया होतीहै परंतु कृषिप्रधान भारतमें (सन् १९१४–१५ में) गायों की संख्या ३,७४,८१,२७३ भैंसे १,९०२५,०७६ बैल ४.८६,६४७१० बछड़े ४,२१,८४,७६० थी। गाय भैंसों की कमी से आज यहां ८ सेर का भी शुद्ध दूध तथा १२ छटाक का घी मिलना कठिन होरहा है तिस पर भी मांसाहारियों के पेट भरने के लिये ७५ हजार गायों का प्रतिदिन संहार होता है। अस्तु–

इस प्रकार साझेदारीके दृष्टांतों को पढ़ते सुनते और देश में अनेक बड़े२ व्यवसायों को कम्पनी द्वारा चलाकर प्रत्यक्ष लाभ उठाते देखते हुए भी हम स्वदेश में स्वदेश भाइयों के साथ इतनी प्रतिस्पर्धा करें कि यदि एक भाई ~) के लाभ से माल देता है तो दूसरा)॥। और तीसरा)॥ के नफे पर ही देने को उद्यत होता ? अनेकान यूरोपियन फर्मों और दूकानों में टाइम की पाबंदी और एक बात और एक मूल्यकी उपयोगिता को देखते हुए भी हम एक आने की वस्तु का मूल्य छै छै आना कहने का स्वभाव बनाये रहे और समय की पाबंदी के लिये तो कहना ही क्या ?

अधिक क्या बेटी, ऐसी २ अनेक बातें बताई जा सक्ती हैं तभी तो मैंने कहा था कि अनेक उच्च और आदर्श गुणों से युक्त *इंगलिश जाति* के सहवास से हमारी भाषा, भाव, विचार, व्यवहार रीति, नीति में यदि कुछ **परिवर्तन** हुआहै तो उलटा यदि कुछ हमने **सुधार** कियाहै तो वह नीचेकी ओर लेजाने वाला है। अवश्य ही इन्हीं कारणों से रत्नगर्भा वसुंधरा गोद में रहने पर भी हम भूखे और हमारा देश धन हीन होरहा है सुखों के स्थान पर घोर अशांति का राज्य है।

यही नहीं जबतक हम अपने इस प्रकार के दुर्गुणों को न छोड़ेंगे अपने अधीश जाति के यथार्थ रूप से गुणों को धारण कर वास्तविक सहवासी न बनेंगे, जबतक अपनी उस **धुन** को छोड़ दूसरे व्यवसायों की ओर ध्यान न देंगे, जब तक हम अपनी प्रिय होनहार संतानों को केवल **नौकरी** का अभिलाषी और इच्छुक बनाने की अपेक्षा स्वतन्त्र व्यवसाई बनाने की चेष्टा न करेंगे, जबतक हम पुस्तकों के कीड़े और दफ्तरों में खाली कलम घिसते रहने के बजाय छोटेसे छोटे व्यवसायों द्वारा धन उपार्जन करना अच्छा न समझेंगे, जब तक अल्प वेतन भोगी मजदूरोंके साथ भी काम करने में संकोचता के निम्न विचारों को न छोड़ेंगे, जब तक कैसी भी उच्च पदस्थ नौकरी की अभिलाषा को छोड़ **कृषि शिल्प** और **वाणिज्य** को न अपनायेंगे—जबतक देश में इनकी शिक्षा के साधनों को सुलभ न करेंगे, जबतक उपरोक्त विषयों में किये जाने वाले आधु-

निक संशोधनों की उपयोगिता को न समझेंगे, तबतक देश की दरिद्रता दूर नहीं होसक्ती तबतक हम धनी नहीं होसक्ते तबतक हम यथेष्ठ धनोपार्जन नहीं करसकते, तबतक हमारी और हमारे देशकी प्रतिष्ठा नहीं बढ सक्ती तबतक हम सब संसार में यश प्राप्त नहीं करसक्ते, अधिक क्या उस समय तक हम धन और धर्म्म जनित विमल सुख के भागी नहीं होसकते अतएव भावि संतान को खूब धनी और सुखी बनाने एवं देश की दशा बदलनेके लिये हमको हमारे नेताओं को और कृषि शिल्प और वाणिज्य की शिक्षाके लिये पाठशाला स्कूल कालेज खोलने चाहिये, और खुले हुए चलते हुए स्कूल, कालेजों में उपरोक्त विषयों की क्लासें बढ़ा देना उचित है। हमारे दान दाताओं को ऐसे विषयों के उद्धार, ऐसी शिक्षा का विस्तार बढ़ाने में अपने दान को अपने परिश्रम से सञ्चय किये हुए धन को लगाना चाहिये। हमारे नवयुवकों को इन्हीं विषयों का अध्ययन करना चाहिये, इन विषयों का प्रेमी और विद्वान बनना चाहिये, भारत के लिये, अपने स्वार्थ अथवा अपने पेटपालन करनेके लिये बी.ए.एम,ए,और बी.एल.के पुच्छलोंकी वैसी आवश्यकता नहीं जैसी आवश्यकताहै अच्छे कृषक अच्छे शिल्पी और अच्छे व्यापारी बननेकी—देश के धनिकों, सेठ और साहूकारों को आढ़त और सराफेकी दूकानें करने एवं खोलने तथा गरीब किसानों वा निर्धन श्रेणी के व्यक्तियों से तीन २ और चार रुपये का सूद वसूल कर उनका रक्त चूसते हुए धन सञ्चय करने की अपेक्षा भारत में कपड़ा, शक्कर, रंग, कांच दियासलाई, पेन्सिल, कागज, लोहे के हथियार एवं नाना यन्त्रों के बनाने, खनिज पदार्थों के निकालने और साफ करने आदिके कारखाने खोलने चाहिये, भारत में इस प्रकार के कारखानों के चलाने के लिये और अन्यान्य योरोपीय देशों के समान कच्चे माल के मंगाने की अड़चन नहीं है—उपरोक्त प्रकार के व्यवसायों के लिये कच्चा माल यहाँ यथेष्ट मिलसक्ताहै। प्रियपुत्री! कल कारखानोंके अभाव सेही हमारे देश के कारीगर वा दस्तकार और भी भूखों मरनेलगे साथही अपने वंश परम्परागत कार्य्य को छोड़ देने पर बाध्य हुए। क्योंकि मैशीनों द्वारा आधुनिक ढंग से तैय्यार किया हुआ विविध प्रकार का माल-विदेश में

आकर भी देशी माल से सस्ता रहता है। मान्यास्पद स्वर्गीय *गोपालकृष्ण गोखले* ने कहा था कि "नाना यंत्रों द्वारा बनी हुई वस्तुओं से हाथकी बनी वस्तुओंको प्रतियोगिता करनी पड़तीहै तब उनका नाश होना स्वभाविकहै"

वस्तुतः यह ठीक है वर्तमान में इसी कारण वश फी सैकड़े ७३ कच्चा माल बाहर भेजा जाता है और सैकड़े में ७७ फीसदी बना बनाया माल बाहर से यहां आता है। अतएव कारखानों की स्थापना से प्रत्येक प्रकार की वस्तुएं देश की देश में सुलभ न होंगी, श्रमजीवियों और निर्धनों का उपकार न होगा प्रत्युत हम धन कुबेर भी होंगे। इस हेतु पुत्री ! अपने देश को अपनी जाति को और अपने घरों को धनका भण्डार बनाने के लिये इन्हीं उपायों को हस्तगत करना चाहियें।

(६२) कभी २ धन उपार्जन करने में निष्फलता होती अथवा आशा के अनुसार लाभ होने के स्थान में घाटा उठाना पड़ता है। उस समय निराश होकर अपने उत्साह को खोना साहस हार कर उद्योग को छोड़ देना, कार्य्य तत्परता को भुला देना, निरानन्द हो भाग्य को दोष देते हुए व्यवसाय ही को छोड़ देना कदापि उचित नहीं। क्योंकि जगत में सदा से यह कार्य्य क्रम चला आता है, जो घोड़े पर चढ़ते हैं वह कभी गिर भी पड़ते हैं। जो संसार के नेता होते हैं उनसे भी कभी २ ऐसी भूलें हो जाती हैं जिनका परिणाम पीछे बहुत हानि दायक सिद्ध होता है— जिन राज्यों में और राष्ट्रों में शान्ति का एक छत्र राज्य रहता है वहां कभी अशान्तिका भी दौरा होता है। जो कुल और जो जातियां सर्व सामर्थ्यवान और शक्ति शीलनी होती हैं वे कभी सामर्थ्य रहित निर्बलता का भी शिकार होती हैं जहां अपरिमित बल वाले, तीव्र बुद्धि से युक्त विद्वान, कवि, साहसी धीर, वीर, तेजस्वी, यशस्वी नर नारियों की अधिकता होती है वहाँ फिर निर्बल, निर्बुद्धि, निस्तेज निःसाहस, निर्वीय, मूर्ख और अधीर प्राणियों की संख्या भी बहुत दिखाई पड़ती हैं। जिस घर में सदा आनन्द की वर्षा रहती है, आरोग्यता का वास रहता है वहां कभी शोक की घटा और रोगों का राज्य भी होता है, जो सर्वदा दरिद्रता का दुःख भोगता रहा है वह कभी धन का यथार्थ आन-

न्द भी भोगता है। इस लिये उस असफलता के लिये दूसरोंको दोषी ठह-
राना उचित नहीं—वस्तुतः पुत्री! यदि इस प्रकार उन्नति अवनति, शान्ति
अशान्ति, सबलता निर्बलता, सुबुद्धि निर्बुद्धि, विद्वान मूर्ख, साहस निः-
साहस, निर्भय डरपोक, वीरता कायरता, मलिनता स्वच्छता, उच्चता
नीचता, सौन्दर्य्य और कुरूपता, का साथ न होता, इनका साथ २ संग-
ठन न होता तो किसी को भी इनकी विशेषता का पता न लगता, कौन
अच्छा है कौन बुरा है इसका ज्ञान न होता, किस में सुख है किसमें दुख
है इसका भान न होता, कौन ग्रहण करने योग्य है कौन नहीं किसी को
भी इसकी यथार्थता न विदित होसक्ती थी और न कोई उस तक अर्थात्
अशांति के बदले शान्ति प्रेमी, निर्बल और निर्वीर्य्य होने के बदले वीर्य्य-
वान और बलवान, निर्बुद्धि के बदले बुद्धिवान, मूर्ख के बदले विद्वान
वाग्मि, पस्त हिम्मत के बदले साहसी, कायर की अपेक्षा शूर, नीच के
स्थान पर उच्च कुरूप के स्थान पर सौन्दर्य्य युक्त बनने की चेष्टा करते,
अथवा न इसकी आवश्यकता, उपयोगिता और जरूरत समझते अतएव
किसी भी कार्य्य में, व्यवहार में, जय पराजय, हानि लाभ प्राप्त होने पर
हम निर्बल हैं अशक्त और असमर्थ है, हम से ऐसा नहीं होसकेगा - हमारे
भाग्य में ऐसा सुख नहीं बदा, इत्यादि भावनाओं के अनुकूल उस कार्य्य
को छोड़ देना एक ओर उपरोक्त प्रकार की भावनायें, ऐसे संकल्प ऐसी
विचार माला ही अपने हृदय स्थल में अपने चित्त में, अपने अन्त.करण
में न उठने देना चाहिये। क्योंकि इस कोटी के विचार ही श्री, वा लक्ष्मी
भ्रष्ट कराने वाले हैं इस श्रेणी की भावनायें ही अवनति की ओर ले
जाने वाली हैं। ऐसे विचार ही सुख के नाशक हैं। ऐसे विचार ही बद-
क़िस्मत, निर्भागी दुर्भागी, और अभागे बनाने वाले हैं। इसका कारण
यह है कि ऐसे विचारों का उदय ही आलस्य का उदय है ऐसे विचारों
का उठना ही आलस्य का सूत्रपात होना है। ऐसी विचार लहरी ही आ-
लस्य की धारा बहाने वाली है। ऐसे विचारों का जमना ही आलस्य का
अड्डा बनजाना है। और आलसी नरनारी जगत में किसी भी कार्य्य
को पूरा नहीं करसक्ते वे थोड़ा भी शारीरक मानसिक परिश्रम नहीं कर-
सक्ते; इसलिये आलसी के हृदय से ऊंची आकांक्षायें उच्च विचार सदा

के लिये लोप होजाते हैं साथही वह अपनी नीची भावनाओं के अनुसार जगत के किसी भी गुण को सीख नहीं सक्ते वह किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त नहीं करसक्ते इस लिये वह किसी भी कार्य्य में, व्यापार में जय अथवा लाभ नहीं उठा सक्ते, चित्त में निरंतर बुरे भाव बुरी वासनायें और बुरे विचार उठते रहने से उनका चरित्र अच्छा नहीं रहता–इतना ही नहीं प्रत्युत वह उन्हीं में रंग कर अपने अमूल्य जीवन को नष्ट भ्रष्ट करडालता है इस हेतु कहा है–

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः

मनुष्यों का नरनारियों का शरीरस्थ आलस्य ही परम शत्रु है।

प्यारी पुत्री, जीवन के महत्व को नष्ट कर देने वाले इस महाशत्रु का शिकार न बन जानेके लिये संसारके विद्वान उपदेश देते हैं कि अपरिमित हानि और असह्य दुःख प्राप्त होने पर भी ऊंचे विचारोंकी तरंगों एवं साहस युक्त भावनाओं में लिप्त रहो–विख्यात विद्वान स्पिनोजी का वक्तव्य है "यद्यपि हमें मालूम है कि हम पाणिनि के तुल्य व्याकरण रचयिता कपिल के तुल्य सांख्यशास्त्र आविष्कारक–व्यास के समान शास्त्र और इतिहास लेखक, कविकुलगुरु कालिदास, भारवि, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अथवा शेक्सपियर, होमर, मिल्टन आदि के समान कविऋषिगुरु वशिष्ठ कौंट बिस्मार्क के तुल्य राजनीतिज्ञ क्लाइव के समान कोपाध्यक्ष महर्षी स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे उपदेशक ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजी गोपाल कृष्ण गोखले–श्रीयुत बाल गंगाधर तिलक–कर्म्म वीर गांधी के तुल्य निःस्वार्थ देश सेवक नहीं होसक्ते परंतु इन महात्माओं के समकक्ष होने का बलवान विचार, उत्साह जनक इच्छा, आनंद को बढ़ाने वाली कामना, मनुष्य को मनुष्यत्व प्राप्त कराने वाली जाग्रति, सदा अपने मन में और अपने हृदय में स्थित रखनी चाहिये।

लार्ड चिकन्सफील्ड कहते हैं ' जो अपने हृदय में अच्छी और ऊंची कल्पनायें नहीं करते, जो अच्छी और ऊंची भावनाओं में मग्न नहीं रहते, जो ऊंचे संकल्पों और अच्छी विचार तरंगों से प्रभावित नहीं होते वे

नीची इच्छा और नीचे संकल्पों में फसते हैं। और उससे उनका हृदय मलिन होजाता है अज्ञान से भर जाता है। जिसके कारण वे संसार के कार्य्यक्षेत्र में *कर्मवीर* बन कर अग्रसर नहीं होसक्ते. जगतकी व्याधियां उन्हें ही सताया करती हैं। उन्हीं के आगे विघ्नों का भयंकर स्वरूप खड़ा रहता है और संसार में उन्हें अपनी दशा को उच्च बनाना तो आकाश कुसुम ही समझना चाहिये।

जर्मन पंडित गुटे का वक्तव्य है ऊंचे से ऊंचे लक्ष्यों तक पहुंचना असम्भव हो तो भी नीचे विचारों से लिप्त रहने से अच्छा है।

इस लिये प्यारी बेटी! सदैव ऐसे समयों के प्राप्त होने पर साहस एवं धीरता से असफलता वा हानि पाने के कारणों को विचार करते हुए उस विषय के उस कार्य्य के जान कार एवं विज्ञजनों के परामर्श के अनुसार पुनः पूर्ण उद्योग और परिश्रम से कार्य्य में लगना चाहिये महर्षि मनु ने कहा है।

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धंरक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत्।
एतच्चतुर्विधं विद्यात् पुरुषार्थ प्रयोजनम्।
अस्यनित्य मनुष्ठानं सम्यक्कुर्य्यादतंद्रितः॥

अथात् जो नहीं प्राप्त है उसकी प्राप्ती के लिये—प्राप्त पदार्थ की रक्षा और उसके बढ़ाने, तथा बढ़े हुए धनादि को सुपात्र में—व्यय करने के लिये निरालास हो पुरुषार्थ करे क्योंकि पुरुषार्थ से ही विद्यातपस्या ज्ञान एवं बड़ा ऐश्वर्य्य ही नहीं किन्तु वह अपनी सत्य-कामना के द्वारा पृथ्वी तक का राज्य प्राप्त कर सक्ता। सामवेद में कहा गया है कि पुरुषार्थी नरनारी ही वेद सत् शास्त्र और विज्ञान के महत्व को जान सक्ते हैं।

योजागार तमृचः कामयन्ते योजागार तमु सामानियन्ति।
योजागार तमय ँ सोमआह तवाह मस्मि सख्ये न्योकः

अतएव अपने जीवन में प्रत्येक प्रकार की सिद्धि प्राप्त करने के लिये यत्न पूर्वक पुरुषार्थ करना योग्य है।

प्रिय पुत्री! मि० कावेट ने कहा है कि जो चींटी की भांति दृढ़ता और साहस से पूर्ण परिश्रम द्वारा उद्योग करते रहते हैं निश्चय ही उनके मनोरथ सफल होंगे।

यह बहुत ठीक कहा गया है देखो बंगाल के प्रतिष्ठित बाबू शिशिर कुमार घोषजी–राजनैतिक और धार्मिक दोनों दलों के मणि स्वरूप थे उनकी योग्यता और विद्वत्ता के सम्मुख बड़े २ विद्वान नतमस्तक हो मुक्त कंठसे सराहना करते थे परन्तु यह विद्वत्तादि गुण और प्रतिष्ठा उनके अनेक परिश्रम एवं अध्यवसाय के कारण प्राप्त हो सकी थी।

(२)माननीयश्रद्धास्पद ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागरके पिताकीआर्थिक अवस्था ऐसी न थी कि वे ईश्वरचन्द्रजी के विध्याध्ययन का समुचित रीति से प्रबंध कर सक्के, परन्तु उनकी तीव्र बुद्धि एवं पूर्ण परिश्रम तथा अध्यवसाय से शीघ्र ही उनका अभ्युदय हुआ–तत्कालीन विद्वान मंडली के मुकट और विद्यासागर की श्रेष्ठ उपाधि से विभूषित होने के साथ जगत में वे लब्ध प्रतिष्ठित हुए।

(३) मंद्रास हाईकोर्ट के प्रसिद्ध जज सर मथुस्वामी अय्यार के पिताकी आर्थिक अवस्था बहुत शोचनीय थी-तिसपर अल्प वयस में ही उनके पिता और माता दोनों का देहांत होगया–इसलिये उन्हें प्रारम्भिक अध्ययन छोड़ १) मासिक पर नौकरी करनी पड़ी और चोदह वर्ष तक यही काम करते रहे, परन्तु पढ़ने का बहुत शौक था बुद्धि भी तीव्र थी–अतः वे अपने परिश्रम और अध्यवसाय आदि सद्गुणों के कारण ऊपर वाले पद पर ही नहीं पहुंचे वरं सरकार से भी सी. आई. ई की उच्चपदवी मिली, १) रुपये के नौकर मथुस्वामी अय्यार की उस अवस्था को देखते हुए कौन कह सक्ता था कियही सरमथुस्वामी अय्यार सी. आई. ई. जज हाईकोर्ट होंगे? परंतु, दृढ़ कर्तव्य परायणता,निरन्तर परिश्रम और अध्यवसाय से जितनी भी उन्नति हो वह थोड़ी है।

(४) राय बहादुर मिष्टर कृष्णोदासपाल के पिताभी बहुत दारिद्र

ग्रसित होने से गिष्टरपाल के पढ़ने का यथेष्ट प्रबंध करने में असमर्थ थे। लेकिन कृष्णोदासपाल अपनी स्वयं बुद्धि और परिश्रमादि से अपनी मातृ भाषा के सहित अंग्रेज़ी के धुरंधर लेखक, और यशस्वी वक्ता हुए। साधारण समुदाय से सम्मानित होने के साथ गुण ग्राहक न्यायशीला गवर्मेंट ने भी सी. आई. ई. की पदवी से उन्हें विभूषित किया।

(५) मद्रास 'कौज कोर्ट' जज श्री पं० **रंगानन्दशास्त्री** के पिता संस्कृत के विद्वान होने पर भी अत्यन्त दरिद्र थे इसलिये रंगानन्दजी को संस्कृत की ही शिक्षा मिली लेकिन घटना वश एक जज महोदय की सहायता से इंग्लिश पढ़ने लगे, और अन्त में उनके परिश्रम का यह फल था कि वे अति दरिद्र कुल बालक होने परभी मद्रास के जज और मृत्यु समय संसार की प्रसिद्ध २ १४विद्याओं के ज्ञाता ही नहीं किन्तु पूर्ण विद्वान थे। और अनेक भाषा भाषी होने से जज होने के प्रथम उन्हें दो ढाई हजार की मासिक आय होती थी।

(६) बम्बई के प्रसिद्ध व्यापारी और दानी **सरजमसेदजी का** अभ्युदय भी दरिद्रता देवी की उपासना करके ही हुआ था—माता पिताकी मृत्यु होजाने से आपको अपने श्वसुर के यहां चले जाना पड़ा वहाँ से सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने चीन की यात्रा की यहीं से उनका व्यापार में प्रवेश हुआ—

और धीरे धीरे उन्होंने इसी व्यवसायमें अपरिमित धन उपार्जन किया और साथही बिना किसी भेदभावके सर्व्व हितकारी कार्य्यों में लगभग नौ लाख रुपया दान दिया। अपने उच्च गुणों के कारण सरजमसेद जी ने सरकार से भी कई ऐसी ऊंची उपाधियों को पाया था जिनको पहले किसी **भारतवासी** ने प्राप्त नहीं किया। इतना ही नहीं उनके सम्भानार्थ तथा उनके कार्य्यों के स्मरणार्थ बम्बई निवासियों ने जमसेदजी की सुंदर प्रति मूर्ति बम्बई टौनहाल में स्थापित की जिसकी बनवाई में लगभग ६०,००० रुपये व्यय हुए।

(७) जापान का प्रसिद्ध चित्रकार **योशियोमारकीनो** के जीवनकी यह अवस्था अत्यंत कष्टों और निराशा से भरी हुइ थी जब कि वह बिना

किसी मित्र बांधव की सहायता से केवल अपने स्वावलम्बन के भरोसे पर हज़ारों चित्रकारों से भरे हुए इग्लैंड जैसे देशमें चित्र विद्या विषयक प्रसिद्धि पाने की कोशिस कर रहा था-लेकिन शरीर आच्छादन के लिये पर्याप्तवस्त्र, और महीनों तक भर पेट भोजन न मिलने और निरंतर कई वर्षोंतक निराशा देवी के चक्र में पड़े रहने पर भी उसने अपने धैर्य्य का त्याग न किया, अपने मनोरथ को न छोड़ा अतएव वह एक दिन अपने उन सब विघ्न बाधाओं पर विजयी हुआ-अर्थात् तत्कालीन सर्व श्रेष्ठ चित्रकारों की गणना में आगया-

(८) प्रसिद्ध वक्ता **डिमास्थनीज़** को बचपन से विविध ज्ञान सम्पादन करने और वक्ता बनने का स्वाभाविक शौक था परंतु निर्धनता (यद्यपि इनके पिता धनी थे परंतु डिमास्थनीज़ को अपना जीवन निर्धनता से ही आरम्भ करना पड़ा) शरीर की निर्बलता और आवाज का तोतलापन उनके उस शौक के पूर्ण करने में बड़े बाधक थे-लेकिन इन सब बाधाओं के रहते हुए उन्होंने अपने विचार सतत परिश्रम एवं महत् उद्योग को न छोड़ा आखिर वे अपनी उन दुर्बलताओं पर विजयी हुए- "संसार के पुरुषों ने उन्हें अद्वितीय वक्ता" स्वीकार किया।

(९) बहु भाषाविज्ञ **एलिग्जैण्डर मरे**-निर्धन गडरिया के पुत्र थे, बचपन में वर्णमाला के अक्षरों को लकड़ी के तख्तों पर कोयलों से लिख कर सीखते थे बेटी! ऐसी निर्धन अवस्था से *महाशय मरे* को कितने विघ्नों और दुस्तीर्य्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा सो गिनाना दुष्कर है। परन्तु अपने दृढ़ उद्योग अविचल धैर्य्य और अविश्रान्त परिश्रम से वह एक दिन अनेक भाषाओं के विद्वान होकर प्रसिद्ध हुए।

(१०) अमेरिका का प्रसिद्ध सेनापति **ग्राण्ट**, बाल्यकाल में निकम्मा ग्रांट के नाम से पुकारा जाता था लेकिन उसी ग्राण्ट ने अपने परिश्रम और अध्यवसाय से वीरमंडली के बीच अपना शुभनाम सदा के लिये अमर कर दिया।

(११) प्रसिद्ध तत्ववेत्ता **सर आईजेक न्यूटन** को कौन नहीं जानता बेटी! बचपन में यह अपनी क्लास में सदैव नीचे रहते थे लेकिन

फिर वह दृढ़ता पूर्वक परिश्रम करने की ओर ऐसे झुके कि जिससे जगत के तत्व ज्ञानियों में कान्तिमान् रत्न तुल्य प्रकाशित हुए।

(१२) भारत के संत से पहले लार्ड क्लाइव बेहद मूर्ख थे, घरके लोग उनकी शरारतों से तङ्ग हो गये थे, लेकिन भारत में आकर अपनी अतुल कर्तव्य शक्ति,दृढ़ता युक्त परिश्रम से वही क्लाइव लार्ड क्लाइव के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(१३) वर्तमान कालिक औषधि विक्रेताओं में बीचम साहब का आसन बहुत ऊँचा है, किसी भी देश का कोई ही मुख पत्र ऐसा होगा जिसमें आपकी गोलियों का विज्ञापन न हो, और किसी भी देश में कारखाने की शाखा अथवा गोली बेचने वाला ऐजेन्ट न हो। विरले ही नर नारी मिलेंगे जिन्होंने बीचम साहब की गोलियों का नाम न सुना हो, बेटी! वे प्रति वर्ष १५ लाख रुपया विज्ञापनोंमें खर्च कर देते हैं फिर जहां केवल विज्ञापनों में ही इतना व्यय किया जाता है वहां की सम्पति का आँकना कैसे सहज हो सक्ता है परन्तु एक मामूली दवा के द्वारा ऐसी धन मासी के साथ प्रसिद्ध पाने का मुख्य कारण उनका कौशल अध्यवसाय और परिश्रम है। इसके अतिरिक्त अमेरिका के प्रेसीडेंट बेंजामिन फ्रेंकलिन फ्रांस देश का सम्राट नैपोलियन बोना पार्ट, पुतीली घरों का जन्म देने वाले अर्लराइट रेलवे के आविष्कारक स्टीवन्सन फौलाद का ढालने वाला हन्टस्मन् यन्त्रोंकी उन्नति करने वाला हेनरीकार्ट एवं भारत के वीर शिरोमणि शिवाजी मराठा बालाजी विश्वनाथ पेशवा मल्लाराव हुल्कर और नानाफडनवीस का अभ्युत्थान भी–

केवल अपने उद्योग और परिश्रम से हुआ था। बेटी! संसार के इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण मिल सक्ते हैं इसलिये असफलता प्राप्त होंने पर जो दृढ़ चेता होकर उचित प्रकार से परिश्रम करते हैं वे अवश्यमेव अपने मनोरथों को पूरा करलेते हैं और जो इसके विपरीत कार्य्य करते हैं वे दुर्बुद्धि घड़े में पानी की भांति नष्ट होजाते हैं।

यो हिद्दिष्ट मुपासीनो निर्विचेष्टा सुखं शयेत् ।
अवसीदेत्स दुर्वुद्धि रामो घट इवोदके ॥

इसके उपरांत अपने आय के मार्ग तथा धनकी स्थिती किसी पर प्रकट न करे । क्योंकि संसार में धनके अनेकों शत्रु होजाते हैं ।

(६४) जो गृहपति पत्नी अपने प्रत्येक कार्य्य और प्रत्येक वस्तु को प्रतिदिन देखते रहते हैं उनका धन धान्य कभी नाश नहीं होता ।

(६५) अग्नि थोड़ी होने पर घी से युक्त होने पर वढ़ती है तथा एक वीज से सहस्रों अंकुर उत्पन्न होते हैं अतः थोड़े २ धनके नष्ट होते रहने से अन्त में परिणाम वहुत भयंकर हो सक्ता है अतएव अपने आय व्यय के हिसाव को ध्यान से देखे और सुने । इसके साथ ही सदां धन खर्च करने में परिमित व्ययी रहे अर्थात् न कंजूस और न फिजूल खर्च क्योंकि कंजूस अपने सञ्चित किये हुए अपरिमित धनसे न स्वयं सुखी हो सक्ते है और न उनके धनसे अन्यान्य जनों को कोई लाभ पहुंचता है इसलिये कंजूस न मानप्राप्तकर सक्ता है न यश-संचय कर सक्ता है । इस लिये प्रत्यक्ष में ऐसे नरनारियों के विषय में वहुत से धन के स्वामी होने से चाहे कोई कुछ कहे परन्तु वे वस्तुतः दरिद्री नरनारियों से भी अधिक दुःख पाते हैं ।

यदेते साधूनां मुपरि विमुखाः सन्ति धनिनो ।
न चैषा वज्ञैषा मपितु निजवित्त व्यय भयम् ॥
अनिन्द्रा मन्दाऽग्निर्नृप सलिल चौराऽनलभयात् ।
कदर्याणां कष्टं स्फुट मधन कष्टा दपि परम् ॥

प्रत्युत जिस प्रकार एक ही स्थान में रहने वालों का यश, दुर्जन की मैत्री, कोई कार्य्य न करने वालों का कुल, दरिद्री का धर्म्म, प्रमादी मंत्री से राजा, दुःखियों की विद्या और कृपण के सव सुख नष्ट होजाते हैं । वैसे ही अपव्ययी (फिजूल खर्ची) नरनारी अपने प्रभूत धन को दस दिन में ही वरावर कर अपने और अपने पुत्र पौत्रादि कुटम्वी जनों के

सुखों के नाशक होते हैं क्योंकि धन नष्ट होने पर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिये ऋण लेना होता है। और ऋण लेना विष से भी अधिक घोर माण घातक है इसलिये हमारे यहां यह लोकोक्ती प्रसिद्ध है कि 'धनका उपार्जन करना सहल है परन्तु उसका यथावत उपयोग करना कठिन है'। अतएव सदां धन का सुख भोगने के लिये प्रत्येक गृह पति विशेष करके पत्नि को 'मितव्ययी' होना चाहिये। बेटी, अथर्ववेद में कहा है कि जिस घरमें यशस्वी पुरुष की पत्नि सब घर वालों की सुध रखने वाली और *परिमित व्ययवाली* होती हैं वहाँ धन की वृद्धि से सब को सुख मिलता है।

(६६) जिस तरह भौंरा यथा क्रम मधु गृहण करता था पानी और घी दूध की एक २ बूंद मिलकर धारा बँध जाती है वैसे ही उद्योग द्वारा विद्या और धनका सञ्चय करे अतएव निम्न श्रेणी के नरनारी से भी उपयोगी विद्या कला कौशल के सीखने में संकोच न करे और मिलते हुए थोड़े धन को लघु देख न छोड़े।

(६७) संतोष दक्षता, सत्य, बुद्धि, धैर्य्य, देश, एवं समय के यथा-वत् उपयोग करने और न करने से धनकी वृद्धि और क्षय हुआ करता है।

(६८) प्रत्येक कुटम्बी जनों को उचित है कि वे अपने उपार्जित धनका अधिकांश भाग अनागत विपत्तियों से त्राण पाने के लिये घर के वृद्ध के पास जमा करदे अथवा अलग रखदे शेष के सात भाग करे जिस में तीन हिस्से से विद्या वृद्धि के लिये दान एवं राज्य प्रबंध में-देवे बाकी चार भाग को खान पान आदि सामान व्यवहार में खर्च करें।

(६९) प्रत्येक गृहपति और पत्नि को अपनी मृत्यु से पूर्व अपने धनादि पदार्थोंको विभाजित कर पुत्र पौत्रादि सत्वाधिकारियों के लिये दे देना चाहिये। क्योंकि मृत्यु के पीछे प्रायः बटवारे के झगड़े में बड़े बड़े घराने नष्ट होते देखे गये हैं।

(७०) ऋग् मं० ५ में कहा है कि वे कुल सदा धन धान्य से पूर्ण रहते हैं जहां से सुपात्रों एवं संसार के उपकार में धन व्यय होता है

परन्तु पुत्री ! वह धन धर्म्म से इकट्ठा किया हुआ होना चाहिये क्योंकि हरण किये हुए परधन अथवा छलछद्म से सञ्चित किये हुए द्रव्यके दान करनेसे न तो कुछ फल होता और न उससे सर्व साधारणके हृदयों पर कुछ प्रभाव पड़ता है। इसके साथ सिर पर पाप का बोझ रहता है वह पृथक्—

अन्याय वित्तेन कृतोऽपि धर्मः,
स व्याज यित्याहु रशेष लोकाः।
न्यायार्जितार्थेन स एव धर्मो,
निर्व्याज इत्यार्य्य जना वदन्ति ॥

इसके साथ देखा देखी संसार में अधर्म की वृद्धि होती है जिसका परिणाम दुःखों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

(७१) गृहपति एवं पत्नि को अपने वित्त के अनुसार उदार हृदय रहना चाहिये क्योंकि यह सर्वोत्तम सुख और निर्मल यशका देने वाला गुण है। परन्तु उदारता की हद धन तक ही नहीं किंतु उदार बनने की आवश्यकता है तन से और मन से क्योंकि जिनका मन उदार नहीं वह लाखोंका धन पाकर भी सूम, मनहूस, कंजूस आदि नामों से पुकारे जाते हैं। बेटी, हमने प्रायः देखा है कि बहुत से गृहपति और पत्नि कभी किसी को कुछ दे देते हैं तो उसको अनेक बार मन ही मन घोकते हैं, मित्र बान्धवों वा सहेलियोंसे बार २ कहते हैं अथवा ग्रहीतासे ही कहते हैं अजी आपको दिये देते हैं और को तो कभी नहीं देते किसी को भोजन कराते हैं तो भोजन सामिग्री आदि उस समय के सभी व्यवहारों से ऐसा जान पड़ता है मानों बोझ टाल रहे हों, किसी आफ़त को उतार रहे हों, कोई कोई मुहदेखी प्रशंसा लूटने के लिये आगत अतिथियों को दो एक दिन के लिये रखता लेते हैं पर फिर उन्हें पल पल भारी पड़जाता है, और घड़ी २ गिनकर उसके जानेके समयकी प्रतीक्षा करते हैं—बेटी ! इस श्रेणी के सारे व्यवहार बहुत ही बुरे हैं—जो कुछ किसी को दो उसके लिये पश्चात्ताप न करो—अपने मुखसे एहसान न जतलाओ—आने जाने वालों को अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार रखो, और उस काल तक एकसा

श्रद्धासे सारे कार्योंको करो कराओ, खिलाओ, पिलाओ, देओ, लेओ—सारांश यह है कि चाहे दान थोड़ा दो, भोजन एक समय ही कराओ, चाहे वह भोजन दूध, दही, रबड़ी, पेड़ा, इमरती आदिसे रहित ही हो—चाहे किसी को दो दिन या एक दिन ही ठहराओ परन्तु बेटी उसके साथ उदारता से श्रद्धायुक्त व्यवहार करो क्योंकि उदारता पूर्वक श्रद्धा से दिया हुआ धन अधिक फलप्रद होता है। श्रद्धासे कराया हुआ भोजन एक अपूर्व रससे युक्त मालूम होता है, श्रद्धा किया हुआ व्यवहार परस्पर की सौहृदता को बढ़ाता है। श्रद्धा से किये हुए कार्य सफल होते हैं, इसी हेतु ध्यानजनित धर्म्म से श्रद्धा का महत्व अधिक बताया गया है प्रत्युत जिस प्रकार सर्प अपनी पुरानी केंचुली को छोड़ा करता है वैसे ही श्रद्धावान् जन पापों को परित्याग किया करते हैं।

बेटी ! परमपिता परमात्मा ने इस सौंदर्य्यमयी सृष्टिमें जितने पदार्थ, और जितनी वस्तुएँ बनाई हैं उन सब के भीतर पवित्र परोपकारिता का भाव भरा हुआ है। देखो वृक्ष दूसरों के लिये ही फूलते फलते हैं सुन्दर लतायें अन्यों के चित्तों के प्रसन्न करने के लिये फूलती हैं, गौओं का स्वादित और पौष्टिक दूध परहित के लिये ही है—सूर्य्य का तेज—चन्द्रमा की शीतलता—रात्रि का अँधकार मेघ का जल दूसरों के सुख के अर्थ है, सुवर्ण और हीरा आदि रत्नोंकी उत्पत्ति भी अन्योंके लिये ही है। अस्तु इस प्रकार के विपद दृष्टान्तों द्वारा इस शिक्षा को ग्रहण करते हुए जो गृहपति—पत्नि अपनी उत्तम विद्या एवं श्रेष्ठ साधनों द्वारा धन संचय कर अपने आश्रित प्रजावर्ग (स्वसंतान कुटुम्बी आदि) का भली भांति पालन और रक्षण करने के साथ अनाथों की सहायता, दुःखियों से सहानुभूति भूखोंको तृप्त, दरिद्र बालकोंको सहायता दे उपयोगी कार्य सिखाने की व्यवस्था, एवं दरिद्र बालिकाओं के लिये उत्तम वर से विवाह तथा नागरिक जनों की समयोचित आवश्यकताओं को अनुभव कर उस को पूरी करने का यत्न ? विदेशों के निवासियों पर दैवी घटनाओं द्वारा उपस्थित हुए दुःखों को दूर करते हैं, अन्यों को कष्ट से बचाने के लिये स्वयं दुःख भोग लेते हैं, दूसरों की स्वार्थ रक्षा अथवा अन्यों के लाभके
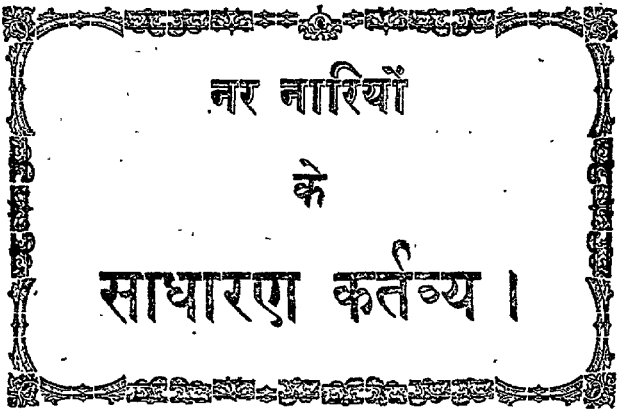
लिये प्रायः शारीरिक-मानसिक और आर्थिक हानियों को सहन कर लेते हैं वे *परोपकारी पुरुषार्थी* जन सब प्रकार के उत्तम धन और उत्तम ज्ञान एवं अतुल यश को प्राप्त कर सूर्य समान प्रकाशमान होते हुए स्थायी सुखोंको भोगते हैं। क्योंकि पुण्यजनक कार्योंके करनेसे बुद्धि निर्मल होती है एवं बुद्धि की निर्मलता से यथार्थ ज्ञानका उदय होता और यथार्थ ज्ञान ही सुखों का उत्पादक है। इसके साथ ही जो इस भांति परोपकार करना नहीं जानते अथवा नहीं करते निश्चय ही वे सृष्टि के गये बीते तृण से भी अधिक निकृष्ट है क्योंकि तृण से पशुओं का तो पेट भरता है।

> तृणं चाहं वरं मन्ये नरादनुपकारिणः।
> घासो भूत्वा पशून्पाति भीरून्पाति रणाङ्गणे॥

इस हेतु प्रिय बेटी, इन सब बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

नर नारियों
के
साधारण कर्तव्य।

प्यारी पुत्री, अब मैं तेरा ध्यान साधारण कर्तव्य की ओर आकर्षित करता हूं जिनके न जानने से बहुधा हानियां भोगनी पड़ती हैं-बेटी, कभी

(७२) आंधी, अग्नि सूर्य्य, जल गौ और नर नारी मात्र के सामने मलमूत्र त्यागन न करे।

क्योंकि आंधी के समय वायू का वेग प्रबल होता है और वायू के रुख की ओर ही मुख करके बैठने पर उस वेगवान् हवा में उड़े हुए तृण, काठ, धूल सामने आती और मुख पर पड़ेंगे बहुत सम्भव है कि एक आध तृण अथवा धूल का कण आंख में चला जाय तब कितना दुःख होगा सो विचारना चाहिये। अग्नि पर मलमूत्र पड़ने से दुर्गंध निकलेगी-शरीर को ताप लगेगी सम्भव है कि जलजाय सूर्य्य भी अग्नि के समान असह्य तेज वाला है। जलकी ओर एक टक देखते रहने से आखों में नजला उत्पन्न होजाता और फिर दृष्टिमंद होजाती है इसी लिये जलमें अपनी परछाई देखने की भी मनाई है। गौ के समीप ही बैठने से उसके मार देने की सम्भावना है दूसरे माता तुल्य सब अवस्थाओं में पालन पोषण कर्ता होने से गाय को 'माता' मानते हैं और माता जैसे पूज्या के सामने यह कार्य्य असभ्यता सूचक है और किसी भी नर नारी के सामने बैठ जानेसे-मल मूत्र खुल कर न होगा जिससे फिर रोग होने का डर है दूसरे असभ्यता द्योतक हैं।

(७३) दिन में प्रातःकाल तथा सायं समय उत्तरकी ओर रात में दक्षिण की ओर मुख कर शिरपर कपड़ा लपेट एवं मौन होकर मलमूत्र त्यागन करे।

क्योंकि दिन में प्रातः एवं सायं समय उत्तराई और रात को दक्षिणाई हवा नहीं चला करती। और यदि हवा के रुख की ओर ही हमारा मुख होगा तो उससे निकले हुए बुरे परमाणुओं का प्रवेश हम में शीघ्र होगा-इस लिये यदि कभी दिन तथा, प्रातः सायं उत्तराई और रात को दक्षिणाई हवा चलती हो तो उधर मुख न कर दूसरी ओर बैठजाय। शिर हमारा बुद्धि स्थान है तथा, शरीर के

अन्य अंग या उपांगों से दुर्गन्ध वा सुगंध ग्रहण करने की शक्ति यहां अधिक है, देखो, हवन का सुगन्धित धूम अथवा आरती को हाथ से ले तुरंत शिर पर रखते या फेरते हैं अतएव खुला होने से दुर्गन्धित वायू उसमें शीघ्र प्रविष्ट होगी।

(७४) अग्नि को फूँक मार कर न जलावे एवं उसमें अपवित्र वस्तु भी न डाले, पलँगके नीचे अग्निका पात्र न रखे, और अग्नि को उल्लंघन करके न जाय, अग्नि से पैरों को न सेके।

अग्निमें फूंकमारनेपर मुख बहुत समीप रहेगा—जिससे उसका तेज सारे चेहरेपर विशेषकर आखोंपर पड़ेगा,फिर नित्यप्रति का यह काम है अतएव रोज२ ऐसाही करने पर आंखोंकी दृष्टि आदिको हानिकर होगा इस लिये अग्नि को 'फूंकनी' या पंखे द्वारा जलाना चाहिये। अपवित्र वस्तु—मांस, मदिरा, चमडा, चर्स, भंग, अफीम भ्रष्ट कूड़ा कर्कट सड़े गले फल अन्नादि के डालने से वैसेही दुर्गन्धित परिमाणू वायु में मिलेंगे जिससे वायू दूषित होगी और वायू के दूषित होने से आरोग्यता का नाश होगा। पलंग के नीचे अग्नि रखने से, किसी पलंग की रस्सी अथवा वस्त्रादि के गिरने पर अग्नि लगजाने की सम्भावना है। उल्लंघन करके जाने में सम्भव है कि दृष्टि चूकजाय और पैरों अथवा वस्त्रों में अग्नि लगजाय—पहले कहा जा चुका है शिर बुद्धि स्थान है—अतः उसके लिये, उचित ठंड अपेक्षित है क्योंकि देखो सिर में गर्मी के आते ही क्रोध बढ़ता है, और गर्मी की अति अधिकता होने से मनुष्य पागल होजाते हैं रक्त में भी उष्णता फैलने का भय है। अतएव ऐसा कोई कार्य्य न करे जिससे शिरमें गर्मी की पहुंच अधिकता से हो।

(७५) जल में पेशाव,मल, थूक खकार न करे एवं इनसे अन्यथा रक्त, विषसे सने हुए वस्त्र को न धोवे जल को हाथ वा पैर से न पीटे—अंजली बांधकर पानी न पीवे।

क्योंकि नदी, तालाब, झील, गंगादि का पानी अनेकों नर नारी और पशु पक्षी पीते हैं और इन सबसे पानी दूषित और खराब परमाणुओं वाला होजाता है अथवा विषसंयुक्त होने से प्राण हानि की सम्भावना है। अतः इन कार्यों को भूल करके भी न करें। हाथ एवं पैरों से जल पीटने से पानी के छींटे पड़ेंगे जिनसे अपने और समीपस्थ दूसरे व्यक्तियों के कपड़े खराब होंगे—और कहीं आखों में पड़गया तो दुःख होगा हाथ पैरों की नसों में, कफ और वात की विकृति होना सम्भव है—आंजुरी से पानी कुछ अधिक पिया जाता है जिससे उदर शूल और पानी के आँतों में भी भर जाने का भय है।

(७६) सूने घरमें अकेला न सोवे, रजस्वला स्त्री से वार्तालाप न करे, यज्ञ में ऋत्विज एवं सभा सुसाइटियों में अधिकारी पद पाने की इच्छा से न जाय, जिस नगर अथवा शहर में असाध्य रोग फैल रहे हों वहां निवास न करे।

क्योंकि बहुत कालसे बन्द होने के कारण सूने घरों की हवा खराब होजाती है-क्योंकि नवीन स्वच्छ वायू का प्रवेश नहीं होता अतएव वहां सोने से नाना प्रकार के रोग होने की सम्भावना है। चित्त भी भयभीत रहेगा, रजोवती स्त्री से वार्तालाप करने पर वही दूषित परिमाणुओं का संसर्ग, तथा एकान्त में बातें करने पर विषय वासना का सहसा उद्वेग होजाता है एवं रजस्वला के संगम करनेसे बल, बुद्धि, तेज तथा परमायु का नाश होजाता है, अतः ऐसे समय में दूर रहे। ऋत्विज, मन्त्री, प्रधान, सभापती, अध्यक्ष आदि पदों के योग्य होने पर यदि जन समूह से वह पद नहीं दिया गया तो स्वयं पद प्राप्ती के लिये अन्यों द्वारा कोशिस न करावे क्योंकि ऐसा करने से मान मर्य्यादा की वृद्धि होने के विपरीत मानका नाश होता है। इसी प्रकार असाध्य रोगों वाले शहरादिमें निवास करने में उसमें स्वयं लिप्त होजाने का भय है इसलिये ऐसे स्थानों में निवास न करे।

(७७) बिना छड़ी हाथ में लिये बाहर न जाय—अगने

चित्तके अनुसार कोई सुवर्णका आभूषण सदा धारण किये रहे। दांत से दांत न बजावे उत्कण्ठित होकर गर्दभ तुल्य शब्द न करे नखों से तृनके हाथ से मट्टी के ढेले न तोड़ें और न मले, प्रातः उदित सूर्य्य को न देखे, चिताके धूप एवं टूटे आसन को त्याग दे।

दांत से दांत बजानेमें परस्पर घर्षण होनेसे दांतों को भी हानि पहुंचेगी। साथही ऐसा शब्द करनेसे समीपस्थ छोटे२ बच्चे डर जांयगे, द्वितीय असभ्यता सूचक है—नखोंसे तृण एवं मट्टी मलना समयको नष्ट करना है हाथोंमें भी मट्टी लग जायगी जो मलीनता का द्योतक है और प्रायः नखों के बीच मैल इकट्ठा होजाता है जो दांतोंसे तोड़ने पर मुखमें जायगा अतः दाँतों से नाखूनोंका तोड़ना घृणित कार्य्य है और रोगोंका उत्पन्न करने वाला है प्रातः उदय हुए सूर्य्यका तेज आंखोंको नष्ट करेगा चिताका धूम रोग जनक, टूटे फूटें आसन पर बैठना व्यवहार में लाना दरिद्रता का सूचक है नहीं मालूम मार्ग में किसी जानवर या भयंकर जंतु से भेंट हो जाय—अथवा कोई अन्य घटना ही उपस्थित होजाय—तब निहत्थे होने पर हानि उठाने की सम्भवाना है—आभूषण शोभा और श्री वृद्धि सूचक होने के अतिरिक्त संकट समय धना भाव से दुःखी नहीं हो सक्ता।

(७८) जूता, वस्त्र, आभूषण फूलोंकी माला, अन्य के काम में लाये हुए वर्तन अपने व्यवहार में न लाना चाहिये। बिना सधे भूख वा रोग से पीड़ित सींग टूटे, आंख फूटे, पूँछ कटे बैल, घोड़े, ऊंट, आदि की सवारी पर यात्रा न करे।

क्योंकि पराये जूते के पहनने से पैर में अवश्य दुःख होगा, और प्रत्येक के पहने हुए वस्त्रों में उसके परिमाणुओं का उसमें अवश्य प्रवेश होजाता है।

अतः वे उसके शरीर में जांयगे जिससे हानि की सम्भावना है, द्वितीय

फटजाय की कीचड़ादि में सन जाय दाग पड़ जाय, तब कपड़े के स्वामी के मनमें कुछ क्रान्ति जरूर होगी, इसी प्रकार वर्तनोंका व्यवहार भी है। आभूषण और गन्धमाला भी जिस प्रतिष्ठा द्योतनार्थ पहने जाते हैं, यह उनसे सिद्ध नहीं होती ऊपर से खोजाय तो लेने के देने पड़ जाते हैं। फिर यदि अन्य जन इन सबको पहचान लें तब मान वृद्धि के स्थान पर दरिद्रता सूचक होंगे। विना सधे बैल घोड़े ऊंट आदि मार्ग में सीधे नहीं चलते, तब उनके अकड़ने और कूदने फांदने से यात्री का गिरना तथा दूसरी हानी उठाने की आशंका है इसी प्रकार भूखे वा रोगी मार्ग जल्दी तय नहीं कर सक्ते—आंख फूटों को मार्ग की ऊंचाई निचाई खाई खड्का ज्ञान न होगा, और सींग टूटे पूंछ कटे बदशकल एवं अप्रतिष्ठा के द्योत होंगे अतः खूब सधे हुए सुन्दर वरण सुन्दर सुडोल शरीरवाले शीघ्र गामी बैल घोड़े आदि की सवारी पर यात्रा करें परंतु चावुक बहुत न मारें और नोकदार पैनी को व्यवहारमें न लावें, क्योंकि बहुत मार से स्वयं क्लेशित होने के अतिरिक्त बहुधा पशुमार के कारण बिगड़ जाते हैं उस समय में सवारी के लोट देने वा गाड़ी, बग्घी, आदि के तोड़ ताड़ देने का भय होता है दूसरे नोकदार पैनी मारने से उनके खून निकल आता है जिस से पशु को अति पीड़ा होती है उन घावों पर मक्खियां भिन भिनाया करती हैं अतः ऐसे निर्दयिता के कार्य्य को न करो।

(७६) शास्त्र वा व्यवहार की कोई वार्ता गर्व युक्त हो न कहे गऊ वा वैलों की पीठ पर चढ़ कर न जावे, परकोटे से घिरे ग्राम वा प्रसिद्ध द्वार को छोड़ अन्य स्थान वा परकोटे को लांघ कर न जाय, रात्रि में वृक्षोंकी जड़ के नीचे न सोवे।

बेटी! गर्व युक्त बात कहने पर उसका जैसा प्रभाव पड़ना चाहिये वैसा नहीं होता दूसरे कहने वाले की निन्दा होती है, गौ के पौष्टिक दूध से हमारी प्रत्येक अवस्था में अनेक प्रकार से सहायता मिलती है—उस का गोवर उत्तम प्रकार की खाद का काम देने के अतिरिक्त दवाका काम

भी देता है इसके लगाने से छाती में पड़ती हुई जलन और बदबू दूर होती है। इसलिये अथर्ववेद में परमात्मा ने आज्ञादी है कि संसारी जन प्रीति पूर्वक गौओंका पालन करते हुए उनका वंश बढ़ाते रहें। क्योंकि वे अपने दूध घी आदि से अपने रक्षकों को पुष्ट और स्वस्थ करती हैं ऐसी अवस्था में सवारीका काम लेना, उसकी मान हानि करने के साथ कृतघ्नता का सूचक होगा दूसरे गौएं गर्भवती कम होंगी—गर्भवतियों के गर्भ गिर जांयगे फिर बलवान गाएँ और बछड़े कम होंगे जिससे घी दूध और खेती में बहुत बड़ी बाधा पड़ेगी।

बेटी! इसी प्रकार के अनेक कारणों से गौ से सवारी का काम लेने का प्रचार नहीं और यदि कोई ऐसा प्रयास करे तो लोकाचार विरुद्ध होने से सब हंसेंगे। पेड़ की जड़ में अनेक जीव जन्तुओं का निवास होता है अनेकों रात के समय अपने आहार की खोज में पेड़पर चढ़ते हैं इनजीवों से सोते समय प्राणों पर विपत्ती आवे, दूसरे रातके समय वृक्षोंसे प्राणों को हानि पहुंचाने वाली वायु निकलती है इसीलिये सायं समय वृक्षोंका पत्ता तक तोड़ने की मनाई है।

(८०) केश हड्डी, मिट्टी के पात्रके टुकड़े, कपासके विनौले भुस्सी एवं भस्म के ऊपर न चढ़े।

विनौले, केश और भुस्सी तीनों ही चिकने होते हैं उनके ऊपर चढ़ने से पैर रपटेगा अर्थात फिसलने पर गिरने और चोट लगने का भय है, हड्डी मिट्टी के पात्र के टुकड़े नुकीले होते हैं अतः चढ़ने पर उनके छिदने का भय है भस्म की अग्नि अज्ञात होती है इस हेतु ऊपर जाने पर सम्भव है कि उसमें अग्नि का अंश कहीं हो जिससे जल जाय।

(८१) पतित चाण्डाल धोबी आदि नीच व्यवसाइयों के साथ वृक्षादि की साया में न बैठे, शूद्र अर्थात् मूर्ख का मन्त्री न बने, क्रोधित होकर भी किसी के केश न पकड़े वा मस्तक पर प्रहार न करे।

पुत्री! पतित चांडालादि नीचव्यवसाई प्रायः मैले रहते हैं तथा

व्यवसाय कर्म जनित निकृष्ट गंध भी निकलती रहती है। अतः-इनको वार्तालाप के समय अपने से दूर बैठावे ताकि उनके परिमाणु अधिक स्वयं पर अपना प्रभाव न जमा सकें। स्वभाव तया, ठंड में वायु का घनत्व अधिक होता है इसलिये उनसे निकले परिमाणु दूर न जाकर वहीं रहेंगे, अतएव वृक्षादि सायादार स्थानोंमें इनका संसर्ग कमरखे। मूर्खका मंत्री बनने से नाना प्रकार के दुःख एवं अपयश प्राप्त के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं होसक्ता, मस्तक पर प्रहार और केश खींचने से मस्तक की नसों में आघात पहुंचेगा जिससे नाना प्रकार की दिमागी बीमारी एवं पागल होजाने का भी भय है।

(८२) सूर्यके निकलने और अस्त होनेके समय और सोते हुए अथवा आसन और जङ्घा पर रख भोजन न करे।

प्रिय पुत्री, प्रातः और सायं का समय, वायुसेवन, संध्या, हवन, करने का है और सोते में निन्द्रा के कारण भोजनों के स्वाद का ज्ञान नहीं होगा आसन बैठने की वस्तु है न कि-रोटी पूरी रखने की-दूसरे जमीन पर बिछाने और उनपर पैरोंके पड़नेसे मट्टीका भी अंश लगा रहताहै इसलिये खानेकी वस्तुओं को विना किसी पात्रमें रखे आसन पर धर कर कभी नहीं खाना चाहिये-जङ्घा पर रख कर खाना सभ्यता के विरुद्ध है।

(८३) मत्त क्रोधके वशीभूत, भ्रूण वा गौ की हत्या करने वेश्या और चोरी से जीविका करने वाले, कृपण, महापातकी, नपुंसक, व्यभिचारी-अथवा व्यभिचारणी, पाखण्डी (पति पुत्र हीना) स्वतंत्राचारिणी स्त्री, मिथ्या साक्षी-देने वाले, उपकारी का अपकार करने वालों का, तथा रजस्वला का स्पर्श किया हुआ कुत्ते का मुँह डाला हुआ अन्न कदापि न खाय।

क्योंकि मत्त तथा क्रोधी के अन्न में न मालूम कैसी प्राणघातक वस्तु

मिली हो क्योंकि मत्त और क्रोधी के निकट कोई अकर्तव्य नहीं है-तृतीय, उसके 'भाव' भी वैसे होंगे-जिससे खाने वालों की प्रकृति भी वैसी होने का भय है रजस्वला के अशुद्ध होने से अन्न अपवित्र तथा, कुत्ता-नाना भ्रष्ट वस्तुओं का भक्षण करता है अतएव ऐसे अन्न से दूर रहे-अन्य सबका अधर्म जनित धन है, जिससे क्रय किये अन्न के खाने से शुद्ध बुद्धि नष्ट हो जायगी।

(८४) विना किसी भेद भाव के सब को अपने गुण-कला, उपयोगी क्रियायें-रोगनाशक औषधियों के गुण दोष बताने चाहिये-और उनके गुण स्वयं सीखने चाहियें।

क्योंकि इस परिपाटी से संसार में शीघ्रता से प्रत्येक प्रकार की विद्याकी वृद्धि होती और परस्पर वहुत भला होता है। परंतु चिरकाल से हमारेमें जहां अन्यान्य दोष होगये वहां यहभी एक है कि हम अपनी विद्या क्रिया आदि दूसरे को बताना नहीं चाहते। जिसका भयङ्कर परिणाम यह हुआ कि वहुतसी उत्तमोत्तम विद्यायें और गुप्त रहस्य उनके शरीरके साथ अनन्त गर्भ में विलीन होगये और भावि संतान उनके लाभोंसे वञ्चित रहगई। इस लिये ऐसे स्वभाव को छोड़ना चाहिये।

(८५) जिन मनुष्यों का कुलशील अर्थात् आचार व्यवहार अज्ञात हों उन से अति प्रातःकाल एवं घोर संध्या समय तथा ठीक दुपहरी में वार्तालाप न करे तथा, ऐसे अजनबी नर नारियों के साथ बाहर यात्रा भी न करे।

कारण वहुत सवेरे और सायं समय वा दुपहरी में मनुष्यों की आमदरफ्त वहुत कम होजाती है इस लिये यदि ऐसे निराले के समय उस का व्यवहार अनुचित हुआ तौ-सहायता देने वाला कोई न होगा-और यात्रा में तौ वहुत ही भय है, सम्भव है कि वह सामान लेकर उतर जांय गाँठ काटले, मार डाले आदि आदि-अतएव यात्रा सदा चिर परिचित मनुष्यों के साथ में करना चाहिये।

(८६) पांसों से कभी न खेले पहरी हुई जूती आप लेकर न चले, नंगा होकर न सोवे। जहां आंख से दिखलाई न दे तो, वृक्ष लतादि से घिरे हुए दुर्गम स्थानों में न जाय, मल मूत्रपर दृष्टि न डाले. दोनों भुजाओं से तैर कर नदी को पार न करे।

पासों का खेल भी, हारजीत होने से जुए, के अन्तर्गत है अथवा पासे के खेल से ही युधिष्ठिरादि को अनेकानेक कष्ट भोगने पड़े, अन्त में प्रलयकारी भारत युद्ध हुआ। अतएव सब भांति के जुओं से सदा सर्वदा दूर रहे। पहरे हुए जूते में मल मूत्र थूक आदि सभी प्रकार के भ्रष्ट पदार्थों का संसर्ग होजाता है और हाथ में लेने से त्रास जनित दुर्गन्धित परमाणुओं की गंध मस्तिष्क तक अवश्य पहुंचेगी, द्वितीय सभ्यता के विरुद्ध है। वृक्ष और लताओंके झुरमुटमें सर्पादि अनेक भयानक जन्तु प्रायः रहा करते हैं इस लिये ऐसे मार्ग होकर निकलने में उनके काटने और कांटों के लगने का बहुत डर है। मल मूत्र पर दृष्टि डालने से दुर्गन्धि शिर में पहुँचेगी, मन विगड़ेगा, जिससे सारी इन्द्रियां ग्लानियुक्त होजायगी और फिर वमन (कय) आदि उपद्रवों के उठने की सम्भावना है। इसी प्रकार तैरने का अभ्यासी होने पर भी यदि कभी अचानक उसमें बाढ़ आजाय और पानी का वेग न रोकसका अथवा किसी दिन तैरते हुए थक जाय हाथ पैर सहायता देने में असमर्थ हों तब अवश्य ही ऐसी अवस्था में प्राणों पर आ बनेगी–इस लिये तैरना जानते हुए भी रोज रोज नदी का तैर कर पार करना अच्छा नहीं। नंगे शरीर सोना प्रथम, असभ्यता है दूसरे खुले शरीर में वायुजनित परमाणुओं का अधिक प्रवेश होता है जिनसे रोग होने का डर है तीसरे–कभी सोतेसे शीघ्र ही उठनेका अवसर आजाय तो–धोती आदि वस्त्रों के ढूंढने और पहरने में देर होगी और उतनी ही देरी से उस कार्य्य के नष्ट होने की सम्भावना है।

(८७) जिसकी विद्या, कुल, जाति, पराक्रम का ज्ञान न हो उसका विश्वास न करे।

कारण उपरोक्त बातों के विना जानें विश्वास करलेने पर पीछे से बड़े २ कष्ट उठाने पड़ते हैं।

(८८) जहां एक बार मान हो पीछे अपमान हो तब फिर श्रेष्ठ जन उस स्थान पर न रहे।

क्योंकि अपमानित होकर जीनेसे मरना अच्छा है।

(८९) अवज्ञाकारी भृत्य,शठ मित्र,अदाता स्वामी,विनय रहित भार्य्या, तर्क रहित वैद्य, निर्लज्जा वधू, मूर्ख सन्यासी, स्वयं दुःखी होते और अन्यों को दुःखी करते हैं।

(९०) अति प्रवासी, परधन भोक्ता, चिर रोगी, हो कर अन्य की शैय्या पर सो कर जीवन बिताने वाले मुर्दे के तुल्य हैं।

इस लिये नर नारियों को अपना ऐसा स्वभाव न डालना चाहिये।

संसार

में

कीर्ति ही अमर

है.

बस बस के हजारों घर उजड़ जाते हैं
गढ़ गढ़ के अलम लाखों उखड़ जाते हैं
आज इसकी नौवत तो, कल उसकी बारी
बन बन के योंही खेल बिगड़ जाते हैं

मो० हाली

किसी संस्कृत विद्वान ने भी कहा है—

"परिवर्तन संसारे मृतः कोवा न जायते"

अर्थात् इस परिवर्तन शील संसार में कौन उत्पन्न नहीं होता और कौन मरता नहीं—वस्तुतः यह अक्षरशः ठीक है रात दिन के चक्रकी भांति नित्य ही करोड़ों प्राणी मरते और करोड़ों जन्म लेते हैं प्रति दिन अनेकों वस्तुयें बनती और अनेकों बिगड़ जाती हैं यहां तक जिसे हम आज दिन और आज रात कह रहे हैं कुछ ही घंटों पीछे उसे कल्ल दिन एवं कल्ल रात कहते हैं आज जो हमारा नौकर है थोड़े दिनों में वही सेठ हो जाता है और स्वयं कितने ही नौकरों पर शासन करता है। जिन्हें पहले सेठ साहूकार देखा था उन्हें दरिद्री और ४-४ पैसों के लिये मुहताज।। इसी प्रकार बड़े २ सेठ साहूकारों के पुत्र-निठल्ले सिठल्ले से परन्तु उन्हीं के क्लार्क महाशय का पुत्र प्रतिष्ठा के साथ प्रति वर्ष डिगरियां प्राप्त करता है। किसी दिन जिस परदेशी लड़के को फटे पुराने कपड़े पहने दर २ फिरते देखा आज उसे ही एक बड़े कारखाने का एकाउण्टेंट देखते हैं। जो साईस जैसी निम्न नौकरी पर था वह आफिस का मुन्शी बना हुआ है कुछ घंटे पहले जो केकई राम को प्राणों से अधिक प्यारा कहती थी वही केकई राज महलों में सुख से पले हुए राम के सुख का किञ्चित् भी विचार न कर चौदह वर्ष के लिये वनमें जाने की आज्ञा देती है। जो राजकुमार राम, राजगद्दी पर बैठना चाहते थे वे अपनी सुकुमारी पत्नी सहित वनको जाते हैं।

राजा नल जो बृहत्राज्य के स्वामी थे वे ही बन बन भटकते बुभुक्षा से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। जिन महाराजा नल के अनेकानेक सेवक

उपस्थित रहते थे वे ही स्वयं राजा ऋतुपर्ण की साईसी करते हैं। जिस की सेवामें अनेकों दासियां लगी रहती थीं वही दमयन्ती दुर्गम वन में अकेली रुदन करती डोलती हैं। जिस दमयन्ती को राजा प्राणाधिक चाहते थे उसको स्वयं घोर वनमें निःस्सहाय छोड़ चले जाते हैं।

राजा हरिश्चन्द्र चक्रवर्ती सम्राट के नाम से पुकारे जाते थे, एक दिन वे ही सम्राट शम्शान में चाण्डाल के भृत्य स्वरूप में दृष्टिगत होते हैं! जो जार *रशिया* किसी दिन विस्तृत रूस सम्राज्य के अधीश थे-आज वे अपनी प्रजा द्वारा ही पद दलित होकर वंदी गृह में पड़े हुए हैं। इसी प्रकार कितने ही बादशाहों ने अपने भय और आतंक से प्रजा को थर्रा दिया और उसी कालमें कितने बादशाह साधारण जिमींदार-एवं जिमींदार से नागरिक बन गये, अनेकों राज्य संसार के मौलि मुकुट बने परंतु फिर ऐसे गिरे कि नाम तक मिट गया, देखो किसी दिन जो रोम सम्राज्य दुनियां के एक भाग में फैला था वहां आज अब यह ऐतिहासिक बातें मात्र रह गई। फ्रांस के राजा नैपोलियन ने किसी दिन योरुप के सम्पूर्ण राज्यों से लेकर मिश्र और एशिया माइनर तक के देशोंकी नींव हिला डाली-लेकिन अब फ्रांसका वैसा दबदबा इन देशों पर नहीं विपत्त में जो अमेरिका परतंत्र था आज वह स्वतंत्रताकी स्वच्छ और सुखदायिनी शैय्या पर आनन्द से आराम कर रहा है-जहां गुलामी प्रथा की प्रबलता थी-आज वहां सब समनता के अधिकार में प्रसन्न हैं। जो अमेरिका के हवशी सेवा कार्य्यके अतिरिक्त कुछ करही न सक्ते थे आज वे ही हवशी गोरी प्रजा के बराबर सब कामों में प्रवीण और भारत की अभागी प्रजा से चौगुने उच्च शिक्षित हैं!। चीनियों को अफीमची कहते थे लेकिन अब चीनी अफीम की चुसकी नहीं लगाते-२५ वर्ष पहले जिस डेनमार्क के किसान भारत के तुल्य दुःखित और कुपित थे किंतु इस समय किसी भी देशके कृषक उनके बराबर शिक्षित और धनाढ्य अर्थात सुखी नहीं-अस्तु कथन का सारांश यह कि जगत् के लीलामय क्षेत्र में नित्य ही अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं। रोज ही अनेकों की दशाओं का अदल बदल होता रहता है लेकिन यह सब देखते हुए भी हम अपने किसी आत्मीय स्वजन के वियोग समयके आते ही दुःख से अधीर हो जाते हैं।

हमारा हृदय हिलजाता है और हम नाना प्रकार से विलाप करते हुए शोकित होजाते हैं। परंतु इस शोक द्वारा स्वयं दुःखित होने के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं—क्योंकि यह सब कर्म्मानुकूल होते हैं इसलिये जिस समय जिसके संयोगकी अवधि समाप्त होजाती है उसका उसी क्षण नाश होजाता है। और जिसकी आयु समाप्त होगई वह मृत्युके मुखमें उसी समय गिरता है। चाहे वह प्रजा का प्यारा राजा हो, चाहे वह दुःख देने वाला पदाधिकारी हो, चाहे दीनों का पालन और दुःखियों से सहानुभूति रखने वाला सेठ हो, चाहे किसी को कौड़ी भी न देने वाला कंजूस हो, चाहे सभा की शोभा बढ़ाने वाला विद्वान् हो चाहे पृथ्वी का भार रूप मूर्ख हो, चाहे सेना का संचालन करने वाला चतुर और शूर सेनापति हो, चाहे कायर सिपाही चाहे बड़े राज्य का उत्तराधिकारी एक मात्र राजपुत्र हो चाहे टूटी झोंपड़ी का स्वामी दरिद्री पुत्र—अस्तु। इसीको लक्ष्य कर किसी कवि ने क्या ही ठीक कहा है।

जन्म जिसने लिया है उसे काल निश्चय खायगा।
अवधि के पश्चात् वह पलभर न रहने पायगा॥
रिक्तकर से आरहे नर जारहे वैसा किये।
जगत का यह रास्ता है रोयें किस किस के लिये॥
मृत्यु के पश्चात् केवल कीर्तिही रह जायगी।
शुभ अशुभ सब कृत्य की वह सुध कराती जायगी॥
उत्फुल्लहो उत्साह से निज कार्य्य करना चाहिये॥
केवल सुयश अमरत्वकाही ध्यान रखना चाहिये।
उस ईश जगदाधार का शुभ नाम जपना चाहिये॥

इसके अतिरिक्त प्रिय पुत्री! जो पञ्चत्व को प्राप्त हो चुके हैं जो ईश्वरीय दर्बार में पहुंच चुके हैं वे चाहे प्रिय हों या अप्रिय जगत पिताने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जिसके द्वारा उनको फिर जीवित किया जा सके अतएव शोक करना व्यर्थ है। हां मृत्यु का सदा स्मरण रखते हुए—

संसार में यश सञ्चय करने का उद्योग करते रहना चाहिये क्योंकि संसार में जिनकी कीर्ति स्थित है वह जीवितके सदृश हैं उन्हीं को अमर कहते हैं। कहा है:—

सजीवतियशोयस्य कीर्ति यस्य सजीवति।
अपयशो कीर्ति संयुक्तो जीवन्नपि मृतो पमः॥

अर्थात् जिसका यश और कीर्ति संसारमें है वही जीवित है विपक्षमें अप यश और अप्रतिष्ठित नर नारी जीते हुए भी मरे के सदृश हैं। अतएव नाशवान शरीर की रक्षा करने की अपेक्षा यश की रक्षा करना उचित है क्योंकि मृत होने पर मनुष्य यशरूपी शरीर द्वारा संसार में जीवित रहता है।

देहे पातनि कारक्षा यशो रक्ष्यमपात वत्।
नरः पतित कायोऽपि यशः कायेन जीवति।

देखो यद्यपि सैकड़ों नहीं वल्कि हजारों वर्ष बीतगई परन्तु अपने २ शुभ कार्य्य से आजभी महात्मा भीष्म, श्रीराम, श्रीकृष्ण, महाराजा युधिष्ठिर, महाराजा हरिश्चन्द्र, महाराजा विक्रमादित्य, इत्यादि के नाम आदर के साथ स्मरण किये जाते हैं। इसी प्रकार महारानी क्वीन विक्टोरिया, महात्मा लूथर राजनीतिज्ञ एडमंड वर्क, कौंटटालसटाय, भारत में होमियो पैथ्यी के प्रचारक, कैसर हिंद रेवरड, आगस्टसमूलर एवं सर सालार जंग राजा सरटी माधव राव के० सी० एस० आई, सर दिनकरराव, बाबू शिशिर कुमारघोष, कवि द्विजेन्द्रलालराय, महा-महोपाध्याय श्री पंडित गंधाधर शास्त्री, राजाराममोहनराय, जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे, जस्टिस द्वारकानाथमिश्र, श्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी, राय बहादुर अतुलचंद्र चैटर्जी एम० ए० डी० एल० सी० आई० ई,

शम्स उलमा डाक्टर सैय्यदअली बिलग्रामी, सरफीरोज़ शाह मेहता के. सी. आई ई, श्रीयुत केशवचन्द्रसेन, सर सैय्यद अहमदखां साहब, बदरुद्दीन तैय्यबजी, प्रसिद्ध दानशील जमसेदजी जीजी भाई, महाराजा लक्ष्मीश्वरसिंह, श्रीबाबू रमेशचन्द्रदत्त सी. आई ई, बंगाल के प्रसिद्ध महोमहापाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्याय रत्न सी. आई. ई., रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी. ए. सी आई ई, माननीय आनन्दमोहन बसु, साङ्गीत विद्या विशारद राजा सर सौरीन्द्रमोहन, मिष्टर दादाभाई नवरोजी, श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले सी. आई. ई, श्रीयुत स्वामी दयानंदजी सरस्वती, श्रीयुत स्वामी दर्शनानन्दजी, राजोपदेशक श्रीस्वामी नित्यानन्दजी, स्वामी रामतीर्थजी, श्रद्धेय पण्डित गणपतिशर्म्मा, श्री पण्डित भगवानदीनजी, वेदभाष्यकार श्री पंडित तुलसीराम स्वामी इत्यादि स्वार्थ त्यागी परोपकार व्रती महा पुरुषों के नाम और कीर्ति चिरकाल पर्यन्त स्थिर रहेगी।

वेद में भी कहा है कि "मनुष्य मृत्यु की प्रबलता पर ध्यान देकर सब शुभ कार्मों को शीघ्र सिद्ध करें।" किसी विद्वान् ने कहा है—

का विद्या कविता विना विनार्थिनी जनेत्यागं विना श्रीश्चका। को धर्मा कृपया विना क्षितपतिः को नाम नीतिं विना॥ कः सूनुर्विनयं विना कुलबधु कः स्वामि भक्ति विना। भोग्यं किं रमणीं विना क्षिति तले किं जन्म कीर्ति विना॥

कविता के विना विद्या, त्याग विना धन; कृपा से शून्य धर्म्म, नीति के विना राजा, विनय रहित पुत्र, स्वामि भक्ति विना स्त्री, स्त्री के विना भोग और कीर्ति के विना पृथ्वी पर जन्म व्यर्थ है।

अतएव कालचक्र के अनादि प्रभाव को स्मरण करते हुए, स्वजन बान्धवों के वियोग समय शोकाकुल हो दुःखी होनेकी अपेक्षा कीर्ति सञ्चय करने का सदा यत्न करना चाहिये।

मान का अधिकारी कौन है

अथवा

सर्वत्र मान किन्हें प्राप्त होता है?

अधमः धनमिच्छन्ति धनंमानञ्च मध्यमः।
उत्तमामानमिच्छन्ति मानोहिमहतांधनम्।

अधम केवल धन की इच्छा करते हैं, मध्यम धन और मान दोनों को चाहते परन्तु उत्तम श्रेणी के नरनारी मान को ही बड़ा धन समझ सदा मान की ही इच्छा करते हैं।

धर्मशास्त्र

वेदी किसी विद्वान् ने कहा है।

जाति मात्रेण किं कश्चित् हन्यते पूज्यते क्वचित्।
व्यवहार परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवाभवेत् ॥

अर्थात् जाति मात्र से किसी का मान अपमान अथवा यश अपयश नहीं होता प्रत्युत अच्छे या बुरे व्यवहार और शील स्वभावसे वस्तुतः जिन का व्यवहार, जिनका आचरण, जिनका शील स्वभाव श्लाघनीय अथवा प्रशंसायोग्य होता है वे सर्वत्र मान पाते है। साथ ही जो क्षमाशील, सत्यवादी और सत्यग्रहीता, शक्तिमान, जितेन्द्रिय, ईश्वरभक्त प्राणी मात्र पर दया और प्रेम करते, सत् शास्त्रों के सार तत्व को ग्रहण करनेवाले, अध्यात्मविधि के तत्व का, सरलप्रकृति, श्रेष्ठाऽनुचरित मार्गपर चलने एवं सत्संग करना और सत् शास्त्रों का अध्ययन मनन करना जिनका मुख्य सामाजिक अनुष्ठान है वे ही सर्वत्र मान पाते हैं।

(९५) जो तेज यश बुद्धि ज्ञान विनय तपस्या जन्ममें वृद्ध हैं वे ही माननीय होते हैं।

(९६) जो अनुराग क्रोध भय इन्द्रिविजय रहित शूर है वे ही सर्वत्र सम्मान पाते हैं।

(९७) काम क्रोध लोभादि के वश जिनका वचन (कहना) कभी व्यक्तिक्रम नहीं होता वे ही सर्वत्र सम्माननीय हैं।

(९८) जो सुशील, सुख दायक स्वादरयुक्त पवित्र उत्तम वचन कहनेवाले ईर्षा एवं आलस रहित हैं। वे ही सब जगह 'मान' पद पर अधिष्ठित होते हैं।

(९९) जो नरनारी नाना प्रकार की कला कौशल और विद्याओं के ज्ञाता होकर संसार के हित के लिये उनका प्रचार करते और जो अपने स्वार्थातिरिक्त हो दूसरों का ही हितसाधन करते तथा पर दुःख को देख दुःखी होते हैं वे ही सर्वत्र सम्मान पाते हैं।

(१०१) जो अनेक शास्त्र विद्व होकर मनोनुकूल बात कहते और शठताहीन अदीन हैं वे ही मान पाते हैं।

(१०२) जिन्होंने कभी धन और कामके लिये लड़ाई नहीं की जिन्हें काम भोग के लिये कामना नहीं है जो कभी आत्म प्रशंसा नहीं करते वे ही सब स्थानों में 'मान' पद पर अधिष्ठित होते हैं।

(१०३) जो अच्छे वक्ता हैं, विविध प्रकार की चित्त वृत्तियों को देखते हुए किसी की किसी से निन्दा नहीं करते जो अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करते एवं जिन्होंने स्वचित्त को वश कररखा है। बेटी! ये ही इस लोक में सर्वत्र मान पाते हैं।

(१०४) जो अर्थ लाभ होने पर हर्षित और अर्थ हानि होने पर दुःखी नहीं होते स्थिर बुद्धि अनासक्त चित्त हैं, पुत्री! वेही धार्मिक पुरुष सर्वत्र पूजनीय होते हैं।

(१०५) जो अपने देश की ममता और मनुष्य जाति की उन्नति के रस में पगे हुए हैं जिन्हें अति समय अपने देश भाइयों की दशा का ध्यान रहता है और उसके सुख-दुखके लिये यत्नवान रहते हैं वही नरनारी सर्वत्र पूजनीय हैं।

(१०६) जो स्वधर्म्म में दृढ शास्त्रज्ञ अनृशंस संमोह हीन सब विषयों में अनासक्त रहने पर भी आसक्त तुल्य दीखते हैं वेही सर्वत्र पूजित होते हैं।

(१०७) जो अपने उपदेशसे अन्यों को बुद्धिमान, वीर्य्यवान, निरोग सहन शील, क्षमावान, परस्पर एकता और प्रेम, का प्रेमी बनाते हैं वे पूजनीय होते हैं।

(१०८) जो अन्नादि के साथ सब प्राणियों का सत्कार करते हैं वेही जगत में प्रशंसित होते हैं।

(१०९) जो अपने धन विद्या बुद्धि से सुपात्रों को सुखी और दीनों पर दया करते हैं उनकी अतुलकीर्ति होती है।

(११०) जो नरनारी भले प्रकार वैद्यक शास्त्र को जान कर केवल अपने धनलाभ के लिये नहीं किंतु–संसारी जनों के अनेक रोगोंसे सताये गये शरीर को स्वस्थ और सबल बनाने का उपाय करते एवं निर्धनों का धनवानों से भी अधिक ध्यान रखते हैं–वे निर्मल यश के भागी होतेहैं।

(१११) जो मनुष्य पुरुषार्थी विचार शील वेद विद्या के जानने वाले हैं वे ही संसार के भूषण हैं ॥

(११२) जो अपनी पत्नियों को संतुष्ट रखते हुए संतानों को दाय भाग दे सत्पात्रों को दान देते हैं वे ही वृद्ध हैं।

(११३) जो निरन्तर धर्म्म युक्त कामों को करते हैं वे ही शिरोमणि होते हैं।

(११४) जो नरनारी मन वाणी कर्म से एक सा ही, अर्थात् जैसा मनमें है वैसाही कहते हैं और जैसा कहते हैं वैसाही करते हैं–उन्हीं को देव और देवी कहते हैं।

(११५) जो विद्वान् धर्म्मात्मा मनुष्योंको विद्या देकर उत्तम शिक्षा से योग्य बनाते हैं वेही 'पितर' शब्द से संबोधन किये जानेके योग्यहैं ॥

(११६) जो निन्दा स्तुति हानि लाभादि को सहने वाले पुरुषार्थी और सब के साथ मित्रता का आचरण करने वाले हैं उन्हीं कोआप्त कहते हैं ॥

(११७) जो राग द्वेषादिको छोड़ परस्पर प्रीति तथा ब्रह्मचर्य्य पूर्वक समस्त वेदज्ञाता और सत्यासत्य का विचार कर धर्म्म मार्ग का निर्णय करने वाले हैं उन्हीं को ऋषि कहते हैं।

(११८) जो दुःख में न दुःखी और न सुख में अति प्रसन्न नहीं अथवा दुःख सुख अनुभव करने की इच्छा का नाश होगया राग, भय क्रोधादि से रहित स्थिर बुद्धि वाले हैं वेही मुनि है।

(११९) जो सत्य और संतोष रूपी बीज धर्मरूप पत्ते–अतिथी सत्कार रूपी फल, ब्रह्मचर्य्य रूपी जड़, करुणा तथा विनयचूर्णरूप से–

उदारता का सत जातीय प्रेम का रस सब बराबर दृढतारूपी खरल में सावधानी रूपी मूसली से कूट पीसकर प्रेमरूपी जलके साथ एकता की आंच में पके हुए रसको न्याय के वस्त्र में छान ज्ञानकी बोतल में भर प्रति दिन सत्यभाव के कटोरे में डाल कर पीते हैं वेही **ज्ञानी** हैं।

(१२०) जो सदा प्रति समय अधोगति नर नारियों के उद्धार का ध्यान रखते—एवं विचारे हुए उपायों को काम में लाकर उनका उद्धार करते उनको पुनः ऊंचा बनाते हैं वेही संसार में **महात्मा** हैं॥

(१२१) जो काम क्रोध से उत्पन्न हुए वेगों को सहन करलेते हैं वेही सुखी और **योगी** हैं।

(१२२) जो अपने तुल्य ही अन्यों के सुख दुःख का विचार रखते हैं अर्थात् जिस व्यवहार आदि से अपनी आत्मा को दुःख होता है अन्यों के दुःखी होने के विचारसे कभी वह व्यवहार नहीं करते वे ही **परम योगी** हैं।

(१२३) जिन्होंने, अपनी इन्द्रियां मन और बुद्धि को अपने वश में कर लिया है और इच्छा—भय, क्रोध आदि दूर होगये हैं वे मननशील महात्मा **जीवन्मुक्त** हैं।

(१२४) जिस प्रकार परमेश्वर अपने अचल नियम से सूर्य आदि को केन्द्र पर ठहरा कर सब संसार का उपकार करता है वैसे ही जितेन्द्रिय विद्वान् सब प्राणियों की हित साधना करते हैं एवं ऐसे जन ही **परमहंस** कहलाने के योग्य होते हैं।

इस लिये बेटी, ' **मान** ' कोईही बड़ा धन समझकर उपरोक्त विषय पर ध्यान देकर उल्लिखित गुणोंको धारण करते हुए गुणियों का यथोचित आदर करना चाहिये जिससे संसार में गुणी जनों की वृद्धि हो।

राजा की आवश्यकता
और
प्रजा का धर्म

यदि नस्यान्नर पतिः सम्यङ्नेतात सः प्रजाः
अकर्णधारजलधौ विप्लवे तोह नौरिव ।

उत्तम नीतिवान् राजा के बिना प्रजा इस प्रकार नष्ट होजाती है जिस प्रकार मल्लाह के बिना समुद्र में नाव ॥ ६५ ॥

शुक्रनीति

प्यारी पुत्री ! जिस प्रकार इस चराचर ब्रह्माण्डको नियम में चलाने वाला परम पिता परमात्मा मुख्य कारण रूप है वैसे ही संसार में पवित्र आचार, धर्म, नीति तथा मर्य्यादा की स्थिति, बलवानों निर्दयी, और अत्याचारियों से निर्बलों निःसहाय और दुःखितों की रक्षा जगत उत्पत्ति वा वृद्धि, एवं जगत के सबही प्रकारके व्योहारों का निमंत्रण करने के लिये एक सर्व गुण सम्पन्न शासन कर्त्ता अर्थात् राजाकी आवश्यकताहै।

बेटी ! बिना सेनापती के जैसे बलवान सेना कहीं विजय-सुख और शांति लाभ नहीं कर सकती वैसेही बिना राजा के प्रजा कभी भी आनंद भोगने में समर्थ नहीं होसकती । क्योंकि बिना राजभय के कोई भी सप्रतीत निश्चल भाव से अपने धर्म्म के पालन अपनी जाति मर्यादा के अनुसार प्रत्येक आचरण के करने में समर्थ नहीं होसकता-बिना राज भय से किसी की धार्मिक, सामाजिक तथा नागरिक स्वतन्त्रता निरापद नहीं रहसक्ती ।

बिना राज भय से प्रत्येक को अनेक प्रकार से अपने विचार प्रकट करने का अवसर तथा तदनुकार्य करने का सुयोग प्राप्त करना संभव नहीं।

बिना राज भय के कोई भी जाति अपनी ही कुल रीति अनुसार विवाह आदि सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बाध्य नहीं होसकती और न वर्ण संकरता के दोष से बच सक्ती है ।

बिना राजभय के व्यभिचार और आचार हीनता के स्थान पर सदाचार तथा जितेन्द्रियता की पवित्र रीति का स्थापन हो सक्ता है ।

बिना राजभय से देश में विद्या कला कौशल का प्रचार नहीं होसक्ता।

बिना राजभय से कोई भी अपने अधिकार पर संतोष तथा उसका भली रीति से उपभोग नहीं कर सक्ता ।

सारांश यह है कि परमात्मा द्वारा रची गई इस सारी सृष्टि और उस के व्यवहारों को नियम और मर्य्यादा के भीतर चलाना एक श्रेष्ठ शासन कर्ता का ही काम है ।

इसीलिये अथर्व का० ७ सूक्त ८७ मं० १ में कहा है कि मनुष्य मात्र धर्मात्मा न्यायकारी जितेन्द्रिय शूरवीर राजा का सदा आदर करते रहें ।

आतार मिन्द्र मवितार मिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
हुवेनु शक्रं पुरुहूतं मिन्द्रं स्वस्तिन इन्द्रो मघवान कृणोतु॥

लेकिन शासक वही श्रेष्ठ कहा गया है जिसके शासन में प्रजा निर्भय होकर अपने मनोनीत स्थानों पर विचरण कर सके।

जिसके शासन में प्रजा अपनी प्रत्येक प्रकार की उन्नति कर सांसारिक और पारमार्थिक सुखों को प्राप्त करने में समर्थ होसके।

जिसके शासन में प्रजा अपने ज्ञान को विकसित कर यथार्थ तत्वको गृहण कर सके।

जिसके सुशासन में–प्रजागणों के वैर विद्रोह फूट आदि कुभावों के स्थान में–ऐकता प्रेम सहानुभूति और सहृदता का प्रवाह प्रवाहित हो।

जिसके सुशासन में, चोर डाकू अत्याचारियों के सुधार करने का प्रयत्न किया जावे।

जिसके सुशासन में, मूर्खों के स्थान में पूर्ण विद्वान् विचारशील विज्ञानी जनों की वृद्धि हो।

जिसके सुशासन में, प्रजाके धनधान्य की यथेष्ट वृद्धि हो।

जिसके सुशासनमें प्रजा अताताई शत्रुओंसे निर्भय और निशंक रहे।

तात्पर्य यह है कि ऐसे शासन के करने वाले नृपति के आधीन प्रजा ही अपने मनुष्यत्व को प्राप्त करने का यथार्थ लाभ उठा सक्ती है ऐसी शासन मर्य्यादा स्थापित करने वाले श्रेष्ठ शासककी छत्रछायामें रहनेवाली प्रजा सब तरह के सुखों से भरपूर होकर अपने अभीष्ट मनोरथों को पूरा कर सक्ती है।

लेकिन भारत की बीती हुई शताब्दियों में उपरोक्त प्रकारके शासन सुखों से भारत की प्रजा वञ्चित ही नहीं रहीं बल्कि दया शून्य हृदय शासकों के कठोर शासन चक्र में बुरी तरह पिसी–परन्तु समय की घटना से इसका भी अंत हुआ और भारत को जैसे सद्गुण सम्पन्न शासक की छत्रछाया अपेक्षित थी उसने वैसा ही प्राप्त किया। जिसके प्रतिफलमें वह आज प्रत्येक प्रकार से उन्नति संयुक्त सुख का आस्वादन ले रही है।

परन्तु जिस प्रकार पुत्र का भली भाँति पालन पोषण और रक्षण किये बिना पिता अपने कर्तव्य से उऋण नहीं हो सक्ता और पुत्र उसके

उपकार को मानता हुआ जब तक पिता की आज्ञा पालन तथा सेवा शुश्रूषा आदि न करे तब तक वह अपने जीवन में वास्तविक रूपसे सुखी नहीं होसक्ता-वैसे ही बेटी ! राजा और प्रजा का सम्बन्ध अथवा राजा और प्रजा के सुख विस्तार में दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है-जबतक राजा सुनियमों और उन्नति जनक कार्य्यों का सूत्रपात अथवा उनको सहायता न देवे तबतक प्रजा सुखी नहीं हो सक्ती-सम्राज्य उत्तम और संगठन शील राष्ट्र नहीं होसक्ता-साथ ही जब तक प्रजा राज के इन नियमों को आदर के साथ स्वच्छ हृदय में मानते हुए पालन न करे उसकी स्थिति के लिये प्रत्येक प्रकार से सहायता न देवे तब तक राज्य की शक्ति सामञ्जस नहीं होसक्ती। इस हेतु बेटी, अपने सुखों के विस्तार और अपने देश की प्रतिष्ठा के लिये हमें अपने सुयोग्य शासकों-शासन सूत्र ग्रहीता महामहिप सम्राट पञ्चमजार्ज एवं राजमाता मेरी का सदा अनुगत और हितचिन्तक होना चाहिये।

एवं जिस प्रकार प्रार्थना पूर्वक याचना द्वारा सन्तान अपने माता पितादि परिपोषकों से मनोभिलापित वस्तुओं को प्राप्त कर सुखी होती है वैसे ही प्रजागण राजविद्रोह से अलग रहते हुए अपने विद्वान् नेताओं द्वारा अपने विचारों को महाराज पर प्रकट करें अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरी कराने का उद्योग करें-विपरीत जैसे-आपस में ही विरोध और लड़ने वाले कुटम्बी कभी यथार्थ सुख का अनुभव नहीं कर सक्ते वैसे राजविद्रोह द्वारा प्रजा अपने मनोभिलापित सुखों से ही वञ्चित नहीं रहती प्रत्युत अपने मनुष्यत्व के महत्व को खो बैठती है विद्वानों ने कहा है कि मित्रघाती, गुरुघाति और राजविद्रोहियों की कभी निष्कृति नहीं होती।

इसलिये बेटी, ऐसे भयंकर अपराध की ओर स्वप्न में भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिये और न ऐसे विचार वाले नरनारियों को किसी प्रकार से आश्रय देना चाहिये।

इस प्रकार राजा प्रजा में परस्पर जितनी सहानुभूति और प्रेम तथा शुभकामना बढ़ती है उतना ही सुखों का विस्तार होता है।

———

गृहस्थाश्रम का मुख्य उद्देश्य
और
देश की उन्नति.

सिनीवालि पृथुष्टके या देवा नामसि स्वसा । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदि डिढनः ॥

जिस घर में धन्नवती व्यवहार कुशला और सुशिक्षिता स्त्रियां होती हैं वहीं उत्तम सन्तान उत्पन्न होते हैं ।

अथर्व का. ७ सू. ४६ मं. १

विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयेगी।
अर्द्धाङ्गियों को सुशिक्षा दी न जब तक जायगी॥
सर्वाङ्ग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की।
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा गात की॥

भारत भारती।

महा पुरुषों के वाक्य

अच्छे बीज से ही उत्तम रस वाला फल प्राप्त हो सक्ता है।

श्रीसाधु तुकारामजी

अनेक भव्य इमारतों के संस्थान से नगर और राष्ट्र बलशाली नहीं होता किन्तु विद्वान गम्भीर और ईमान्दार सुशिक्षित मनुष्यों के समूह से।

मार्टिन ल्यूथर

जिस जाति में बुद्धिमान् तथा शक्तिमान् लोगों की अधिकता होगी वही देश दूसरे देशों पर विजय प्राप्त कर सक्ता है।

मि० ग्लटन

स्त्रियों के सुशिक्षित होने से ही पुरुष बुद्धिमान् होसक्ते हैं इसीलिये जितना उनको योग्य बनाया जायगा उतना ही भावि सन्तान सुयोग्य बनेगी।

कविवर शैरिडन

हर देश और जाति में मनुष्य वैसा ही बनता है जैसा उसकी माता उसको बनाती है।

सर एडवर्ड वर्टी

प्यारी पुत्री ! अब तक मैंने गृहस्थसम्बन्धी जानने और समझने एवं पालन करने योग्य अनेक बातें सुनाईं लेकिन इन सब के पालन और धारण कर लेने पर भी जो गृहस्थाश्रम का मुख्य उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि गृहस्थाश्रम का मुख्य उद्देश सुसंतान उत्पन्न करना है बेटी ! कहा गया है कि संसार की ताप से जलते हुए नर नारियों के लिये सुपत्नी, सुसंतान और सज्जनों की संगति ही सुखदायिनी है। साथही जिस भांति सुन्दर पत्र और सुगन्धित फूलों वाले वृक्षसे सारा वन सुन्दर और सुगन्धमय होजाता है वैसे ही सुसंतान से कुल जाति और देश उन्नत और प्रतिष्ठित होता है सुसंतान का माता पिता बनने से ही शास्त्राज्ञा और वैदिक मर्य्यादा का पालन हो सकता है। शुभ गुणोवाली संतान के द्वारा ही पितृऋण मुक्त किया जा सकता है क्योंकि उत्तम गुण और उत्तम व्यवहार से ही मनुष्य सर्वत्र माननीय एवं पूजनीय होकर अपने पूर्व पुरुषागणों तथा अपनी जाति और देश की प्रशंसा चहुंओर फैला सकता है उत्तम कुल और उत्तमदेश ऊंचे वर्ण में जन्म लेने मात्र से नहीं, इसके अतिरिक्त सुसंतानों से ही, अपने धर्म्म और जातीय चिन्हों की रक्षा हो सकती है।

अपने उत्तम गुणों का विस्तार हो सकता है। अपने गौरव से संसार को गौरवान्वित किया जा सकता है।

पवित्र मर्य्यादा का पालन और प्रचार हो सका है।

परस्पर प्रेम पूर्ण अनुराग और सहानुभूति तथा सुख शांति की वृद्धि हो सकती है।

एक अनुभवी राजनीतिज्ञ का कथन है कि प्रत्येक देश की उन्नति उसकी युवा संतानों की आकांक्षा उत्साह उच्चविचार और आत्मा की गम्भीरता एवं आचरण की श्रेष्ठता है—साथ ही इन्ही सद्भावों की शिथिलता अवनति है

लेकिन संतानों का अच्छा या बुरा होना, गुणी या अवगुणी बनना माताओं की कृपा का फल है क्योंकि मातारूपी सांचे के भीतर ही बच्चे का पुतला बनता है।

माता के आहार के अनुकूल ही उसकी सतोगुणी, रजोगुणी अथवा तमोगुणी प्रकृति होती है, माता के वस्त्र धारण विषय में जैसी रुचि रहती है बच्चा भी तदनुकूल रुचि वाला होता है, माता गन्धमाला सुगन्धादि के लगाने में अपनी मनस्कामना अथवा उनके प्रति जैसा प्रेम और अनुराग रखती है ठीक वैसे ही बालक के भी होते हैं परिवार में होने वाली सांसारिक बातों से उत्पन्न हुए माता के विचारों का कुछ ताव बच्चे में खिंच जाता है परिवार के वृद्ध और वृद्धाओं परम्परागत आने वाले बुरे या अच्छे गुणों के कुछ आंशिक भावों की भी जड़ बच्चे में जमजाती है सखी सहेलियों के संसर्ग और सहवास से उठे हुए विचारों का प्रभाव भी बालक पर होता है मननशील विद्वानों की लेखनी से निकले हुए ग्रन्थों के स्वाध्याय से माता के हृदय पर पड़ा हुआ असर बच्चे पर भी होता है, कुल गुरु पुरोहित और पुरोहितानी की धार्मिक शिक्षा अथवा कोई कपोल कल्पित दंत कथाओं द्वारा उत्पन्न भाव बच्चे के अभ्यान्तर में भी जग जायँगे अधिक क्या माता का जैसा स्वास्थ्य रहेगा बच्चेका भी वैसाही रहेगाअर्थात् माता शारीरिक मानसिक निर्बलताओं से युक्त है तो बालक का मस्तिष्क सदा के लिये निर्बल रहेगा इसके अतिरिक्त बालक के उत्पन्न होने के ५ वर्षतक वह माता की संरक्षकता में ही पूर्ण रूप से रहता है और बच्चे के यह ४-५ वर्ष उस के भावी जीवन की आधार शिलायें हैं क्योंकि मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार इस समय तक मस्तिष्क अत्यंत कोमल और प्रभाव ग्राही होता है-और उसमें जो प्रभावों की धारियां पड़जाती हैं-वेही भविष्य में बढ़ती रहती हैं-और उनको मिटाकर दूसरे प्रकार का बनना दुष्करही नहीं वरन् असम्भव है अतएव शारीरिक सामाजिक नैतिक शिक्षामें जैसी कुछ शिक्षा और इनके विकास में १० वर्ष तक सहायता मिलती रहेगी भविष्य में बालक वैसाही बनेगा। वस्तुतः प्रिय पुत्री ! जिस प्रकार खेत में बोये बीज के अनुसार पेड़-फल फूल होते हैं और उनकी प्रकृति का बदलाना दुस्तर है उसी प्रकार बालक में माता द्वारा बोये गये विचारूपी बीज यावत् जीवन तक विकसित होते रहते हैं इसीलिये कहागया है :-

माताका संस्कारही बच्चेके संस्कार निर्माणका साँचाहै।

एक विज्ञजन का कथन है कि संतान की शिक्षा के लिये उसके जन्म शुरु से तीस वर्ष पहले प्रबंध करना चाहिये (सारांश यह है कि अपने भविष्य जीवन में प्रत्येक कन्या माता औरप्रत्येक पुत्र पिता होंगे इसी लिये प्रारम्भ से ही उनकी सर्वाङ्गिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिये उनका पालन इस ढंग से होना चाहिये जिस से वे यथार्थरूप से अपने कर्तव्यों का पालन करसकें)

वेद में कहा है जहां गुणी माता पिता और गुरु संतानों को शिक्षा देते हैं वहीं के बालक गुणी धनी और बली होते हैं :—

बहुत से गण्य मान्य पश्चिमी विद्वानों का भी ऐसाही मत है देखोः-

माता के स्वभाव का परिणाम उसके बालक पर होता है-मिष्टर कार्टर छोटे बच्चों को पवित्रता सत्य विवेक तथा अन्य सभी प्रकार की प्रारम्भिक उत्तम आकांक्षाओं को सीखने के लिये मां की गोद से अन्य कोई उत्तम स्थान नहीं-मि० बाउम

माता ही अपने बच्चे की पहली संरक्षिका और शिक्षिका है मि० निची सुशिक्षिका माता सौ सिक्षकों से भी श्रेष्ठ गुरु है-जार्जहर्बट

यदि देश को उन्नत करना चाहते हो यदि राष्ट्र को सर्वोच्च देखने के अभिलाषी तो मुझे योग्य माता पे दो नैपोलियन बोनापार्ट

देश के इङ्गलैंड की उन्नति यहां की माताओं के हाथ में है अतः यदि प्रत्येक कुटम्ब में योग्य मातायें हों तो देश निसन्देह उन्नति कर सक्ता है। मि० ग्लैस्टोम

जिस घर में माता पिता-विशेष कर माता अध्यापिका है वह घर मनुष्यत्व और सभ्यता का बड़ा विद्यालय है क्योंकि उस घर में बड़े २ महत्वपूर्ण पाठ सिखाये जाते हैं और ऐसी शिक्षा दी जाती है जो कभी असफल नहीं होती इसलिये हमें शुद्ध हृदय और अच्छे मस्तिष्क वाली अच्छी माताओं की आवश्यकता है-मि० फ्रेडरिक हेस्टन

अस्तु ! हमारे प्रसिद्ध नेता स्वर्गीय स्वनाम धन्य श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले ने अपनी एक वक्तृतामें कहा था कि जिसदेश की सामाजिक या आन्तरिक दशा को देखना हो तो उस देश के महिला मंडलपर दृष्टिपात करो; ।

अर्थात् जिस देश का मातृ अर्थात् गृहणी मंडल उन्नत दशामें है । वह देश भी अवश्य उन्नत और प्रौढ़ होगा और जिस देशकी स्त्री समाज दुःखी दीन, अज्ञान और मूर्ख है वह देश और रुसाज्य भी अज्ञान धुंधाकार में पड़ा हुआ दुःखी और दीन होगा-प्रिय पुत्री ! वस्तुतः यह बहुत ही ठीक है देखो ? जिस समय रोम जैसे छोटे राज्य की स्त्रियों में पतिव्रत स्वावलम्बन स्वार्थ त्याग और धैर्यादि अनेक गुण थे उस समय उसने धीरे २ बढ़ते २ एक राष्ट्र का रूप धारण कर लिया परन्तु साथ ही जब एक ओर रोमन स्त्रियों की दशा बिगड़ने लगी और जर्मनी स्त्रियों की दशा उत्तरोत्तर हो रही थी फल यह हुआ कि जर्मन सम्राज्य ने रोम को धर दबाया, साठ वर्ष पहले जापानी कुटुम्ब व्यवस्था वा स्त्रियों की दशा वैसी ही जैसी आज भारत की है इसलिये जापान राज्य भी वर्तमान भारत का समकक्षी था । परन्तु आज ५ करोड़ ३० लाख की आबादी में ढूंढने पर भी एक स्त्री निरक्षरा न मिलेगी वहां प्रत्येक बालक बालिका की पढ़ाई ६ वर्ष से आरम्भ होती है अतः सन ११ में २७ लाख बालिकायें प्रारम्भिक पाठशालाओं में थीं । मिडिल स्कूलोंके अतिरिक्त १६० हाईस्कूल एवं नार्मल तथा कालिजों के अतिरिक्त स्त्रियों का पृथक् विश्व विद्यालय भी है-इन में अध्यापिका का कार्य्य करने के लिये १३ अध्यापिका विद्यालय भी हैं । जहां पढ़ने वालियां को उचित प्रकार से पृथक् शिक्षा दी जाती है इतनाही नहीं प्रत्युत बुद्धि तीव्र एवं चतुरात्यथा विद्या रसिक युवतियां को सरकार अपने व्यय से आप देशों में शिक्षा प्राप्ति के लिये भेजती है चिकित्सा यानी डाक्टरी की शिक्षा देनेके लिये भी १ विद्यालय और दो कालेजहैं जिनसे १५० चिकत्सक ३००० दाइयां (Nueses) शिल्पकला सीखने के लिये औद्योगिक एवं व्यापारिक विद्यालय बहुतायत से हैं इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की शिक्षा देने वाले पृथक् २ विद्यालय हैं ।

लेकिन इस प्रकार से शिक्षा देकर योग्य बनाने का प्रधान लक्ष्य यही है कि स्त्रियां "समाज" में उच्चस्थान ग्रहण करे अर्थात् श्रेष्ठ गृहणियां और सुमातायें बन राष्ट्र का हित करें। आज जापान की दशा को देखने वाले कहसकते हैं कि जापान सरकार का उक्त मनोरथ कितना सफल एवं लाभकारी सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अमेरिका में कन्याओं और लड़कों को समान रूपसे शिक्षा दीजाती है और आगे भी सब प्रकार से समान अधिकार दिये गये हैं वहां उच्च शिक्षा प्राप्त करने अध्यापिका, इन्स्पेक्टर हाईस्कूल की प्रन्सिपल और शहर सुपरिन्टेन्डेन्ट एवं यूनीवर्सिटी की प्रधान भी होती है जिनका कि वार्षिक वेतन ८×१० हजार डालर का होता है।

१६१० में १३४२ स्त्रियाँ वकील १३,६८७ एम. डी. होकर डाक्टर परिचर्य्या यानी नर्सस (Nurses) १६३६२२ ४८४११५ स्त्रियाँ अध्यापिका, पत्र सम्पादक और रिपोर्टर १३५२१, धर्म्मप्रचारिका ८५७४, गान विद्या द्वारा धन उपार्जन करने वाली १४८७८ थीं, इनमें कोई २ तो लाखों डालर तक पैदा कर चुकी हैं—

क्योंकि गायिका सुन्दरियें अपने देश के विश्वविद्यालयों की शिक्षा समाप्त कर इटालियेन, जर्मनी, आदि देशोंके गायनाचार्य्यों द्वारा शिक्षित होती हैं। चित्रकारी की शिक्षा और चित्रशालाओं में कार्य्यकर्ता पुत्री गणों की संख्या १५००० से ऊपर थी इस विद्या में भी कितनी ही देवियाँ प्रसिद्धी पाचुकी है।

शिल्प शास्त्र की पारंगताओं की गणना भी हजारों से ऊपर है। बेटी! अधिक क्या आज २८६ प्रकार के व्यवसायों में उनका हाथ है और सब ही विषयों उच्च से उच्च शिक्षिताओं की संख्या मिलेगी।

परिणाम में आज अमेरिका की दशा को जानने वाला क्या कोई भी सहृदय नर नारी मुक्त कण्ठ से सराहना किये बिना रह सक्ता है। अस्तु

सारांश यह है कि इस महत्व पूर्ण दृष्टि से संसार का उत्कर्ष या अपकर्ष अभ्युत्थान और पतन संकोच या विकोच महिला मंडल पर ही निर्भर है।

प्राचीन भारतकी देवियाँ भी समानाधिकार में पलकर अपनी शारीरिक मानसिक आत्मिक उन्नति के विकास में सुसभ्यता के क्षेत्रमें सब से आगे थी, सांसारिक मर्यादा और रीतियाँ उनके शारीरिक, सामाजिक और नैतिक बलके बढ़ाने में सहायिका थीं अतएव वे अपनी कोख को सुलकृत करने वा मातृपद को सार्थक ही क्या वास्तविक माता बनने के लिये अपने आचार व्यवहार पर प्रत्येक प्रकार से ध्यान रखती थी– देखो; जब महारानी मंदालसा के तीनों पुत्र गुरुकुल से ही पूर्ण वैरागी हो संन्यासी बन गये तब महारानी को कुछ भी इसका शोक न हुआ क्योंकि उन्होंने तो प्रारम्भ से उनको सांसारिक सुख भोगने की अपेक्षा मनुष्य जन्म के सच्चे सुख अर्थात् अमर पदकी प्राप्ति के लिये आत्मज्ञान की शिक्षा ही दी थी, परन्तु महाराजा को बहुत क्षोभ हुआ-अतः ईश्वर की कृपा से जब रानी को चौथे गर्भ के चिन्ह प्रकट हुए तब उन्होंने अपनी रानी के प्रति प्रकट की–उत्तर में महारानी ने कहा–अच्छी बात है यदि ईश्वर की कृपा हुई तो आपकी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

समय अतीत होने पर रानी के गर्भ से पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ–और वयस्क होने पर पहले भ्राताओं के शिक्षकों के समीप ही शिक्षार्थ भेजे गये। एवं जिससमय शिक्षाकाल समाप्ति पर था–राजकुमारके तीनों भाई वहाँ आये और संन्यास दीक्षा लेने के लिये कहने लगे। क्योंकि पहले भी गुरु गृह से ही परस्पर तीनों ने संन्यास लिया था। लेकिन छोटे राज कुमार की प्रकृति कुछ और थी–उन्होंने स्पष्टतया भाइयों के प्रस्ताव को अस्वीकृत किया इस पर भाइयों ने बहुत कुछ समझाया परन्तु सब व्यर्थ तब यह व्यवस्था देख संन्यासी भाई विचार करने लगे एक माता पिता के पुत्र और एक ही शिक्षित होने पर भी यह हमारे विचारों से सहमत नहीं होते हमारी प्रकृति हमारी इच्छाओं के बिल्कुल विरुद्ध इनका स्वभाव है–इसका कारण क्या है ? अंत में सब की सम्मति हुई कि माता से चल कर पूछना चाहिये–यह विचार वे तीनों राजकुमार से विदा हो राजधानी को गये। महाराज ने ऋषियों के उचित सन्मान से पुत्रों का स्वागत किया अनन्तर वे कुछ देर पीछे माता के पास गये और साधारण वार्तालाप के अनन्तर अपने आने का कारण कहा–तब महारानी मंदालसा ने

राजपुत्रों को एक राजभवन ले जा उसके देखने की आज्ञा दी। राजपुत्रों ने देखा कि यद्यपि महल राजमहल कहलाता है परन्तु उसकी बनावट और सजावट राजोचित तड़क भड़क वाली चमकीली नहीं है।

प्रत्युत साधारण और शान्ति सूचक है महलका आँगन नाना साधु महात्माओं को विविध चित्रों से सुशोभित है। कमरों के छोटे बड़े पर्दों पर भी मुनियों की कुटियों के नाना दृश्य अंकित हैं। शयन स्थान के कमरे में विविध वेद ज्ञान वित योगी श्रेष्ठ ऋषि मुनियों और ऋषिकुमारों के चित्र लगे हुए हैं। कमरे के आसन भी कुटियों के आसनों से मिलते जुलते हैं। शैय्या का बिछौना साधारण है, स्वाध्याय स्थान में वेदांत के गहन विषयों से भरे नाना शास्त्र, उपनिषद्, वेद वेदाङ्गादि रखे हुए हैं। और यज्ञ स्थान तो बिल्कुल वन की यज्ञशाला के सदृश हैं—यज्ञीय पात्र भी ऋषियों के सदृश हैं—महारानी का विहार स्थान तो बिल्कुल ऋषि पत्नियों का उपवन है इस प्रकार सब राजमहल देख लेने पर माता उनको दूसरे राज महल में लेगई। इस मन्दिर में पग धरते ही उसकी सजावट और चमक दमक से आँखों में विलक्षण ज्योति उत्पन्न होने लगी महल के प्रत्येक कमरों में सुन्दर राजोचित पर्दे लटके हुए थे जिनमें राजदर्बार अनेक दृश्य अंकित होरहे थे। शयन वाला कमरा अनेक राजर्षि प्रसिद्ध प्रजापालक न्यायी चक्रवर्ती राजाओं और मातृ पितृ भक्त राजकुमारों के चित्रों से सुभूषित था। शैय्या सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रों से आच्छादित है, बैठने के आसन भी राजरानियों के योग्य हैं लाइब्रेरी में अनेक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ नीति निपुण राजकार्य्यों के करने वाले राजमन्त्रियों के चित्र लटक रहे थे—स्वाध्याय ग्रन्थों में भी ऐसे ही राजा और राजमन्त्रियों के जीवन चरित्र, राजनैतिक विषयों से परिपूर्ण अनेक भारी भारी ग्रन्थ राजनीति एवं सांसारिक समाचारों से पूर्ण पत्रिकायें और पत्र रखे हुए थे। यज्ञशाला राजसी ढङ्ग की बनी हुई सामान भी वैसा ही कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार पूर्वोक्त महल की प्रत्येक वस्तुओं से चिर-शांति और ब्रह्मज्ञान विधायक दृश्य और रहने योग्य वन की सदृश्यता प्रकट होती थी ठीक उसके विपरीत इस मन्दिर से सांसारिक अनुराग

प्रदर्शित होता था। अस्तु, इस प्रकार दोनों राजभवनों के देख लेने या बुद्धिमती मंदालसा ने कहा पुत्रो, तुम तीनों का जन्म पहले मन्दिर में हुआ था परन्तु तुम सब गुरु गृह से संन्यासी बन गये। इससे तुम्हारे पिता को बहुत दुःख हुआ।

अतएव जब तुम्हारे इस भाई ने मेरे गर्भ में प्रवेश किया तब हम दोनों के वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने पर राज्य का शासन दण्ड सँभालने के लिये गर्भस्थ बालक को लौकिक विषयों का अनुरागी बनाने के लिये मैंने इस भवनमें आकर निवास किया। और यद्यपि मुझे संसार प्रेमी बनाने के लिये मुझे स्वभाव से अध्यात्म विषय अधिक प्रिय लगते हैं परन्तु पुत्र को संसार प्रेमी बनाने के लिये मुझे स्वयं संसार प्रेमिनी बनना और अपने व्यवहार तथा कार्य कलाप को बदलना पड़ा। आशा है तुम अपने भाई की भिन्न प्रकृति होने का कारण समझ गये होगे।

यह सुन राजपुत्रों ने कहा हमारा संशय दूर होगया—यह तुम्हारे आचार व्यवहार शिक्षा परिपाटी बदलने का फल है।

इसके बाद ही आज्ञा प्राप्त कर वे तीनों अपने अभीष्ट स्थान पर चले गये।

और रानी के कनिष्ठ राज पुत्र ने ही राज्य भार ग्रहण कर सानंद राज्य शासन किया।

(२) इसी प्रकारश्री मती कौशिल्या देवी असाधारण धैर्यशीला थी, और इसी अनुपमया शक्ति ने राम जैसे पुत्र के १४ वर्ष तक वन में रहने का संवाद सुनकर के भी अधिक शोकित और दुःखित नहीं होने दिया प्रत्युत उन्होंने कहा—

राज देन कहि दीन्हवन, मोहि न शोच दुःख लेश।
तुम बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचण्ड कलेश॥

अर्थात् हे पुत्र! राजा ने राज्य की घोषणा करके भी वन जाने की आज्ञा दी इसका मुझे कुछ भी शोक नहीं। परन्तु तुम्हारे विना राजा प्रजा वा भरत को बड़ा कष्ट होगा। पर पिता की आज्ञा शिरोधार्य्य की यह बहुत अच्छा किया। क्योंकि यह सब धर्मों का तिलक है।

तात जाऊँ बलि कीन्हेऊ नीका। पितु आयसु सब धर्मक टीका।

हे पुत्र एकाग्रचित हो वन यात्रा करो, हे भाग्यशाली ! जब पिताकी आज्ञा पूरी कर कृतकृत्य एवं सदाचार निष्ठ हो लौट कर आओगे तब मेरे सब क्लेश जाते रहेंगे—एवं परमसुखी होऊँगी। जाओ तुम्हारा सब प्रकार कल्याण हो।

विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः।
गच्छं पुत्रत्व मेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो॥
पुनस्त्वयि निवृत्तेतु भविष्या मिगत क्लमा।
प्रत्यागते महाभागे कृतार्थे चरितव्रते।
पितुरा नृण्यतां प्राप्ते स्वपिष्ये परमं सुखम्॥

ऐसी आज्ञा दे स्वयं वेदपाठी ब्राह्मणों के साथ स्वस्त्ययन कार्य को आरम्भ लिया और उसकी समाप्ति पर समुचित दान दे श्रीरामको छाती से लग शिर सूँघ कहा पुत्र ! सुखपूर्वक जाओ ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे जिस दिन मैं तुम्हें प्रतिज्ञा पूर्ण किये आरोग्य शरीर से अयोध्या के राज मार्गों में सुखपूर्वक चलने और राजसिंहासन पर बैठे हुए देखूंगी—हे राम जाओ, वनवास से लौट हमारे वा हमारी वधू के मनोरथों को बढ़ाना।

अब्रवत्पुत्र सिद्धार्थो गच्छ राम यथा सुखम्।
अरोगं सर्व सिद्धार्थ मयोध्यां पुनरागतम्॥
पश्या मित्वां सुखं वत्स सधितं राज वर्त्मसु।
मंगलैरुप सम्पन्नो वनवासा दिहागतः।
वध्वाश्च मम नित्यत्व कामान्सवर्धय याहि भो॥

अस्तु, पुत्री ! ऐसे समय जब कि एक ओर दशरथ जैसे बुद्धिमान् महाराज शोक ग्रसित दुःखी होरहे हों रानी की ऐसी धैर्यशीलता चित्त चकित करने वाली है। महारानी के ऐसे स्वभाव से श्रीराम अनेक शुभ गुणों के प्रतिमूर्त्ति थे—वे अपने अतुल साहस और धैर्य्य से अपने स्वाभाविकता से माता के मन्दिर में आकर बोले माता ! पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा कल्याण होगा।

धर्म धुरीण धर्म गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदुबानी
पिता दीन मोहि कानन राजू। जह सब भांति मोर बड़ काजू

(३) श्रीमती कौशिल्या जैसी धैर्या थी वैसे ही संतोपिणी भी थी केकई आदि के प्रतिपक्ष में राजा दशरथ की उन पर जितनी कृपा रहती थी—वे सदा उसी में प्रसन्न रहीं—फलतः राज्य से वन की आज्ञा मिलने पर भी श्रीराम का वही भाव रहा—उनके लिये राज्यगद्दी और राज्य निर्वासन एक ही प्रतीत हुए अर्थात् कई सौतों के बीच में राजा की कुछेक कृपा में संतोपित रह आनन्द अनुभव करना जैसे उच्च कोटि का संतोष कहा जासका है वैसे ही नियम विरुद्ध छोटे भाईके लिये राज्य छोड़ वनजाना संतोष की चरम सीमा पर पहुंचना है।

(४) श्रीमती कौशल्या देवी, केकई सुमित्रादि से बहिन समानही स्नेह रखती थी, सौतिया डाह की अग्नि में कभी न जलीं—परिणाम में श्रीराम भी केकई सुमित्रादिको कौशिल्या समान ही पूजनीया माता समझते थे, और उनकी आज्ञा का पालन करना स्वधर्म समझते थे। इसके प्रमाण में उस घटना पर दृष्टि डालो जब श्रीराम केकई से कहते हैं "कि हे देवि! तुम प्रसन्न होकर अपने चित्त से शंकाकी निवृत्ति करो मैं जटा चीर धारण कर वनको अवश्य जाऊंगा"। प्रियपुत्री! किसी प्रकार के भेद भाव समझने पर क्या कभी ऐसा आश्वासन वाक्य और उपरोक्त प्रकारकी भीषण प्रतिज्ञा की जासक्ती थी?

(५) जैसा प्यार कौशिल्या का अपनी सौतों पर था—श्रीराम भी अपने सौतेले भाइयों से अवर्णनीय प्रेम करते थे प्रत्युत उनके लिये अपना धन प्रभुता अधिक क्या प्राण तक देने को उद्यत रहते थे—देखो—भरत के लिये राज्य छोड़ा, और लक्ष्मण के शोक में अपने प्राणों को समर्पित करदिया—

(६) राजा दशरथ केकई का अधिक आदर मान सत्कार करते थे उनकी कृपा उसपर विशेषथी—देवी सुमित्रा को यह बात बहुत खटकती थी और राजा की ऐसी कर्तव्य परिपाटी पर वे क्षुभित रहा करती थी

इसी लिये देवी कौशल्या को जैसी प्रेम आदर और मान की दृष्टि से देखती थी वैसी कैकई को नहीं। राज कुमार लक्ष्मण में भी इन भावों का बहुत नहीं तो कुछ तत्व अवश्य आगया था—देखो जब लक्ष्मणकुमार श्रीराम के राज्यनिर्वासन को सुन देवी कौशिल्या के महल में श्रीरामजी से मिलने गये तब स्वयं साथ चलने की इच्छा प्रकट करने के पहले उन्होंने कहा हे महाराज! राजा के वचन कदापि माननीय नहीं है क्योंकि वृद्धावस्था तथा विषय वासन में फंसे रहने से उनकी मति ठीक नहीं रही क्योंकि सर्व प्रकार निर्दोष और अनेक गुण सम्पन्न आप जैसे पुत्रको राज्य निर्वासनकी आज्ञा देना ही उनकी बुद्धि भ्रष्टता का प्रबल प्रभाव है अब आप अपनी कोमल बुद्धि को छोड़ दीजिये—राज्य के विषयमें कोमल प्रकृति वालों का निरादर होता है। मेरे सम्मुख यह किसी की भी शक्ति नहीं जो शस्त्र से जीत कर राज्य ले सके। भला ज्येष्ठारानी के सुयोग्य पुत्र और सब भाइयोंमें ज्येष्ठ आपके विद्यमान रहते हुए राजाने किस बल और किस हेतु से भरत को राज्य दे कैकई की इच्छा पूर्ण करनी चाही इत्यादि—।

(७) जिस समय बादशाह अकबर देहली में राज्य शासन करते थे उस समय एकदिन जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंहजी से राजपूतों और पठानों की वीरता सम्बन्धी वाद विवाद हुआ। बादशाह पठानों और जसवंत सिंहजी राजपूतों को प्रबल योधा कहते थे अन्त को इसके निर्णय करने के लिये दोनों का युद्ध कराना निश्चय हुआ, और दिन नियत किया गया, ठहरे हुए स्थान पर दर्बार लगा राजा अमीर उमराव तथा दर्शकगण अपने २ स्थानों पर बैठगये रंगस्थल में बादशाह की ओर से दो कसीले चतुर पठान और जसवंत सिंहजी की तरफ दो राजपूत कुमार (जिनके मुखपर पूर्णतया युवत्वके चिन्ह भी नहीं विकसित हो पाये थे) आये दर्शकों का चित्त उस ओर खिचगया राजपूत कुमारों में से बड़े कुमार ने पठान से अपने ऊपर वार करने के लिये कहा उत्तर में पठान ने भी यही कहा, तब वीर कुमार ने कहा राजपूत कभी निरपराधी पर हाथ नहीं उठाते साथ ही यदि मैंने वार किया तो तू

बचेगाही नहीं जो पलट कर मुझ पर वारकरे यह सुन पठान ने उस वीर बालक पर भाले से वार किया भाला राजपूत कुमार की छातीको फाड़कर बाहर निकल गया सही पर उसी क्षण उसकी चमकती हुई तलवार की पैनी धार से पठान का शिर अलग हो पृथ्वी पर जा पड़ा-राजकुमार अपनी तलवार को म्यान में धरने लगे परन्तु घाव की पीड़ा से सारी इन्द्रियों में शिथिलता आगई इसलिये तलवार म्यान में आधी ही जासकी और उनके प्राण सुर पुर सिधारे। इसके बाद दूसरे राजकुमार जो मृत राजकुमार से अवस्था में छोटे थे आये और पूर्वोक्त प्रकार ही अपनी चपला तलवार से अपने प्रतिपक्षी को यम सदन भेज तलवार को म्यान में रख पृथ्वीशायी हो सदा के लिये सो गये। यद्यपि दोनों राजपूत युवक मारे गये परन्तु पठानों के प्रतिपक्ष में राजपूतों की वीरता निर्विवाद सिद्ध हुई। सब दर्शक प्रशंसा करते हुए अपने २ घरों को गये और बादशाह की आज्ञा से राजमन्त्री बीरबल और महाराजा जसवंतसिंहजी मृत कुमारों की माता के पास गये। एवं अन्यान्य वृतान्त कहने के पीछे बीरबल ने कहा माताजी, ! आपके बड़े कुमार तो अपनी तलवार को म्यान में न रख सके परन्तु छोटे भली रीति से उसे म्यान में धर पृथ्वी शायी हुए इसके कारण क्या-

रानाणी ने इस युक्ति संगत बात के उत्तर में बीरबल से कहा-मंत्री जी जिस स्नान के पीछे मेरे बड़ा उत्पन्न हुआ था उस स्नान के चौथे दिन घरके झरोखे से मेरी दृष्टि एक बनिये पर जापड़ी थी यद्यपि मैं पर-पुरुषों को अपने पिता भ्राता अथवा पुत्र की दृष्टि से देखती थी-परन्तु तौ भी केवल इसी कारण से मेरे बड़े बेटे की सहिष्णुता में छोटे से इतना अंतर आगया। माता की इस युक्ति संगत बात को सुन बीरबल की शंका का समाधान होगया—और वे धन्यवाद देते हुए राजदर्बार को लौट गये।

-(८) मानव धर्म शास्त्र प्रणेता महापराक्रमी मनुमहाराजकी विदुषी पुत्री देवहूती के विद्या, ऋषि तथा ऋषि पत्नियों के सत्संग और ब्रह्म-ज्ञान एवं संतान पालन की श्रेष्ठ प्रणाली का फल सम्पूर्ण पदार्थ विद्याओं

के मूल स्तम्भ और मानवीय उच्च विचारों का सूत्रपात करने वाले 'कपिल' हुए।

(९) राजकुमार सिद्धार्थ स्वभाव से वैरागी थे और विवाह होनेपर पत्नि की विद्या-आदि से सदा सहायता मिलती रही माता. पिता की इस वैराग्य प्रीति का फल यह हुआ कि-सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) पुत्र राहुल सात वर्ष की ही अवस्था में राज्यादि अतुल ऐश्वर्य को छोड़ महल से निकल पिता के (बुद्ध) पास सम्पत्ति खान आत्मिक ज्ञान लेने के लिये चले गये। इस घटना से राज कुटम्बियों को दुःख हुआ परन्तु राहुल की माता परम प्रसन्न हुई।

(१०) महाराजा उत्तानपाद की, सुनीति और सुरुचि दो रानियां थीं-राजा की कृपा छोटी रानी सुरुचि पर अधिक रहती थी-परन्तु वे अपने ज्ञान बल से दुःखी नहीं हुई प्रत्युत उनके ज्ञान और विद्वता पूर्ण उपदेश का फल यह हुआ कि छोटी अवस्था में ही राजकुमार ध्रुव ने अविनाशी परमात्मा को जानने के लिये जंगल की राहली।

(११) वीरवर नैपोलियन जिस समय अपनी माता के गर्भ में थे उस समय वह अपने पति के सङ्ग पल्टन के साथ थी जो कि उस समय के एक बड़े युद्ध में प्रवृत्त थी, इन्हीं भावों ने, इन्हीं घटनाओं ने नैपोलिन के नाम को ऐसा चमकाया जिसकी किसी को आशा न थी। वह स्वयं कहते थे कि मैंने अपनी सारी मुस्तैदी और धैर्य अपनी माता की गोद में सीखा है मेरी सारी उन्नतियों का आश्रय मेरी माता के सुसंस्कृत सिद्धान्त ही है-

(१२) इन्हीं की भाँति विद्वानोंमें विख्यात जोन्सन कहते हैं कि 'मेरे सूक्ष्म विचारों की जड़ मेरी माँ की प्रेम से भरी हुई लोरियाँ हैं।

(१३) इब्राहीम लिंकन बतलाते हैं ' मैं जैसा कुछ हूं और हो सक्ता हूं वह सब कुछ देवताओं के समान स्वभाव वाली माता की बदौलत है।

(१४) मिचलेट साहब का कहना है यद्यपि मेरी माता को स्वर्ग

वास किये लगभग ३० वर्ष होचुके हैं परन्तु मेरे विचारों और मेरे शब्दों में आज भी वह मौजूद है।

(१५) चित्र विद्या में निपुण रिनाल्डज़ का वक्तव्य है कि 'मैंने अपनी सारी चित्रकारी माता से सीखी है अब भी जब कोई विशेष सुन्दर चित्र अङ्कित करना चाहता हूं तो माता को स्मरण करलेता हूं।

(१६) भारत के प्रसिद्ध कर्णधार (नेता) परम माननीय स्वर्गवासी श्रीयुत दादाभाई नवरोजी अपने जीवन की ऐसी आदर्शता के सम्बन्ध में कहते थे कि 'इसका कारण मेरी बुद्धिमती माता ही थी यह सब उन्हीं की योग्यता का परिणाम है।

(१७) भारत के समुज्वल रत्न स्वरूप श्रीयुत मोहनदास कर्मचन्द गान्धी की माननीया माता श्रीमती निश्शंकिनी देवी, अभिमान शून्य सच्चरित्रा और धर्म्म परायण एवं सादे ढंग से जीवन बिताने वाली थी पर दुःख से विकल होना और उसके लिये प्रत्येक प्रकार से स्वार्थ त्याग करना उनका स्वाभाविक गुण था माता के ऐसे सद्गुणों और सद्भावों का परिणाम महात्माजी के जीवन में जनता प्रत्यक्ष देख रही है।

(१८) अपने देशके विख्यात विद्यानुरागी सरसैय्यद अहमद साहब कहते हैं कि मैंने फारसी की शिक्षा और बहुत सी लाभदायक नैतिक शिक्षायें छोटी अवस्था में माता से ही सीखी-यही नहीं वे शिक्षायें आज भी ज्यों की त्यों मुझे याद हैं।

(१९) महाराजा शिवाजी की वीरता आदि गुणों का महत्व कौन नहीं जानता, परन्तु वे भी अपनी इस योग्यता के लिये माता के कृतज्ञ थे उनका कहना था कि 'माता के प्रभाव से ही मुझ में यह सब गुण उत्पन्न हुये।

(२०) संयुक्त राज्य अमेरिका के नूतन २ आविष्कारकर्ता प्रसिद्ध टामस आलवा एडीसन के नाम और उनके कर्तव्यों से कौन अज्ञात है परन्तु जीवन में इस भावि उन्नति का मूल किसने बोया था-इसकी नींव किसने दी-यह जानने के लिये उनके जीवन पर थोड़ी दृष्टि डालने

से मालूम होता है—इन तपीश्वर की अधिकांश शिक्षा माता द्वारा हुई—वे स्वयं अध्यापिका थीं—

(२१) सामाजिक सुधारों के प्रसिद्ध नायक श्री श्रद्धेय पण्डित **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** की माता देवी भगवती—अत्यन्त दयालु हृदय थीं—उनकी दया का प्रसार विना किसी भेद भाव के होता था संकीर्ण चित्तता नामको न थी—माताजी की योग्यताके प्रमाण स्वरूप विद्यासागर जी के कर्तव्य सभ्य संसार से छिपे नहीं है—उनका चरित्र लेखक का वक्तव्य है "विद्यासागर ने अधिकांश गुणों को अपने पिता पितामह और माता से ही दायस्वरूप में पाया था—विद्यासागर जैसी श्रेष्ठा मातायें बालक को जिस ढांचे में चाहें गठ ले सक्ती है।"

(२२) भारत के **प्रसिद्ध न्यायधीश मथु स्वामी ऐय्यर** की पूजनीया माता का स्वर्गवास यद्यपि उनके बाल्यकाल में ही हो गया—परन्तु उनका कहना था कि भावि उन्नति का श्रेय मेरी माता को ही दिया जा सक्ता है—विद्या अध्ययन का व्यसन और जो जो अन्यान्य उत्तम गुण मुझमें पाये जाते हैं सबकी शिक्षा देने वाली वही थी।

(२३) श्री **माननीय राय शालिग्रामजी** के पिता वकील बाबू रायबहादुरसिंह शिवभक्त दानी, सज्जन थे—वह अपनी पत्नि को वैराग्य का अधिकतर उपदेश देते थे—इस उपदेश का प्रभाव राय साहब पर इतना हुआ कि वे स्वयं बड़े धर्मानुरागी हुए।

अस्तु इस प्रकार के बहुत से प्राचीन अर्वाचीन उदाहरण दिये जा सक्ते हैं। प्राचीन काल में भारतवर्ष ऐसी माताओं से परिपूर्ण था—अतः उस समय यहाँ की दशा कैसी थी उसके बताने के लिये मैं श्रीयुत बाबू मैथलीशरण गुप्त रचित कुछ पद्य सुनाता हूं—

मुख सभी जिसको तुमने दिये,
विविध रूप धरे जिसके लिये।
न कुछ वस्तु अलभ्य रही जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

न जिसमें जन एक दुखी रहा,
सतत जो सब भांति सुखी रहा।
कुशल-मंगल का गृह था जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सुन पड़ा न अकाल जहाँ कभी,
मुदित निर्भय थे रहते सभी।
विपुल था धन धान्य भरा जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

ऋतु-विपर्यय था न हुआ कभी,
अखिल आयु प्रसन्न रहे सभी।
विवश थे सब रोग सदा जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

समय में धन नीर दिया किये,
स्वजन के सब काम किया किये।
कृषि यथेष्ठ सदैव हुई जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सब मनुष्य जहाँ मतिमान थे,
सब निरोग तथा बलवान् थे।
सब जितेन्द्रिय सज्जन थे जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

यदपि वर्ण-विभेद विचार था,
पर परस्पर ऐक्य अपार था।

कलह—कारक द्वेष न था जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सदुपदेशक थे द्विज सत्क्रिय,
सुजन—रक्षक क्षत्रिय थे प्रिय।
विभव वर्द्धक वैश्य रहे जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सुकवि,शिल्पि,गुणी,नट गायक,
कुशल कोविद चित्र विधायक।
अति असंख्यक थे मिलते जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

विपुल वाणिज वृत्ति जहाँ बढ़ी;
समय के सिर उन्नति थी चढ़ी।
त्रुटि रही न किसी गुणकी जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सब प्रकार परस्पर प्रीति थी,
अति यथोचित उत्तम नीति थी।
लखपड़ी न कुरीत कहीं जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सुन पड़ी न कहीं छल छिद्रता,
तनिक दीख पड़ी न दरिद्रता।
डर किसी अरि का न रहा जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

विदित है जिसकी वरवीरता,
निरुपमेय रही ध्रुव धीरता।
सब समृद्ध स्वतन्त्र रहे जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

रति रही सबकी निज धर्म्म में,
मति रही सब काल सुकर्म में।
गति रही श्रुति पद्धति में जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

ऋषि तथा मुनि मंगलधाम थे,
तप जहाँ करते अविराम थे।
प्रचुर पुण्य तपोवन थे जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

हवन-धूम्र जहाँ रुका कभी,
श्रुति-पुराण-सुधा न चुका कभी।
सुकृति का अति सञ्चयथा जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

सुगुण शीलवती कुलकामिनी,
निपुण थीं सब सत्पथ गामनी।
तनिक भी कुविचार न था जहाँ,
अब हरे ! वह भारत है कहाँ ?

रुदन नीर जहाँ न कभी बहा,
श्रवण गोचर गान सदा रहा।
सतत उत्सव थे रहते जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

जगत ने जिसके पद थे छुए,
सकल देश ऋणी जिसके हुए।
ललित लाभ कला सबथी जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

गुण कहाँ तक यों उसके कहें?,
उचित है अब तो चुप होरहें।
सुख कथा दुख-दायक है यहाँ?,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

अस्तु। इस भाँति भारतकी पूर्वा पर स्थितिके मिलान करने से पता लगता है कि अन्यान्य राष्ट्रों के समान प्राचीन भारत की उन्नति का कारण भी महलाओं की आदर्श उन्नति का परिणाम था और आज की अवनति भी उनकी आदर्श हीनता-अथवा उनके प्रति वैसी आदर नीय दृष्टि वा उनको योग्य बना समानता में सहयोग देने के लिये सब प्रकार से तैय्यार न करने का कुफल है। भला जहाँ की माताओं में कौटुम्बिकता का बाल्यकाल से ही नाश हो चुका है। अथवा जिनको बचपन में-सास श्वसुर आदि से लड़ने झगड़ने एवं जल्दी ही अपने पति को अलग ले, रहने की शिक्षा मिल चुकी है। यही नहीं जिनके हृदय में ऐसी स्थिति में सुख मिलने, की भावना दृढ़ करदी गई है। फिर भला उनकी संतान कैसे एकता प्रेमी हो—

जहां की माताओं ने अनेक प्रचलित कुरीतियों के करते रहना ही पुत्र पौत्रादि सुख की प्राप्ति का आश्रय मान रक्खा है। वहां की सन्तान क्यों न अन्ध विश्वासी और अवतार वाद के झगड़े में पड़े २ जीवन बिताने वाली हो ? ।

जहां की मातायें वेद, स्मृति, की कौन कहे साधारण रीति से साक्षरा भी नहीं वहां की संतान कैसे वेद प्रेमी वैदिक मर्य्यादा की श्रद्धालू और उसकी मानने वाली विद्वान् हो ।

जहां की मातायें स्वयं नाना नशों की व्यसनित बन रही हैं। उस देश में कैसे न नशेबाज़ी बढ़े ।

जहाँ माता अपने सच्चे गुरु (पति) को गौरवान्वित दृष्टि से देखने पूजने-आदर-सत्कार-सेवा आदि करने के विपरीत आचरण करती अथवा अन्यान्य गुरुओं को उपास्य देव बनाती रहती हैं भला वहां की संतान क्योंकर अपने माता, पिता, गुरु, आदि को वास्तविक उपास्य देवमान कर यथार्थ पूजा करें ।

जहाँ की माता रात दिन अपने पूज्य और सम्माननीय व्यक्तियों से खुली रीति पर कुव्यवहार करती और कुभाव से प्रेरित हो वैसी ही बातें सोचती रहती हैं। भला वहाँकी संतान क्यों न अपने पूज्यजनोंसे अशिष्ट व्यवहारकरें, माताओंने प्रथम से ही अपने माता पिता सास श्वसुर ज्येष्ठ आदिकी हितकारी शिक्षाओं का तिरस्कार करना सीख लिया जो उनकी अवज्ञा करना बुरा नहीं समझतीं भला वहांकी संतान कैसे आज्ञा पालक तथा स्वेच्छाचारी न हों ।

जब माता स्वयं "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" के महत्वको नहीं जानती फिर उसके हित अहितका ध्यान करना कैसा— तब वहां की संतान में यह भाव कैसे दृढता से पाये जांय ? ।

जहां माता की आयुष्य एक २ पैसे के लिये लड़ते झगड़ते बीतती है। वहां की संतान क्योंकर थोड़े से धन और मान के लिये अपने भाई के खून की प्यासी न बने।

जहां की माताओं के हृदय जलन फूट बैर विद्रोह की आगसे निश-दिन जलते रहते हैं। फिर भला वहां की संतान कैसे विग्रह प्रिय और असहन शील न हो।

जहां की माताओंको कभी अच्छी विद्वानों और विदुषियों की संगति और शिक्षासे लाभ उठानेका अवसर नहीं मिला अथवा जिन्होंने इस पर ध्यान ही नहीं दिया हो भला उनकी संतान कैसे सत्संगति प्रेमी एवं वैसी सद्द शिक्षा के मानने वाली हो सक्ती है।

जहां की मातायें स्वयं छलछिद्र का व्यवहार करती रहती हैं वहां की संतान क्योंकर निरछली एवं निष्कपटी हो।

जहां की मातायें गर्भावस्था में मट्टी खाया करती हों भला वहां की संताने कैसे तीव्र मेधा (बुद्धि) वाली और अविष्कारक हों ?।

जहां—८×६ वर्ष की कन्यायें गृहपत्नियां बनादी जाती हों और जहां १५×१७ का वय मातृ पद पर अधिष्ठित होने का हो वहां क्यों न २५ वर्ष के बुड्ढे पाये जांय ?

जहां की माताओं के हृदय घरमें डरके मारे हाड़ २ कांपा करते हों वहां की संतान क्योंकर न घर की शेर बने ?

अधिक क्या पुत्री वर्तमान में जैसी माताओं की स्थिति है वैसी ही दशा संतानों की भी है—फिर शारीरिक मानसिक एवं नैतिक बल से शून्य अविद्या के अन्धकार में पड़ी हुई माताओं की संरक्षा में पली हुई, साथ ही जिनको पितादि कुटम्बी जनों के प्रत्यक्ष व्यवहार से कु विचार दृढ़ होते रहते हैं गुरु की शिक्षा भी सुसंगठित शिक्षा नहीं मिली उन संतानों से राष्ट्र की दशा कैसे सुधर सक्ती है क्योंकर वह उन्नति शील राष्ट्रों का समकक्षी होसक्ता है। वस्तुतः यह लोकोक्ति यहां अक्षरशः

इस घरको आग लग गई घर के चिराग से।

भला जिस भव्य इमारत अथवा विशाल क्षेत्र का विस्तार मूल 'समानता, पर रखागया हो वहां उसके लिये भविष्य में क्यों न समान सहायक अपेक्षित होगी। अवश्य ही इसी लिये वह उन्नति कभी नहीं

हो सक्ती जिस में स्त्रियों का भाग नहीं संसार में वह आन्दोलन कभी सफल नहीं हो सक्ता जिसमें स्त्रियों से सहायता नहीं ली गई-महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने धर्म प्रचार करने के लिये पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी दीक्षित कर धर्म प्रचारिका बनाया था अस्तु। इस प्रकार बनाने बिगाड़ने का गुरु दायित्व होने के कारणही हमारे धर्माचार्य्यों में श्रेष्ठ भगवान मनु ने भी कहा है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलः क्रिया ॥

अर्थात् जहां स्त्रियों का पूजन होता (पूजन से तात्पर्य्य केवल अच्छे खान पान का सुभीता करने अथवा अच्छे।२ वस्त्र और सुन्दर १ आभूषण बनवाने मात्र से नहीं है, किन्तु मतलब है विद्या और उच्चज्ञान से अलंकृत कर सब तरहकी उन्नतियों से पूर्ण करनेका क्योंकि सर्वदा पूजा यानी आदर सत्कार आदि उनका होता है, जो विद्यावृद्ध ज्ञानवृद्ध तथा अपनी सारी शक्तियों से संसार का हित करने वाले परोपकारी हो-लेकिन उपरोक्त प्रकार से स्त्रियों का महत्व इनसे भी ऊंचा है-परन्तु इस योग्यता और ऐसी महत्व जनक अवस्था को प्राप्त करने के लिये उच्च शिक्षा की जरूरत है। अवश्य ही जहां स्त्रियों का पूजन इसी प्रकार किया जाता है और जहां शिक्षाके ज्ञानरूपी आभूषणसे अलंकृत कन्यायें सुगृहणियां और सुमाता उपस्थित हैं वहां देवता रमण करते हैं। अर्थात् वह घर और कुल, जाति एवं देश सब प्रकार की ऋद्धि सिद्धियों से पूर्ण हो जाते हैं।

अथर्व वेद का० ११ सूक्त १ में कहागया है कि गुणवती स्त्रियों के सुबन्ध से उत्तम संतान उत्तम गौ आदि उपकारी पशु आदि पदार्थों की वृद्धि होती है ॥

ऊपर के प्रमाणों से इसकी सत्यता सिद्ध हो चुकी इस लिये बेटी! भारत की दशा सुधारने उसकी उन्नति करने के लिये विदुषी, सुचतुरा शारीरिक मानसिक और नैतिक बलसे पुष्ट कन्याओं एवं गृहणियों के बनाने का यत्न करो अर्थात् पहले स्त्री समाज का उद्धार करो उस की दशा को सर्वोच्च बनाओ और यथार्थ प्रकारेण पूजा करो-उस समय भारत स्वयमेव अपना पूर्व आसन ग्रहण करलेगा-साथही गृहस्थाश्रम का मुख्य उद्देश्य भी पूर्ण होगा।

मनुष्य जीवन

की

सफलता.

उत्तराह मुत्तर उत्तरे दुत्तराभ्यः।
अधःसपत्नी या ममाधारा साधराभ्यः॥

मनुष्य सब प्राणियों से उत्तम है इसलिये वह सब विपत्तियों वा क्लेशों के मूल अविद्या को बाहर करता हुआ सारी विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर सर्वोत्कृष्ट होवे।

अ. का. ३ सू. १८ मं. ४

परि धत्त धत्त नो वर्चसे मं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवाउ ॥
अथर्व० का० २ सू० १३ मं० २

जैसे विद्वान् पुरुष विद्यादि शुभ गुणों से अलंकृत होकर पुरुषों में दर्शनीय होता है वैसे ही नरतनका चोला पाकर मनुष्य सृष्टि में सब श्रेष्ठ गिना जाता है। प्रिय पुत्री ! मानव जीवन के बारे में ऊपर जो कहा गया है वह यथार्थ है। वस्तुतः नाना चित्र विचित्रमयी परमात्मा की इस सृष्टि में यदि कोई उत्तम जीव है तो वह मनुष्य है।

यदि संसार का सुखमय कोई क्रीड़ा क्षेत्र है तो मानवी जीवन है।

यदि परमात्मा के दर्शन रूपी ऊंचे से ऊंचे और अलौलिक सुखके कहीं दर्शन हो सक्ते हैं तो मानवी सृष्टि में यदि जगत के चक्र से छुटकारा पानेका कहीं रास्ता मिल सक्ता है तो वह मार्ग नरतन ही मानाहै। क्योंकि—इस योनि में जन्म लेने वाले जीवों को परमात्मा ने अन्यों से विशेष बुद्धि दी।

अच्छे या बुरे करने और न करने योग्य कामों के विचार लेने के लिये विवेचना शक्ति दी।

अपने धर्म के वास्तविक स्वरूप को पहचानने के लिये विशेष ज्ञान दिया।

स्वधर्म के पालन करने के लिये सब प्रकार बल और साधन दिये—

इसलिये इस योनी में आकर भी उन्नति की चेष्ठा न करना, अन्य भोग योनियों से बचकर उत्तरोत्तर श्रेष्ठ एवं ऊंचे सुख की प्राप्ती के लिये यत्न न करना बड़ी भारी भूल और दुष्प्राप्य अवसर को हाथ से खोना है। अतएव सांसारिक विषयों में फंस जो अपने इस मुख्य उद्देश्य को भूल जाते हैं वह मनुष्य-योनी के प्राप्तकरने का महत्त्व खो देते हैं। नरतन पाना और न पाना उनके लिये बराबर होजाताहै क्योंकि धर्म एवं ज्ञान का सुख अथवा बल सांसारिक जीवन में सदा सहायता करते रहनेपर उस समय भी सहायक होता है जब कि लौकिक सुखों का असितत्वही नहीं रहता

और यही भविष्य में अच्छी या बुरी योनि की प्राप्ती का मुख्य कारण होते हैं। इसलिये प्रत्येक दशा में धर्माचरण करते हुए अपने ज्ञान के बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि यथार्थ ज्ञान ही अनन्त सुख अर्थात् मोक्ष लाभ का कारण है।

बेटी! जिस प्रकार दो काष्ठों में व्यापक अग्नि विना मथे नहीं निकलती उसी प्रकार परमात्मा अन्तःकरणः रूपी गुफा में विराजमान होने पर भी बिना योगाभ्यास के नहीं प्रकट होता और बिना ब्रह्मचर्य ब्रत धारण किये योग नहीं हो सक्ता, इसलिये प्राचीन काल में जितने भी ऋषि मुनि और महात्मा हुए उन सब ही ने इस रसायन का सेवन किया था क्योंकि जिन्होंनें गुरु के समीप ब्रह्मचारी रहते हुए विद्याध्यन नहीं किया वे अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रख सक्ते, उनके भाव सदा मलिन और निकृष्ठ (नीचे) रहते हैं-एवं वे स्व इन्द्रियों के वशी भूत निरन्तर विषयों में रत होने के कारण मृत्यु के विस्तृत पाशको जो विषयों के भीतर फैला हुआ है नहीं देख सक्ते, जिसका परिणाम यह होता है कि वे मृत्यु के लक्ष्याधिन संसार के जन्म मरण रूपी चक्र में घमते रहते हैं।

परन्तु बेटी जिन्होंने स्वइन्द्रियों को संयम (वश) में कर ब्रह्मचर्य ब्रत धारण करते हुए विद्या पढ़ी एवं ममता हित अहङ्कार शून्य सुख दुःख, क्रोध द्वेष लोभ, मिथ्यादि दोषों से रहित सब भूतों में समदर्शी कार्यकुशल वेशविन्यासादि वाह्य आडम्बरों को तुच्छ समझने तथा इनमें अप्रीति रखने वाले इन्द्रिय निग्रह में समर्थ सत्य संकल्पी हैं जो स्वप्न में भी किसी की अशुभकामना चिंतन नहीं करते हैं-जिन्हें सुख दुःख हानि लाभ जय पराजय इच्छा, द्वेष, भय उद्वेग में समरूप से रहते, जो भूमितल वा पलंग सूक्ष्म नर्म वस्त्र तथा कम्बल, राजमहल वा कुटीर में सम ज्ञान रखते हैं-जो स्वशरीर में रक्त मल मूत्रादि विकारों को देखते तथा-अन्यों को मृत्यु से आक्रान्त देख दुःखी नहीं होते-एवं जुआ, मद्य, मृगया, स्त्री सेवन में आसक्त नहीं होते-जो थोड़े लाभ में भी संतुष्ट रहते हैं-जो पञ्च-भूतों से उत्पन्न हुए सब को आत्म सदृश देखते और उनके प्रति वैसा ही व्यवहार किया करते हैं तथा जिन्होंने सत्यरूपी तप से मनको शुद्ध

किया है जो योग के द्वारा परमात्मा के सर्व श्रेष्ठ ओ३म् नाम को लक्ष्य रख कर अंतःकरण की शुद्धि कर चुके हैं-वे ही ज्ञानि जन क्षणिक सुखों की इच्छा को त्याग मोक्षपद के लिये उद्योगी हुआ करते हैं-ऐसे नरनारी रत्न ही निर्माण पद के अभिलाषी होते हैं-ऐसे ही ज्ञान वाले धीर पवित्र मूर्त्ति उस अक्षय सुख की इच्छा करते हैं। और जिन्होंने उशनाचार्य के उपदेशित ज्ञान के सहारे काम, क्रोध, लोभ, भय स्वप्न इन पांच योग दोषों को नष्ट कर शिलोदर हाथ पांव नैत्रादि की रक्षा करते हुए वेदों के अभ्यास पूर्वक यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान) रूपी तपके और मौन तथा शम के सहारे क्रोध, बुद्धि के अनुशीलन से निद्रा धैर्यके अवलम्बन से व्यभिचार वा संकल्प को छोड़ काम को जयकर अप्रमाद से भय, एवं प्राप्त पुरुषों की सेवा से दम्भ परित्याग करदिया है वे श्रेष्ठ नरनारी परमात्मा को सरलता से प्राप्त कर सके एवं अष्टांग योगसाधना करते हुए जब मनके सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रिय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों का ग्रहण न कर शान्त और बुद्धि भी आत्म विरुद्ध विविध चेष्टाओं से निवृत्त होजाती अर्थात् जब पुरुष की सब कामनायें नष्ट होजाती हैं तब उस दुर्ज्ञेय अवस्था में पहुंच जाते हैं। जब जगत् के बाहरी सुखों के अनुभव की इच्छा न रहने पर भी वे सर्व सामर्थी जन अपनी आत्मा में उच्च कोटि के सुख का अनुभव करते हैं। इसी अवस्था को मननशील विद्वज्जन 'भक्त' अवस्था कहते हैं।

एवं बेटी! जिस रीतिसे रुरु नामक हिरन पुराने सींगों तथा कैंचली को सर्प छोड़कर अलक्षित भाव से गमन करते हैं, जैसे बड़ी मछली जाल को छेदनकर जलमें चली जाती है जिसतरह बलवान मृग वागुरा छेदनकर निज स्थान पर चले जाते हैं, पुत्री! वैसे ही-बंधन मुक्त योगी लोग ब्रह्म पद को प्राप्त करते हैं अथवा यों कहो जैसे सम्पूर्ण नदियाँ समुद्र में अपने २ नामको त्याग समुद्रही कही जाती हैं वैसे बन्धन मुक्त जीव अपने नाम को छोड़ परमात्मा के प्रकाश में लीन हो तद्वत् होजाता है। और इस प्रकार की अवस्थायें पहुंचना ही यानी मुक्ति प्राप्त करना ही ब्रह्मज्ञान

का फल कहाता है। लेकिन यह न समझना कि उक्त दोनों जलों की भाँति जीव ब्रह्म से मिलकर जीव भी ब्रह्म बन जाता है—

क्योंकि यहाँ वे दोनों जल समान भाव वाले हैं और यहाँ मुक्ति अवस्था के प्राप्त कर लेने पर भी जीव के अल्पज्ञता आदि स्वाभाविक गुण बने रहते हैं–फिर अल्पज्ञ के साथ सर्वज्ञ और एक देशी के साथ सर्वव्यापक एवं सर्वान्तरयामी की एक रूपता कैसी–और यदि कदाचित् जीव ब्रह्मरूप होजाता तो पाप पुण्यकी व्यवस्था तथा ब्रह्मकी शुद्ध स्वरूपता नष्ट होजाती अतएव मुक्त अवस्था के प्राप्त होने पर जीव केवल ब्रह्म के भावको धारण कर ब्रह्मभाव को प्राप्त करलेता है।

अब योगी अथवा परमात्मा के प्राप्त करने के उद्योगियों एवं अभिलाषियों को ओ३म् नाम को ही लक्ष्य बनाने का कारण यह है–कि वेद तथा शास्त्रों में ईश्वर के अन्यान्य नामों को गौण और ॐ को मुख्य माना है। बेटी, यद्यपि यह उच्चारण में सरल और छोटा है लेकिन इस के अर्थ बड़े गम्भीर विचारों से भरे हुए हैं। इस त्रय अक्षर के समुदाय वाले ओंकार में ईश्वर के अनेक नामों का बोध होता है। जैसे अकार से अग्नि विराट, विश्वादि–उकार से हिरण्यगर्भ वायु आदि मकार से ईश्वर आदित्य आदि—

इस हेतू गुरु शिष्य को इसका उच्चारण करके ही वेद का प्रारम्भ कराता, ओ३म् के उच्चारण पूर्वक ही ब्रह्मा ऋत्विजों को यज्ञादि कर्म करने की आज्ञा देता, प्रथम इसको बोल करके उद्गाता सामवेद का गायन करते हैं–एवं सब वैदिक कर्म ओंकार के उच्चारण पूर्वक ही किये जाते हैं इसलिये इसका नाम 'सर्व' है। परमात्मा से इसका वैसाही प्रिय सम्बन्ध है जैसा पिता पुत्र का–

अतः इसको जानने से परमात्मा का पूर्ण ज्ञान होजाता है अर्थात् ओंकारका ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान,परमात्मज्ञान है,अतएव ओ३म्के अवलंबनसे पुरुष को मनुष्य जन्म के फल चतुष्टय की प्राप्ति होने के कारण मोक्ष का एक मात्र साधन है इसके श्रवण, मनन और निध्यासनसे जरा मृत्यु रहित हो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करते हैं–इतना ही नहीं वरन् बेटी !

जो पुरुष अकार उकार रूप दो मात्राओं द्वारा कर्म उपासना रूप से ब्रह्मका ध्यान करता है, उसका शरीर दिव्य गुणों से युक्त हो जाता है अतः उसको देवता कहते हैं। उनकी आत्मा अपूर्व बलयुक्त हो जाती है।

लेकिन बेटी, जैसे महल की चोटी पर चढ़ने वालों को उस तक जाने वाली सीढ़ी को तय करना आवश्यक है अर्थात् बिना सीढ़ीके मार्ग को उल्लंघन किये वह एक बारगी महल की चोटी पर नहीं पहुंच सक्ता. ठीक इसी प्रकार नरतन को पाकर भी एक बारगी ज्ञानयोगी बनकर मुक्ती जैसी सर्वोच्च अवस्था में पहुंचना अत्यन्त कठिन है महात्मा श्री कृष्ण अपनी गीता में कहते हैं—

'अनेक जन्म संसिद्धि स्ततो याति पराङ्गतिम् ।'

अर्थात् अनेक जन्म में सिद्धि प्राप्त होने पर पराङ्गति यानि मुक्त अवस्था की प्राप्ती होती है। लेकिन एक क्या अनेक जन्मों में भी उस श्रेष्ठ सिद्धि की प्राप्ति कर एक मात्र आश्रय शुभ कर्म्म है। अच्छे कर्म्मों के बल से ही इस श्रेणी तक पहुंचा जा सक्ता है परन्तु बेटी ! जिनके चित्त में, हृदय में, मन में, अच्छी कामना में अर्थात् इच्छा में निरंतर उद्भूत होती रहती हैं वे ही शुभ कर्म कर सक्ते हैं। क्योंकि बुरी कामनाओंसे तो प्रमाद, असंतोष, विषयानुरागिता, अशांति, मोह, अभिमान, तृष्णा, शोक भ्रम एवं उद्वेग की सृष्टि होती है। इसलिये कुवासना से युक्त नरनारी किसी समय संतुष्ट नहीं होते एवं असंतोषी को सुख कहाँ। प्रिय पुत्री ! दर्शन स्पर्श तथा श्रवण से प्रत्येक विषयका रस ज्ञान हुआ करता है और जो जिस विषयका रसज्ञ नहीं है वह उस विषयकी अपनी कामना को रोकते तथा दमन करने में शीघ्र समर्थ होता है तथा जो जन बुद्धि से पिंजरे में बन्द पक्षी की भाँति अपनी कामना को रोक सक्ते हैं उन्हें विषयों से भय नहीं वे कुपथ और कुमार्ग गामी नहीं होसक्ते।

वेद में कहा गया है कि 'मनुष्य की कुवासनायें और वाहरी कुचेष्टायें ही उसकी सब प्रकार की उन्नतियों के लिये बाधक होती हैं॥

अतएव बेटी ! प्रत्येक को कुकर्म्मों से बचने के लिये अपने मन के

संकल्प विकल्प वा कामना को ठीक रखना चाहिये। वस्तुतः जो अपने कुविचारों को दूर करते हैं वे ही वास्तविक शूर हैं।

परन्तु प्रत्येक नरनारी के उद्भूत हुए संकल्पों पर शरीर में स्थित सत रज तम इन तीनों का भी प्रभाव पड़ता है-साथ ही घटना अथवा कार्य-कार्यकारिणी इच्छा एवं संकल्प-जैसे बड़े-अथवा छोटे होंगे। सत, रज, तम का प्रभाव भी वैसा होगा। लेकिन राजसी तामसी वा सात्वकी भावों वा विचारों के उठने के समय मनुष्य की दशा विचित्र क्या वह एक प्रकार की घबराहट के अभेद्य जाल में फँस जाता है। जिससे वह इस समय क्या कर्तव्य उचित है, इसका शीघ्र निश्चित करने में असमर्थ होते हैं। ज्ञान बल व आत्म दृढ़ता के अभाव में प्रायः सात्वकी भावों के विचार नहीं ठहरा करते और अन्य भाव कुपथ, कुमार्ग, कुकर्म या अकर्तव्य कार्यों की ओर खींच नरनारियों को सुपथ भ्रष्ट कर देते हैं प्रिय पुत्री! संसार में वित्तेषणा, पुत्रेषणा ओर लोकेषणा यह तीनों अभेद्य पाशे हैं-अतएव इनसे संबन्ध रखने वाली घटनाएँ सदा अधिक गुरु एवं महत्व पूर्ण होती हैं इसलिये रजोगुण तमोगुण तथा सतोगुण की उपरा चढ़ी परस्परकी प्रभावजन्य विचारावली की रचना ऐसी घटनाओंके समय भली भाँति जानी जा सक्ती है। जिस तरह देखो—

सेठ सुन्दरलाल बहुत ही योग्य रईस कहे जाते, सब कोई उनके चाल चलन, बोल चाल, व्यवहार सचाई, न्याय परता आदि सद्गुणों की प्रशन्सा करते हैं। सत्यता और न्याय के विश्वासनीय व्यवहार से प्रत्येक के दिल में उनकी 'साख' बँधी हुई है। इसलिये अनेकान जन अपनी 'धरोहर, सेठ जी के पास 'गुप्त' रीति वा प्रत्यक्ष भाव से रखते थे। अस्तु—

जिस समय सेठजी ने सुना कि कि उनके यहां बड़ी रकमथाती स्वरूप जमा करजाने वाला-प्रेमनारायण बद्रीनाथ में परलोक सिधारा और अब उसके धनका वारिस दूरके रिशतेमें एक बहनोईको छोड़ दूसरा कोई भी नहीं जो यहां से हजारों मीलकी दूरी पर रहजाता है। बस इस समस्या के उठते ही तमोगुण से चित्त प्रभावित होने लगा विचारतंत्री

जाग उठी। बहनोई को इस बड़ी रकम के सौंप देने के लिये प्रेमनारायणके मरने की खबरदेना व्यर्थ है क्योंकि अब तक उस धनसे बड़ा काम चलता रहा—व्यर्थ उसके लिये हैरानी उठानी पड़ेगी—वह कंजूस था इससे उसने अपने धनको किसी के देने के लिये कभी इच्छा नहीं की इसलिये बहनोई को मेरे पास धन जमा करवाने का क्या पता और कदाचित हो भी तो इसका उनके पास प्रमाण ही क्या— धन से सारे सुख मिलसक्ते हैं धनवाले के लिये संसार में सब कुछ सुगम है—परलोक—स्वर्ग, नर्क, कौन जाने कहां हैं—यहां तो खूब सुख भोगलो फिर जैसा कुछ होगा भुगत लेंगे। आदि—आदि—जब तमोगुण की उत्तेजना कुछ कम हुई—रजो गुण का स्वर शुरू हुआ। अपना धर्म्म बिगड़ेगा राजभय न सही तो लोक भय का कुछ विचार तो करो। यदि पञ्चायत आकर जोड़ी और उससे विवश हो देना पड़ा तो धन तो जायगाही साथही सारी शोभा नष्ट होने के साथ, इस कीर्ति ध्वजा का मस्तक इस तरह ऊंचा न रहेगा।

और संसार में एक यश ही ऐसा है जो नतो किसी के पास जाता और न वर्षात होनेपर उसका अन्त होसक्ता है। न कालकी दुश्चेद्य फांस का वह शिकार होता है। न मृत्यु उसे खासक्ती है।

अन्यमाश्रयते लक्ष्मी स्त्वन्य मन्यं च मेदनी।
अनन्य गामिनी पुंसा कीर्तिरेका पतिव्रता॥

रजोगुण का स्वर धीमा होते ही फिर तमोगुण ने अपनी रंगत देना शुरू की, सिर्फ लोक भयके विचार पर इतना पुल क्यों बांधा जाता है? उसका तो केवल एक यही उत्तर है कि किसी को खबर ही क्या?

वे किस विरते पर पञ्चायत जोड़ेंगे—पूरी गृहस्थी का तुम पर बोझ है इस के अतिरिक्त अनेक लाभ, हानी, खर्च, आ पड़ते हैं। अतएव इस सुयोग को हाथ से न छोड़ना चाहिये। अस्तु ऐसी विचार तरंगों के साथ ही सात्व की भावों का उदय हुआ निर्बल—और निर्धनी के दाय-भाग को मारलेना कहां की बुद्धिमानी है? थाती मारना बड़े भारी नर्क स्थान की रचना करनी है। मूर्खों को लोक परलोक का भय नहीं होता

फिर जिनके पालन पोषण के लिये ऐसा पाप कार्य्य करने को उद्यत होते हो क्या वे परिवारिक नरनारी तुम्हारे दुःख में उस नारकी पीड़ा सहने में सहायता देंगे ? कभी नहीं—इसका पाप तुम्ही को लगेगा दुःख तुम्हीं भोगोगे। वे खा, पी, सुख चैन उड़ा अलग होजायंगे।

एकः पापानि कुरुते फले भुंक्ते महाजनः
भोक्तारो विप्र मुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥

और जिस लक्ष्मी के लिये यह सब करना चाहते हो भला वह किसी की हुई भी है। कहा है :—

अचला कमला कस्य कस्य मित्रं मही पतिः
शरीरंच स्थिरं कस्य कस्य वेश्या वरांङ्गणा ॥

अर्थात् इस प्रकार आई हुई लक्ष्मी किसके पास स्थिर हुई है राजा किसके मित्र और वेश्या किसके वश एवं शरीर किसका स्थिर है। इस लिये जब शरीर ही न अटल और अचल है न लक्ष्मी तब फिर ऐसा अधर्म करनेकी इच्छा क्यों करते हो पापकी पूंजी आपको भी खाजाती है जितना ही तुम पकड़ोगे वह वह दूर भागेगी। क्या स्मरण नहीं।

अन्यायो पार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते कादेशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥

अनीति और अन्याय से इकट्ठा किया हुआ धन जैसे तैसे दशवर्ष तक ठहरताहै पर ग्यारहवें वर्ष के लगते ही जड़ सहित नाश होजाता है। इसलिये संसार में उसके बराबर मूर्ख नहीं जो अपने धनों को छोड़ अथवा अपने धन पर संतोष न कर पर धन को हरण करना चाहता है।

स्वमर्थ यः परित्यज्य परार्थ मनुतिष्ठति।

विषान्न खाकर क्या कोई जीवन धारण कर सकता है व जीवन व्यतीत कर सक्ता है। प्रसिद्ध बादशाह महमूद गजनवी भी

अन्यायोपार्जित धन की ढेरी को देखकर रोता २ मर गया पर सिवाय पाप-पुण्य की गठरी के और कुछ भी अपने साथ न लेजा सका परंतु फिर भी तुम इसी धन के लिये दुःख के कुए में गिरने के लिये तैयार हो, अरे सावधान हो महोमई मदिरा रूपी मद को दूर करो, क्षणिक सुख के लिये अमूल्य धर्म्म को न छोड़ो क्योंकि—

चला लक्ष्मीश्चला प्राणश्चले जीवित मंदिरे।
चलाचले च संसारो धर्म एको हिनिश्चला॥

लक्ष्मी प्राण स्वगेह यहाँ तक इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चराचर स्थाई नहीं हैं परन्तु धर्म्म ही एक ऐसा है जिसका नाश नहीं होता प्रत्युत नर नारियों के नाशवान शरीर के नाश होने पर भी यह साथ जाता है। अर्थात् 'हुस्न' दौलत, जिस्मानी ताबूत और नेहा जब तक मनुष्य जीवित है तब तक ही साथ देते हैं।

इस लिये कहा है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे,
भार्या गृहे द्वार जन स्मशानि।
देहश्चितायं परलोक मार्गे,
धर्म्माऽनुगो गच्छत जीवएकः॥

अर्थात् यह धन जिसके लिये अपना दीन और दुनियां दोनों विगाड़ने के लिये तैयार हो, भूमि में गड़ा हुआ रह जायगा, इस धन से अपने सुख के लिये खरीदे हुए बहुमूल्य घोड़े-हाथी आदि सवारियां अस्तबलों में रहजायगीं स्त्री जिसे सर्व प्रकार से अलंकृत करने के लिये अनेक अकर्म कर चुके और करने के लिये तैयार हो वह स्त्री केवल घरके द्वार तक साथ देवेगी और जिस परिवार के पालन एवं जिस जन समुदाय में केवल 'वाह वाही' लूटने की इच्छा से अपने कर्त्तव्य कर्म्मों को भी ताक में रखदेने की इच्छा रखते हो वह परिवार वर्ग और जन

समुदाय श्मशान तक साथ देवेंगे—तुम्हारे शरीर को मुर्दघाट पर अग्नि में रख छुट्टी पाजायगें—और यह शरीर जिसको सर्वांग सुन्दर या सांसारिक सुखभोग कराने के लिये भांति २ के प्रपंच रखते हो वह केवल चिता तक साथ देगा देखो—

तमाम बड़े २ देशो को जीतने वाला सिकंदर अपनी चढ़ती उम्र में बीमार पड़कर मृत्यु की बाट जोहने लगा तब एक दिन उसने अपनी माता से कहा—कि यदि मेरी कदाचित मृत्यु होजाय तो मेरे दोनों हाथ जनाजे के बाहर निकाल देना—मेरा जितना खजाना हो मेरे जनाजे के पीछे लदवा कर ले चलना—उसके पीछे मेरे तमाम वज़ीर सभासद्‌ मेरे सारे मित्र और उसके पीछे दूसरे कुटम्बियों के साथ तू रहना जिसके पीछे फौज रहे—और इसी तरतीब से मेरे दफ़न करने के पीछे यह जुलूस घर को वापिस आये,,

कहना व्यर्थ है बादशाह की मृत्यु होने पर उसके हुक्म के मुताबिक काम किया गया—अर्थात् बादशाह ने ऊपरवाले कवि के कथन को स्पष्ट तया घटितकरा जन समुदाय को बोध कराया कि वे देखलें कि इतने बड़े बादशाह के दोनों हाथ खाली हैं बड़ी बड़ी मुसीबतों का सामना करते हुए लाखों ही नहीं वरन करोड़ों नर नारियोंके कोमल गलों के गर्म रक्त से हाथ रंग कर जो धन की राशि और नाना प्रकार के सुख के सामान इकट्ठा किये गये थे वह सब आज इस महायात्रा के समय यहीं रह गये। जिन वजीरों और सभासदों की सम्मतियों से अनेकान प्रबंध जनक कानून बनाये गये जिन के पालन करने के लिये करोड़ों का समुदाय बाध्य होता था, जिन कानूनों के प्रताप से प्रजावृन्द का हृदय भीत रहता था जिनके कारण उन्हें पदपद पर बादशाह का स्मरण बना रहता था, वेही वजीर और अमीर उमराव बादशाह की इस विदाई के पैग़ाम को तिलभर भी इधर उधर करने की चेष्टा न कर सके।

जो मित्र बादशाह के तनिक दुःख में अपने बलिदान करने के लिये प्रति समय तैयार रहते थे जो हर समय उसके भले की ही सलाह देते रहते थे वे मित्र गण भी इस समय बादशाह के बदले में अपना आत्म

समर्पण करके भी बादशाह को न बचा सके, न कोई उनकी सम्मति चल सकी जिस से सिकंदर चंद मिनट भी उनके साथ और बिता लेता पत्नि जिसने सर्वदा बादशाह के सुख दुःख में साथी रहने की प्रतिज्ञा की थी, जिसे कुछ मिनटों के लिये भी वियोग बुरा लगता था। जो अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा बादशाह को समझती थी वही बादशाह की बेगम सदा के लिये छोड़ लौटकर आती है। वह वृद्धा माता जिसने अनेक कष्टों को सहन कर इतना बड़ा किया—जो कभी अपनी आंखें ओट बादशाह का रहना पसन्द न करती थी—वही माता सर्वदा के लिये सिकंदर को विदा कर देती है। फिर अन्यान्य कुटम्बी जनोंकी तो कथा ही क्या। इस हेतू कहा है—

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते,
वयांसि चाग्निश्च शरीर धातून।
द्वाभ्यां मयं सह गच्छत्यमुत्र,
पुण्येन पापे न च वेष्टमानः॥

शरीर के धातुओं को अग्नि जला डालता, मृत पुरुषोंके धनको अन्य भोगते और वह अपने किये पुण्य पाप अथवा धर्म्म अधर्म का बोझ लिये हुए यहां से यात्रा करता है। इस लिये चेत जाओ क्यों अधर्म पंक में फँसते हो। अस्तु! सतोगुण भी शांत होता है। अब यह स्पष्ट है कि जिस भाव की प्रधानता होगी कार्य्य भी तदनुरूप होगा।

(२) सेठ जी ने इन विचारों से छुट्टी पाई ही थी की घर के "मुख्तारेआम साहब" ने आकर कहा कि गोपालराम वाले मुद्दमे के फैसले की तारीख कल ही है—और साहब ने आप के बयान पर ही अपराधी को छोड़ना कठोर या मामूली सजा देना निश्चित किया है। अर्थात् 'उनका प्राण आपके ही हाथ में सौंपा है, आप मारें चाहे बचायें।

इस कथन के सुनते ही फिर संकल्पों का सिलसिला शुरू हुआ,

तामसी, राजसी भावों के प्रभाव से प्रभावित हो थोड़ी देर में सेठ ने उन से कहा—

मेरे लिये आफत है वास्तव में गोपाल का अपराध है अपराधरूपी स्याही पर सुफेदी पोतना कठिन है पर मैं ऐसा अपराध करसक्ता हूं और न करूं तो स्त्री प्रायः नाराज होती है उसका एकला भाई है। उधर गोपालके बूढ़े बाप के आंसू–बुढ़िया माता का गिड़गिड़ाना देखते हुए न करना कठोर हृदय बनना है। इसलिये जैसे होगा करनाही पड़ेगा फिर चुप हुए। मुख्तारने भी धीरे से कहा कि मुकदमें के अनुकूल बयान बिना दिये काम चलही नहीं सका आपको जरूर यह करना ही पड़ेगा।

इधर सतोगुण ने अपना प्रभाव लाला पर डाला, फिर उन्होंने कहा भाई यह ठीक है सही ! पर अपने लोक परलोक–यश प्रतिष्ठा धर्म अधर्म का भी तो कुछ विचार करना चाहिये मानों मेरी सम्मति से साहब ने गोपाल को छोड़ दिया वा सजा थोड़ी दी, पर उनके हृदय में मेरी कितनी प्रतिष्ठा रह जायगी अवश्य ही आगे वे कभी इस तरह 'पञ्च सरदार' के पद पर मुझे बैठाने का साहस न करेंगे। और जो जन इस मुकद्दमें के सच्चे हालों को जानते हैं क्या वे यह न कहेंगे कि लाला ने बुढ़ापे में इतना बड़ा झूठ बोला इतने बड़े दोषी को एक दम बे कसूर बार ठहरा फांसी के तख्ते से बचाया या काले पानी की हवाखोरी का नजारा दूर ही करा दिया। जब ऐसे फैसले का नाम न्याय है तब क्या ठीक— धीरे २ ऐसे लोक विचारों के बढ़ने से मेरा यश किधर जायगा, और किसीने मेरेसे ही मेरे इस कुकर्मका हाल कहा वा फैसला कर देने पर भी साहब ने ही मीठी फटकार के साथ कुछ कहा तो मेरी इन मूछों की शान ऐसी ही रहेगी जैसी अब है। फिर इस स्याही पर सफेदी लगाने का अधर्म कार्य्य कर गोपाल की अभी मृत्यु होगई तब भी तो वृद्ध माता पिता अपना जीवन व्यतीत करेंगे वा बिना समय आये ही मरजायंगे ? पर उस समय भी गोपालको बचालेंगे। पर इस समय बचाने में मैं व्यर्थ ही अधर्म भार से दबजाऊंगा और कुलकी प्रतिष्ठा-अपना यश छोड़ कर आत्म हनन करना पड़ेगा। इसके साथ यहां से छूटने पर

भी इसका कौन दावा कर सक्ता है। कि गोपाल अपनी कुटेवों को छोड़ देगा ? और यदि फिर वेही कुकर्म किये तो उन अधर्म जनित कार्य्यों का भी मैं दाय भागी जरुर होऊंगा—क्योंकि मैं न बचाता तो उसे ऐसा करने का अवकाश ही कहां मिलता। अत्र इन विचारों के सुनते ही मुख्तार साहब का भी भाव पलटा उन्होंने कहा आप यथार्थ कहते हैं जगत रैन का स्वप्न है यहाँ कोई किसी का साथी नहीं सब मतलब के मित्र हैं। अपनी करनी पार उतरनी है चारदिन पीछे यह वार्ता दब जायगी सही पर आपके हृदय में यह अधर्म की अग्नि प्रज्वलित ही रहेगी इसलिये कहा है :-

इदश्रतां सर्व परं ब्रवीमी।
पुण्य पदं तात महा विशिष्टम्॥
न जातुकामान्न भयान्न लोभा।
द्धर्म्म जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः॥

अर्थात् यह सब से श्रेष्ठ, उत्तम, और पवित्र बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि "भय से, लोभ से, ही नहीं वरन जीवन की रक्षा के लिये भी धर्म्म को न छोड़े" क्योंकि-

विद्या मित्रं प्रवासेच भार्य्या मित्रं गृहेषुच।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्म्मो मित्रं मृतस्यच॥

विदेश में विद्या, घरमें भार्य्या और रोगी के लिये औषधि—मित्र है परन्तु मृतक का मित्र धर्म्म ही है अर्थात् एक धर्म ही ऐसा है जो मनुष्य के सारे जीवन में सहायता करने के उपरांत वहां भी सहायता करता है जहां कि मनुष्य की सांसारिक अन्यान्य सहायतायें नहीं प्राप्त होसक्तीं। इसलिये यथाशक्ति धर्म को न छोड़ना चाहिये।

इतना कहकर मुख्त्यार साहब के चुप होने पर सेठजी ने कहा अच्छा कल्ल तो होने दो।

घटना के शांत होते ही संकल्पों में शांती पड़ी।

(३) सायं समय बग्घी में बैठे सैर करते हुए जा रहे थे कि अकस्मात एक नवयौवना सुन्दरी पर दृष्टि पड़गई मन हाथ से निकल गया। बस अब क्या इच्छा के उद्भूत होते ही चित्त के अन्दर वही व्यापार आरम्भ होगया—"तम का अज्ञान मय पर्दा बुद्धी पर पड़गया आपसे आप भावनायें उठने लगीं"।

फैसला हुआ चाहे—विवाहित हो या अविवाहित जरूर अपने वश करके मनस्कामनायें पूरी करनी होंगी—इसके पूरा करने में कुछ ही क्यों न हो धन जाय, यश चाहे पाताल में जाय—प्राण स्वर्ग में जाय या नर्क में—पर इस चन्द्र वदना को जरूर हृदय से लगाना चाहिये वरनः संसारमें आना और इतनी धन राशी जमा करने से क्या फल? वस्तुतः अब तक मणि कांचनमय हमारा भण्डार सुन्दर मकान कोठी इस चंद्रबिना ज्योति हीन हो रहे हैं। बाग वाटिका इस परिजात कुसुम बिना सौरभ हीन ही दिखाई पड़ते हैं। घर जाते २ इसका प्रबंध करना होगा।

इसी तरह चक्कर खा रहे थे कि सतोगुण ने धक्का दिया, आँखे खुली क्योंकि उसकी विचार तंत्री ही और थीं "आज अनधिकार चेष्टा में क्यों प्रवृत हो, ऐसी पाप मई वासना के द्वारा सुख भोगा चाहते हो इस सुख की चमक स्थाई तौ क्या इतनी प्रकाश मई भी नहीं जिस में तुम आंख पसार देख सको—भला इन कुत्सित वासनाओं के द्वारा शांति पूर्ण सुख किसी ने पाया है।

भूलते हो क्या? द्रौपदी की अभिलाषा ने राजा जयद्रथ की मान हानी कराई।

क्षत्री का प्राण भिक्षा माँगना मृत्यु से भी दुःख जनक है। परन्तु राजा जयद्रथ को इस की भी याचना करनी पड़ी वह भी किस से अपने सालों से, इसी पाण्डु पत्नी की चाहने कीचकको स्वर्ग पठाया, तारा के लिये वालि और सुग्रीव में विग्रह हुआ अन्त में वाली मारा गया, मैथिली की इच्छा ने रावणके बड़े चढ़े वैभव सहित कुटम्बका नाश

कराया। इस लिये यदि अपने शरीर का कल्याण चाहो तो पर स्त्री से प्रीति करने की इच्छा न करो।

परिहरत पराङ्गना नुसङ्गं,।
वत यदि जीवित मस्तिवल्लभंवः॥
हरहरहरणी दृशो निमित्तं,।
दशदशकन्धरमोलयो नुष्ठवन्ति॥

इतना ही नहीं और भी विद्वानों ने कहा है--

धर्मार्थौयः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥

अर्थात् जो धर्म्म और धन को छोड़ इन्द्रियों के वश हो जाता है वह शीघ्र अपनी 'शोभा, धन, स्त्री, प्राण, से रहित कर दिया जाता है। फिर भी तुम क्यों क्षणिक सुख की अभिलाषा में अपनी दुर्गति कराने के लिये तैयार हो अरे, जो अपने मन पर सारथी रूप से बैठ इन्द्रियों के रथ को मन माना जाने देता है-वह शीघ्र नाश को प्राप्त होता है। और इसके विपरीत जो इन्द्रियों को वश में रखते हैं संसार उनके अनुकूल हो जाता है। इसी कारण आत्मसंयमी एक २ व्यक्ति सैकड़ों आत्माओं का उद्धार करने में समर्थ होता है इसी लिये किसी महात्मा ने अपनी मृत्यु के समय स्वपुत्र से कहा "बेटा धन और शरीर रक्षा के उतने उपायों की आवश्यकता नहीं-जितनी अपने चरित्र की रक्षा तथा इन्द्रियों को वश में रखने की" यदि तुम चरित्र को निर्मल और इन्द्रियों की रक्षा करते रहोगे तो-शरीर और धन स्वयमेव रक्षित रहेगा। अस्तु!

इसी प्रकार तीनों ही अपनी प्रकृति के अनुसार नर नारियों पर प्रभाव डालते हैं-परन्तु इससे यह स्पष्ट प्रकट हो गया कि राग द्वेष रजोगुण विपरीत ज्ञान तमोगुण यथार्थ ज्ञान सतोगुण है अतएव रजोगुण सम्मोहजनक तमोगुण दुःखजनक और सत्वगुण प्रीतिजनक है इसलिये

रजोगुणी असंतोष परिताप शोक, लोभ, क्षमा हीनता, अर्थ साधन संयुक्त कर्म तन्द्रा एवं निद्रा, तथा विषय वासना में लिप्त फल की इच्छा से कार्य्य करने वाले; थोड़ी हानि होने पर भी चित्त विगाड़ने वाले तथा लोकाचार विरुद्ध कार्य्य कर्ता होते हैं।

इनके अतिरिक्त जिनमें तर्क तथा विज्ञान की मात्रा न हो तथा अविवेक मोह संयुक्त, स्वप्न, तन्द्रा काम, क्रोध, प्रमाद लोभ, भय, विषाद, शोक, अनुराग, अभिमान, दर्प संघातरूप सुन्दरताई, विग्रह प्रिय, परापवाद में रत, विवाद सेवी, अहंकार तथा कचित परिताप परधन हरण लज्जानाश भेदप्रिय, अति धनका लोभ, थोड़ा धन होने पर विकलता, धन होने पर धर्म न करने में असावधान, दिन में सोने का स्वभाव होने के साथ जो आचरण भ्रष्ट हो वे ही तामसी स्वभाव वाले हैं।

तथा जो धैर्य्यवान, आनन्द, ऐश्वर्य, प्रिय शरीरादि की शुद्धता आरोग्यता, संतोष, कृपणता का अभाव, क्षमा, अहिंसा, सत्य, लज्जा, विनय, आचार श्रेष्ठ, तथा जिन्हों ने इन्द्रियों को दमन किया है, अथवा जो वेद पाठन में रत वा शास्त्रों के अर्थों का मनन करने वाले हैं वे ही सत्व गुणी हैं।

इसके साथ ही रजोगुणी सदाही तन्द्रा निन्द्रा वा अर्थ युक्त कार्य्यों में लिप्त और तमोगुणी सदा ही लोभ युक्त वा क्रोधज कार्य्य एवं सतोगुणी श्रद्धा और विद्या से युक्त श्री मानों से गोष्ठि जनित सुखों की इच्छा रखते हैं साथ ही जो रजोगुणी हैं वे खट्टे, चरपरे गरम प्रकृति के, रूखे अर्थात् जिन में चिकना पन कम रहता है ऐसा भोजन करते हैं और तामसी ठंडें, वासे चिकनाई रहित अपवित्र भोजनों के करने में नहीं चूकते तथा सात्वकी, आयु बल, उत्साह बढ़ाने वाले रस और चिकनाई से युक्त भली भांति समय पर पके हुए दुर्गन्ध आदि से रहित सम प्रकृति (न गरम न बहुत ठंडे) वाले पदार्थों को भोजन करते हैं। अस्तु! कहा है।

तमसो लक्षणं कामो रजसत्वर्थ उच्यते ।
सत्वस्य लक्षणं धर्म्मः श्रेष्ठ मेषां यथोत्तरम् ।

- अर्थात् तमोगुणका लक्षण काम रजोगुण का अर्थ परायणता एवं सतोगुणी धर्म्म परायण होता है अथवा यों समझो कि तमोगुणी प्रमाद तथा मोह युक्त अज्ञानी, रजोगुणी लोभी (एक लोभ से कितने दोष उत्पन्न होते हैं वह अन्यत्र बता चुके हैं) तथा सतोगुणी ज्ञानी होते हैं। इसलिये सत्व प्रधान पुरुष देव रजोगुणी मनुष्य तथा तमोगुणी पशुपक्षी आदि तिर्य्यक योनियों में जन्म लेते हैं-अतः जो तमोगुण की प्रकृति वाले हैं। उन्हें सांसारिक कार्य्यों में अधिक भाग लेना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से उनकी वृत्ति रजोगुण मई बनजायगी और तब ईश्वरोपासना, दान देश विदेश भ्रमण करना योग्य है।

इससे इन्द्रिय दमन करने की शक्ति बढ़ेगी-दान देते रहने से धनकी तृष्णा नष्ट होगी औरदेशाटन करने पर अनेक साधु महात्माओं के दर्शन और उपदेश से राग द्वेष नष्ट होने से सतोगुणी होने में कठिनता न होगी वरन् यों कहो कि ऐसा आचरण करने वालों की स्वयमेव सात्वकी वृत्ति होजाती है-

आरभस्वे माममृतस्य श्नुष्टिमच्छिदन्य माना जरदष्टिरस्तुते ।
असुं त आयुः पुनराभरामि रजस्तमो मोपगामा प्रमेष्ठाः ॥

अथर्व काण्ड ४ सू० २ मं० १

एवं जिसमें जो गुण अधिक होताहै वही उसी गुण वाला कहा जाता है-अतः और जो सभ्य रजोगुण तथा तमोगुण को त्याग सात्वकी वृत्ति अवलम्बन करते हैं उनके ऐश्वर्य्य जनितादि सारे ही कार्य सिद्ध होते हैं। अतएव अपनी कुकामनाओं को जय करने के साथ यत्न से सात्वकी वृत्ति धारण कर शुभ कर्मोंको सदा करते रहना चाहिये सुख प्राप्त करने और सुखी रहने के लिये इस रसायन के सेवन के अतिरिक्त और कोई अमृतरूपिणी औषधी नहीं, क्योंकि मृत्यु शय्या पर कर्मों को छोड़ कर

कोई अधिक शांति अथवा भयंकर अनुताप की अग्नि में जलाने वाली वस्तु नहीं, अतः जो सुकर्म्मीजन होते हैं वे शांति सुखका भले प्रकार अनुभव करते हुए परलोक यात्रा करते हैं। और जो कुकर्म्मी जन हैं—वे अपने कुकर्तव्यों को स्मरण कर अति दुःखी होते हुए अनेक वेदनाओंको सहन कर अपने प्राण विसर्जन करते हैं इसी प्रकार देखो जिस औरङ्गजेब का हृदय अपने पूज्य पिता के वृद्धावस्था में नाना प्रकार से दुःखी करने में न हिचका, सगे भाइयों असंख्य निरपराध प्राणियों का निर्दयिता से वध कराते हुए तनिक भी कम्पित न हुआ, वह भी अपनी वृद्धावस्था में अपने किये हुए बुरे कार्यों को विचार २ दुःखी होने लगा उस समय कितना उसे पश्चात्ताप हुआ था वह उसके उस पत्र से भले प्रकार प्रकट होता है जो उसने अपने पुत्र को लिखा।

* नक़ल पत्र *

"अब मैं बुड्ढा होगया, पर मेरा जीवन व्यर्थ गया, मैं संसार में नंगा आया लेकिन पापों का बोझ सिर पर ले जाऊँगा—जो मेरा कर्तव्य था उसे मैंने पूरा नहीं किया, मेरे कर्म बुरे रहे नहीं मालूम क्या २ दण्ड मिलेगा, तो भी ईश्वर की दया का भरोसा है।"

परन्तु बेटी! अंत समय ऐसा और इससे अधिक पश्चात्ताप करने से कोई फल नहीं क्योंकि करे हुए सञ्चित (जिनको पिछले जन्म में नहीं भोग सके) कर्म्मों का फल शुभ हो या अशुभ जीव गर्भ शय्या ग्रहण करते ही भोगने लगता है प्रत्युत जैसे जल भर जाने से नरम मट्टीसे युक्त खेत में अँकुर जमते हैं वैसे मनुष्यों के कर्म्म ही बीजस्थानी होकर उसके पुनर्जन्म का कारण हुआ करते हैं—और जन्मोपरांत भी खाते पीते उठते बैठते सोते जागते चलते फिरते भी साथ नहीं छोड़ने वाले—प्रत्युत जैसे हज़ारों गौओं के बीच बछड़ा अपनी माता का ही अनुसरण करता और जैसे फल फूल अपने समय को व्यतिक्रम नहीं करते वैसे ही न तो कर्म अपने तर्क को भूलता अथवा छोड़ता न समय को उल्लंघन करता है। इंग्लिश कवि ग्रामान्ट ने कहा है "मनुष्य केकर्म ही उसके लिये यमदूत

अथवा देवदूत हैं और छाया की तरह हर समय साथ रहते हैं" वस्तुतः यह अक्षरशः सत्य है इतना ही नहीं वरन् जिस प्रकार कुँए का खोदने वाला स्वयं ऊपर से नीचे जाता और महल का बनाने वाला नीचे से ऊपर चोटी पर जा बैठता है ठीक उसी प्रकार अपनी चेष्टा अर्थात् कर्म से ही ऊँचा नीचा अथवा उन्नति या अवनति को पाता है।

वृजत्यधः प्रयात्युच्चैः नरः स्वैरेव चेष्टितैः।
अधः कूपस्य खनका ऊर्ध्वं प्रासाद कारकः॥

इसलिये कुकर्म्मी जनों को स्मरण रखना चाहिये कि चाहे वे अपने कुकर्तव्यों के लिये राजदण्ड पञ्चदण्ड से बच जांय परन्तु सर्वत्र देखने वाले जो परमात्मा के दण्ड से नहीं बच सक्ते वे अपनी बुरी करनी का फल इस जन्म या परजन्म में अवश्य पावेंगे अतः वेदों में कहा है कि छल, कपट आदि पापों को छोड़कर उत्तम गुणों को धारण कर शुद्ध अंतः करण से विचार पूर्वक शुभकर्मों को प्रतिज्ञा पूर्वक करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करें।

महन्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्यामनसोमे अस्तु।
एनो मानिगां कतमच्चनाहं विश्वेदेवा अभि रक्षन्तु महे॥
अ० सू० का० ५ मं० १

इसके अतिरिक्त माननीय धर्म्म शास्त्रोंमें कर्मका ही आख्यान है एवं जितने यज्ञों और पुण्य कार्य्योंके करनेका विधान है वे सब भी विना कर्मों के नहीं होसक्ते—यद्यपि, ज्ञानसे पाप कर्मों में प्रवृत्ति नहीं होती प्रत्युत पाप करने की इच्छा का ज्ञानाग्नि में नाश हो जाता है—ज्ञान से ही परमात्मा की अलौकिक शक्ति सामर्थ का पूर्णतया भान होता है और उसके दर्शन होते हैं—इसलिये ज्ञान के तुल्य कोई भी श्रेष्ठ नहीं परन्तु यह ज्ञान भी विना कर्म किये नहीं मिलता—

प्रत्युत जैसे त्यागमात्र से कोई सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सक्ता वैसे ही विना कर्म किये ज्ञान का अधिकारी नहीं बन सक्ता। क्योंकि इस स्थूल शरीर की रचना–पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय एवं ग्यारवें मन की स्थिति पर पूर्ण होती है जिनका किसी न किसी कार्य में प्रवृत्त रहना स्वाभाविक धर्म है–साथ ही इस इन्द्रिय समूह संयुक्त शरीर की जीवनयात्रा विना कर्म किये किस प्रकार हो सक्ती है। वेद में भी परमात्मा की प्राप्ति के लिये तीन ही मार्ग वताये गये हैं–कर्म उपासना ज्ञान–इसमें भी कर्म प्रथम है। योगिराज श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं कि "कर्मों का त्याग और कर्मों का करना यद्यपि दोनों ही कल्याण दायक हैं परन्तु उक्त दोनों में से निश्चय करके कर्म त्याग (ज्ञानयोग) से कर्म्मों का करना अर्थात् कर्मों में प्रवृत्त रहना ही बड़ा है।

संन्यासः कर्म योगश्च निःश्रेयस करावुभौ।
तयोस्तु कर्म संन्यासात्कर्म योगो विशिष्यते॥
(गी० अ० ५ श्लो० २)

परन्तु जगत के चक्र में फंसाने और जगत के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले कर्म्मों में बड़ा भेद है क्योंकि जो कार्य्य स्वार्थवश अपनी कामनाओं के सिद्ध करने के लिये किये जाते हैं उनमें अनेक पाप चेष्टायें करनी पड़ती हैं और बराबर वैसीही इच्छाओं के पूर्ण करने के विचार में लिप्त रहने से राग द्वेष की वृद्धि एवं राग द्वेष से अज्ञान बढ़ता है और अज्ञान का बढ़नाही दुःखों का मूल कारण है।

साथही अनेक इच्छाओं के उद्भूत होते रहने से संकल्प नष्ट एवं प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति इन पांच प्रकार की चित्त वृत्ति का निरोध नहीं होता और चित्त वृत्ति निरोधके बिना योग नहीं होसक्ता तथा विना योगाभ्यास किये ईश्वर दर्शन कैसा ?

इसलिये स्वार्थ रहित निष्काम कर्म करना ही सच्चे योगी बनकर ज्ञान योग का प्राप्त करना है। क्योंकि जो किसी प्रकार के फलको स्वयं प्राप्त करने की इच्छा को छोड़ देते हैं अथवा परहित के लिये ही कार्य्य करते हैं वेही नरनारी निष्कर्म कर्ता होसकते हैं। ऐसी शुभ प्रवृत्ति बनाने के लिये राग द्वेष को छोड़ भोजनादि आहार विहार नियत अर्थात् मर्यादा पूर्वक करते हुए प्रतिदिन कुछ काल पर्यंत विधि पूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये क्योंकि स्वाध्याय से ही कर्तव्य अकर्तव्य का बोध होता है स्वाध्याय से ही संसार की विचित्र और अपूर्व घटनाओं का ज्ञान होता है-स्वाध्यायसे ही प्राचीन ऋषि मुनि एवं विद्वानों की जीवन प्रणालीका गूढ़ रहस्य, एवं अनुभावित अनेक बातोंका ज्ञान होताहै-स्वाध्यायसे विवेक एवं तर्कना शक्ति बढ़तीहै स्वाध्यायसे ही आचरण पवित्र होताहै चरित्रका संगठन होताहै क्योंकि बुद्धि, अहङ्कार, मनसे संयुक्त अंतःकरणहै और उस अंतःकरण की शुद्धि का उसको सरल शील बनाने का एक मात्र प्रबल आधार स्वाध्यायहीहै साथही जिनका अन्तःकरण शुद्धहै, पवित्रहै-साफहै वेही परम पिता परमात्मा के दर्शन करसकेंगे अतएव ईश्वरदर्शनका आश्रय स्वाध्याय ही है इसलिये स्वाध्यायको ज्ञान यज्ञ बतलायाहै "स्वाध्याय ज्ञानयज्ञश्च" परंतु वर्तमान काल में जहां अन्य कुरीतियें नष्ट हुईं वहां यह परिपाटी भी लुप्तप्राय होगई-आज न स्वाध्याय की महिमा को जानते और न आवश्यक्ता को समझते हैं जिस से बेटी, हमारी चित्त वृत्ति और भी कामज यानी, भयानक तृष्णा, राग, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह,-स्वार्थ, को भोगने की लालसा आदि कुवासनाओं से युक्त रहती हैं। जिसका फल यह है कि हम रजोगुण प्रधान बन अज्ञान सागर में डूबते और उछलते हुए नाना दुःखों को भोग रहे हैं।

अतएव सच्चे सुख के पाने के लिये अपनी इन्द्रियों को कुमार्ग से रोकना और स्वाध्याय पूर्वक चित्त वृत्ति के शुद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिये उस समय ही तुम्हारी रुचि निष्काम अर्थात् फल की इच्छा को छोड़ परहित काम करने की होगी-ऐसी शुभ वासना वाले न तो किसी को अपना शत्रु समझते और न दूसरे के शत्रुता करने पर उससे बदला लेने की इच्छा करते हैं-वे अपने कृत उपकार के बदले में प्रत्युपकार पाने की आशा नहीं रखते-परोक्ष में किसी की निन्दा करने का उनका स्वभाव नहीं रहता, उन्हें अपने विद्या ऐश्वर्य्यादि का अभिमान नहीं होता। वे बड़े छोटे सभी प्राणियों पर समान दया और प्रीति करते हैं-शील और धीरता एवं क्षमा वृत्ति का कभी परित्याग नहीं होता-सब भाँति पवित्र और अद्रोही होते हैं। बेटी! ऐसे निष्कर्मी बनना भी वर्तमान युग (क्योंकि ब्रह्मचर्य्य और शास्त्रों के पठन पाठन की मर्यादा जो इसकी मुख्य सहायिका है, नहीं है) में कठिन है-इसलिये-पूर्वोल्लिखित उच्च अवस्था से प्रथम निष्कर्मी-कर्म योगी बनने की चेष्टा करो और जिस समय ऐसे निष्कर्मी जनों की वृद्धि होगी उस समय जगत् चिर शान्ति और अक्षय सुख से पूर्ण होजायगा।

* ओं शम् *

स्पष्ट दृष्टि आने लगता है। इसके लिखने का ढङ्ग इतना प्रिय और रोचक है कि यदि एक वार हाथ में ली तो बिना समाप्त किये आप कभी न छोड़ेंगे। स्त्रियों और पुत्रियों के यह बड़े काम की है क्योंकि स्त्रियां ही पुराणों के लेखों पर मोहित होकर तन, मन, धन न्योछावर कर पुरुषों को भी वैदिक सिद्धान्तों से गिरा देती हैं, अतएव युवतियों तथा बहिनों को अवश्य पाठ कराइये जिस से उनका हृदय ज्ञान से पूरित हो जावे। इसके अतिरिक्त इस में बड़ा मजा यह है कि आप इस अमूल्य पुस्तक को बग़ल में दबा सनातनी भाइयों एवं पण्डितों से धड़ाधड़ शङ्का समाधान कर अपने चित्त को शान्त कीजिये, इसमें मालूमात का ख़ज़ाना बहुत है, इसलिये हमारे सनातनी भाइयों के लिये भी यह बड़ी उपयोगी है क्योंकि जिन्होंने अठारह पुराणोंके कभी दर्शन नहीं किये उनको इससे सनातन महिमाका यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको पाठ कर सत्यासत्य का विचार करना चाहिये कि क्या अठारह पुराण महर्षि व्यास के बनाये हुए हैं? किताब क्या है पुराणों का पूरा ख़ाका इसके अन्दर है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवीमहारानी की करतूत, तामस पुराणों की रचना, ब्रह्मा, विष्णु शिव का स्त्री होना, विष्णु के कान के मैल से मधुकैटभ का उत्पन्न होना, इन्द्र चन्द्र सूर्य वशिष्ठ विश्वामित्र बृहस्पति तथा शुक्र की अपार लीला, त्रिदेव के अनोखे कर्तव्यों का फोटो, कलि महात्म्य और उसके दूर करनेका सरल उपाय गङ्गा महारानी की विचित्र उत्पत्ति, गङ्गा महारानी का स्वपाप मोचन करना, राजा वेन के मरने पर उसकी भुजाओं से निषाद और पृथु का उत्पन्न होना वृक्षों से मरीषा का जन्म, रेवती के छोटे करने की अजीब तर्कीब राजा निमि से पुत्र का उत्पन्न होना, बलदेव जी का मदिरापान कर यमुना जी का खींचना बलके शरीरसे सोना चांदी आदि का उत्पन्न होना, राजासगरकी रानीके साठ हजार पुत्रों का उत्पन्न होना, देवताओं से वृक्षों, ब्रह्माजी के कान से दिशाओं की उत्पत्ति, राजा का हिरणी के साथ वार्त्तालाप, मनु की पुत्री का पुत्र हो जाना, कच का टुकड़े कर राक्षसों का खाना फिर उसे जीवत निकालना, हरिणी के पेट से शृङ्गी ऋषि का, राजा की कोख से पुत्र का जन्म, जन्तु नाम पुत्र की चर्बी से हवन कर उससे रानी के पुत्र का होना इत्यादि बातों के उपरांत गणेश महाराज की अद्भुत उत्पत्ति और मृतक श्राद्ध आदि आदि का बड़ी खूबी से वर्णन है, प्यारे पाठको! एक बार अवश्य ही इसका पाठ कर अक्षय सुख का अनुभव कीजिये, तिस पर तीनों भागों का मूल्य १।।।-) मात्र है।

सरस्वतीन्द्र जीवन

अर्थात्

श्री १०८ महर्षि श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का जीवन-चरित्र।

जो द्वितीयवार छपकर आगया।

महाशय! जीवन तो आपने बहुत ही देखे होंगे पर यह जीवन अपने ढङ्गका

निराला है। इसमें सड़ा-गला कागज़ नहीं लगाया गया, उर्दू शब्दोंकी नक़ल नहीं कीगई, बारीक टाइप में नहीं छपाया गया किन्तु सफेद मोटे कागज़ पर बम्बई अक्षरों में बढ़िया स्याही से छपाया गया है, अठपेजी ४०० पृष्ठ और ब्लाक के उत्तम चित्रों के होने पर भी मूल्य १८) इस जीवन में प० लेखराम संग्रहीत उर्दू जीवन के अतिरिक्त कई एक मान्यवरों के लिखित जीवनचरित्रों से सहायता ली गई है और इसमें बहुत से उपयोगी वृत्तान्त जो अभी तक किसी हिन्दी जीवन में नहीं छपे, लिखे गये हैं। भाषा इसकी सरल प्रिय जिसको पुत्र, पुत्रियां, महिलायें तथा पुरुष सभी अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। अतः आप भी एक कापी अवश्य मँगाकर महर्षि के जीवन से शिक्षा ग्रहण कर स्त्रियों और संतानों में महर्षि के गुणों का प्रवेश कीजिये।

नवीन नये ढङ्ग के देखने योग्य जीवन।

महाराजा दशरथ आप प्रजा का पालन पोषण, गुरु अतिथि-सेवा, दान यज्ञादि किस रीतिसे करते थे तथा आपने श्रीराम और रानियों को समय २ पर जो सार गर्भित उपदेश किये हैं उन सब उपयोगी शिक्षाओं से यह पुस्तक परिपूर्ण है, मूल्य केवल ~)॥

आज्ञापालक श्रीराम प्रातःकाल में राज्याधिकारी होने वाले थे पर उसी समय विपरीत समाचार को सुनकर आपके चित्त की दशा क्या हुई? धैर्य धारण कर विमाता को किन ग्राही वचनों से समझाया, जननी मैथिली कुमार लक्ष्मण को किस योग्यता से धैर्य्य बँधाया जननी का उपदेश देते हुए शान्ति और स्वस्ति वाचन द्वारा वनयात्रा की आज्ञा देना आदि २ अनेक शिक्षाप्रद घटनाओं का वर्णन किया गया है मूल्य =)

भ्रातृस्नेही लक्ष्मण राजकुमार के हृदय में भ्राताओं के प्रति कितना असीम प्रेम और निश्चल भक्ति थी कठिन वनयात्रा में भाई का संग देना, उन के दुःख को दुःख और सुख को सुख समझना वीर कुमार लक्ष्मण ही का काम था। आपके जीवन के प्रत्येक काम से भ्रातृ भक्ति झलकती है, उन्हीं घटनाओं से यह पुस्तक चित्रित है। मूल्य ~)

तपस्वी भरत श्री राम के वन-गमन पर आप का विलाप करना निज जननी को धिक्कारना, माता कौशिल्या को स्वार्थ त्याग का विश्वास दिलाना, राज-सभा की धर्म-विरुद्ध आज्ञा का पालन न करना किन्तु धर्मानुसार ही अपने जीवन को धार्मिक एवं आदर्श जीवन बना सच्चे स्वार्थ त्यागी बने। मूल्य ~)॥

धर्मराज युधिष्ठिर धर्मराजों का जीवन जिस प्रकार शिक्षा का भंडार होता है वह सब जानते ही हैं, आप ने स्वधर्म रक्षा तथा सत्य द्वारा किस प्रकार शत्रु-सेना से विजय

प्राप्त की, सचमुच आप की जीवन-घटनाओं से सत्यतापूर्ण धर्मयुक्त कितनी ही शिक्षायें मिल सकती हैं। मूल्य ≥)
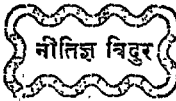
नीतिज्ञ विदुर आप किस उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ थे। महाराज धृतराष्ट्र को युद्ध से पूर्व वा पश्चात् कैसा हृदयग्राही अमृत रसयुक्त शान्तिदायक उपदेश दिया, वह पढ़ने पर ही मालूम होगा। मूल्य ≥)
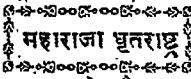
महाराजा धृतराष्ट्र मोह में फंस कर सुधर्मयुक्त कार्य करने और अपने पूज्यों के हितकारी वचनों का अनादर करने से क्या फल होता है, वह इसके पाठ से भली भांति ज्ञात हो सकता है। मूल्य ≥)
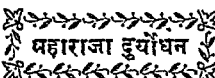
महाराजा दुर्योधन आपका जीवन पढ़ने ही योग्य है, वास्तव में यदि इस जीवन को आद्योपान्त पढ़ लिया तो आपका हृदय अवश्य इस बात को स्वीकार कर लेगा कि धर्म-युक्त व्यवहार करने से ही हम सुखी हो सकते हैं। हमें शान्ति का राज मिल सकता है। मूल्य ≥)॥
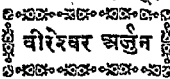
वीरेश्वर अर्जुन अर्जुन की वीरता प्रसिद्ध है भाइयों के लिये उन्हों ने कित कष्टों का सामना किया, युद्ध भूमि में क्या २ घटनायें हुई सो सब आपको मालूम होवेंगी। मूल्य ≥)
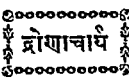
द्रोणाचार्य आहा! गुरु जी की विद्या कुशलता और शिक्षा देने की विधि तथा रण चातुर्यता कौन नहीं जानता देखिये मंगाकर पढ़िये, मूल्य =)
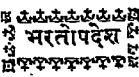
भरतोपदेश श्रीराम ने चित्रकूट पर भाई भरत को उपदेश दिया है उस शिक्षाप्रद उपदेशका वर्णन इसमें कियागया है मूल्य -)॥

पाठकों! महिलाओ!

रामायण और महाभारत जैसे बड़े २ पोथों को पढ़ना और प्रत्येक की जीवन घटनायें याद रखना बड़ा कठिन काम है, परन्तु इन जीवनों के पास रखने पर कठिनाई नहीं, थोड़े परिश्रम तथा व्यय से ही दोनों के सारांश को जान सकते हैं।

क्या हम रामायण पढ़ते हैं—आप ने अब तक अनेकों तरह की रामायणें पढ़ीं परन्तु जब तक आप एक वार इसे पढ़िये तब आपको मालूम होगा कि यथार्थ में आप रामायण पढ़ते हैं या नहीं? मूल्य केवल =) शीघ्रता कीजिये थोड़ी प्रतियां रह गई हैं।

गर्भाधान विधि—यह तेरहवीं वार छपचुकी है। इस में धातु और उसके गुण, स्त्री प्रसंग, गर्भाधान, उत्तम सन्तान की विधि, गर्भ-परीक्षा, उसकी रक्षा, गर्भ में पुत्र और पुत्री की पहिचान, गर्भवती का कर्त्तव्य, गर्भपात के लक्षण और उनकी चिकित्सा, प्रसवकाल प्रसूत की रक्षा, स्त्री पुरुषों में सन्तान होने के

कारण के अतिरिक्त शिशुपालन और अनेक कठिन रोगों की चिकित्सा का वर्णन है। मूल्य ≈)

वीर्य्यरक्षा–यह पुस्तक सुख की खानि है, अवश्य आप देखकर सन्तानों को दिखाइये और उनको भयानक रोगों से बचाइये क्योंकि वीर्य्यरक्षा करना ही सुखों का मूल है। शोक कि सन्तानें इसके लाभों को न जान कर कुमार्गियों के सङ्ग पड़ कर कुसमय कुरीतों से वीर्य्य का सत्यानाश कर भारत को गारत करते चले जाते हैं। मूल्य =) यह ९ वीं बार छपी है।

हम शीघ्र क्यों मरते हैं?–वर्तमान समय में मौत का औसत २३ वर्ष पर आगया है जिसके कारण भारत में रात दिन रुदन मचा रहता है। अनेकान पुरुष इसके लिये ज्योतिषियों से जप कराते और गंडे तावीज़ बांधते हैं परंतु फिर भी अल्पायु में मरते चले जाते हैं। इस दुःख से बचने के लिये मैंने चरक सुश्रुत और वेद के अनुसार सच्चे नुसखों और पथ्यापथ्य लिखा है। देखिये अमल कीजिये, ताकि भारत से दुःख चले जावें। मूल्य =)॥

सत्यनारायण की प्राचीन कथा–मित्रों सहित सुनिये देखिये, कैसी अच्छी और उपयोगी कथा है सातवीं बार छपी है। मूल्य =)

यथार्थ शान्ति निरूपण–यह पुस्तक स्त्री पुरुषों, पुत्र पुत्रियों और प्रत्येक मतमतान्तर के लोगों को शान्ति देनेवाली है। इसके पाठ और विचार से आत्मा में इस प्रकार की शांति आती है जो सब सुखों की दाता है। यथार्थ में इसके आशय बड़े गम्भीर हैं। मूल्य ≈)

शान्तिशतक–इसमें प्राचीन कवि शल्हण मिश्रकविकृत श्लोक हैं नीचे भाषा में अनुवाद है। इसके श्लोक पुत्र पुत्रियों को कण्ठ कराने योग्य हैं, क्योंकि सभा समाजों में बोलने से बड़े ही मनोहर प्रतीत होते हैं। एक श्लोक का आशय प्रत्येक मनुष्य को धार्मिक बनाने के लिये उत्तेजित करता है मूल्य =)

संध्यादर्पण–इसमें वेदादि सत्य शास्त्रों से त्रिकाल संध्या का प्रतिपादन पूर्ण रीति से किया गया है और प्रमाणों से यह बतलाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों की एकही गायत्री है। मूल्य =) छोटी संध्या)॥ हवन विधिः)।

द्वैतप्रकाश–आजकल के नाम मात्र के वेदान्ती अल्प बुद्धि पुरुषों को (अहं ब्रह्म) की भ्रान्ति में डाल दोनों लोकों से भ्रष्ट करते हैं, अतः इसमें अद्वैत मत का पूर्ण रीति से खण्डन और द्वैत मत का प्रतिपादन कियागया है। जिससे यथार्थ प्रभु को पहचान उसकी आराधना में लगना चाहिये। मूल्य –)

नीत्युक्त स्त्रीधर्म–इस में नीति शास्त्र द्वारा स्त्रियों के धर्म का वर्णन किया गया है मूल्य ≈)

स्मृतियुक्त स्त्रीधर्म–इसमें स्मृति शास्त्र द्वारा स्त्रियों का धर्म बतायागया है मूल्य –)॥

यदि आप संसार को स्वर्गधाम बनाना चाहते हैं तो शिक्षा के सर्वोत्तम और प्रसिद्ध ग्रन्थ नारायणीशिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रमको पढ़िये।

अब तक २६२०० प्रतियां बिक चुकी हैं।

अब इसका १२ वां एडीशन नये ढंग और नये रूप में छप कर तय्यार है।

इसकी उत्तमता इतनी संख्या एवं इतने एडीशन के निकलने से ही विदित है, अब तक स्त्री-शिक्षा का कोई ग्रन्थ इतनी संख्या में नहीं निकला। विशेष रूपसे इसकी स्वयं प्रशंसा न कर केवल इतना कहना ही उचित समझते हैं कि यह एक पुस्तक ही गृहस्थी में रखने योग्य है। इसमें ५०० विषय और लगभग २००० बातों का वर्णन; अनेकान् सुयोग्य पवित्र जीवन एवं विदुषी आदि गुणों से सुभूषित स्त्रियों के जीवनचरित्र भी हैं। गृह सम्बन्धी कोई ऐसा विषय नहीं जिसका इसमें आन्दोलन न किया गया हो। इस से हम कहते हैं कि इस से नकल एवं काट छांट कर लिखी गई अन्य पुस्तकों में व्यर्थ धन व्यय न कर इस असली और संसारोपयोगी पुस्तक का ही स्वयं पाठ कर अपने मित्रों और कुटुम्बियों को दिखलाइये। ६०० रायल अठपेजी पृष्ठ होने पर भी मूल्य १॥) डाक व्यय सहित १॥।~)

नारायणीशिक्षा अर्थात् नारायणीशिक्षा की बाबत विदेशियों की सम्मति।

श्री० एन निरञ्जनस्वामी फाइफ मेजर बूयशायर—

इसके पढ़ने से मेरी आत्मा को जितना आनन्द मिला वह किसी प्रकार नहीं लिख सकता, वास्तव में आप ने गागर में सागर को भरने का यत्न कियाहै। योग्य गृहस्थ आपकी इस पुस्तक को पढ़े बिना धन्यवाद दिये नहीं रहसकता।

श्री० पं० विदेशीलाल जी शर्मा—दर्बन (नेटाल अफ्रीका)

जिस तरह धातु में सुवर्ण, वृक्षों में आम, रसों में मिश्री, दुग्ध में घृत, मीठे में शहद, जीवों में मनुष्य, पुष्टियों में ब्रह्मचर्य, प्रकाश में सूर्य श्रेष्ठ है वैसे

ही आप की पुस्तक **नारायणी शिक्षा** सम्पूर्ण स्त्रियों के लिये उपयोगी है। मैं आशा करता हूं कि विचारशील पुरुष अवश्य इस अमूल्य पुस्तक से लाभ उठा कुटुम्बियों सहित आनन्द भोगने की चेष्टा करेंगे।

इसी प्रकार और भी प्रशंसा-पत्र आये हैं पर स्थानाभाव से प्रकाशित नहीं कर सकते।

भारत के गण्य मान्य सज्जन क्या कहते हैं—

श्रीमान पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, सम्पादक सरस्वती प्रयाग

सरस्वती भाग १० संख्या ७ में प्रकाशित करते हैं कि "नारायणी शिक्षा-सम्पादक बाबू चिम्मनलाल वैश्य. पृष्ठ संख्या ६१२। साचा बड़ा, कागज अच्छा, छपाई बम्बई के टाईप की, मूल्य सिर्फ १।)" इस इतनी सस्ती परन्तु उपयोगी पुस्तक का दूसरा नाम गृहस्थाश्रम शिक्षा है। पुस्तक कोई ३० भागों में विभक्त है। गृहस्थाश्रम से सम्बन्ध रखनेवाली शिशुपालन, शरीर रक्षा, ब्रह्मचर्य,विवाह, पति पत्नी धर्म, नित्यकर्मादि कितनी ही बातों का इसमें वर्णन और विचार है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराणादि से जगह २ पर विषयोपयोगी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। पुस्तक में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिनका जानना गृहस्थ के लिये बहुत जरूरी है। इस पुस्तक को लोगों ने इतना पसन्द किया है कि आज तक इसके ८ संस्करण हो चुके हैं।

श्रीमान पं० विष्णुलालजी साहब शर्मा सबजज—

MY DEAR MUNSHI CHIMMAN LALL JI,

The **Narayani Siksha** is a library in itself,being a work of Cyclopedia information. No subject Theoretical or Practical which is useful to a house holder has been left untouched. The style is simple, yet impressive. I am not aware of a better book for females in Hindi, and am of opinion that no Hindu family should be without a copy of your book.

श्रीमान् बाबू रामनारायण साहब तिवारी—.

Dear sir,

I have read the Narayani Siksha or Grihast-Ashram compiled by you. I do not know of any other book in Hindi which gives in such a short compass everything that a Gribastha or house-holder should know, besides, I find your book a valuable additornion to the literature for Hindu women It is a pleasure to see that the book is so cheap a lesson that other authors on popular subjectse might well learn from you. I think a book on Vedic principles should be as cheap as possible and no one will, I am sure grumble to spend one rupee and four annas more for the large and useful matters contained in your book.

स्वर्गीय श्रीब्रह्मचारी नित्यानन्दजी सरस्वती–

मैंने आपकी बनाई हुई पुस्तकों को अच्छे प्रकार से देखा। ये सब किताबें पबलिक की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति करनेवाली हैं। विशेष खूबी यह है कि प्रत्येक विषय के साबित करने के लिये वेद, स्मृति, पुराण इत्यादि के प्रमाण अच्छे प्रकार से दिये हैं, जिनके कारण इन पुस्तकों के पढ़नेवाले पूर्ण लाभ उठाते हैं। दौरे में मुझ से आपकी पुस्तकोंकी अनेकान पुरुषों ने प्रशंसा की, वास्तव में वह प्रशंसा ठीक है, क्योंकि आपने इनके लिखने में बड़ा परिश्रम किया है। इसलिये मेरा चित्त आपसे बहुत प्रसन्न है। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आप अपने जीवन भर इस उपयोगी कार्य्य को सदा करते रहें जिससे देश में वैदिक ख्यालात की उन्नति होकर सब प्रकार आनन्द हो।

बा० नन्दलालसिंह जी बी. ए., बी. एस.सी. एल एल. बी. उपमंत्री आर्यप्रतिनिधि सभा यू० पी०—

तिलहर के······जी ने यह पुस्तक लिखकर स्त्री-जाति का बड़ा उपकार किया है। हम मुं० जी को इस सफलता के लिये बधाई देते हैं। इसमें प्रायः उन सब बातों का समावेश है जो बालिका, युवति और वृद्धा तीनों के लिये विशेष उपयोगी हैं। यदि इस शिक्षा को स्त्री-उपयोगी बातों का विश्वकोष (Cyclopedia) कहें तो उचित है। प्रत्येक को अवश्य रखनी चाहिये।

सम्पादक, इन्दु मासिक पत्र, बनारस—

इसमें गृहस्थाश्रम के प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयों पर विशद रूप से निबन्ध लिखे गये हैं, हम निःसंकोच कहते हैं कि यह निबंध विज्ञता के साथ लिखे गये हैं। पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।) है।

श्रीमहाराजा महेन्द्रपालसिंहजू देवबहादुर छुरी बिलासपुर—

बेशक आपने इस पुस्तक से सम्पूर्ण गृहस्थियों का बड़ा उपकार किया है।

स्वर्गीय श्री पं० तुलसीराम वेदभाष्यकार, मेरठ—

मुं०···········जी कृत यह ग्रन्थ प्रसिद्ध है, स्त्री वर्ग के उपयोगी में इससे उपकारक पुस्तक कोई ही होंगे। ऐसी उपयोगी पुस्तक होने पर मूल्य १।) मात्र है। एक २ प्रति प्रत्येक गृहस्थ को देखने योग्य है।

बाबू गोकुलमिल जी हेडमास्टर, आर्य्य स्कूल, होशियारपुर–

मेरी स्त्री ने आरम्भ से लेकर आखीर तक भली भांति पढ़ा और मैंने भी कहीं २ देखा, सचमुच स्त्री और पुरुषों के लिये बड़ी लाभदायक है, मैंने और मेरी धर्मपत्नी ने स्त्री-शिक्षा की अनेक पुस्तकोंको पढ़ा है परन्तु ऐसी उत्तमऔर लाभदायक किसी पुस्तक को नहीं पाया। आपने यथार्थ में आर्य्य-जाति पर महान् उपकार किया है जो ऐसी उत्तम और धार्मिक आकर्षक और चित्त पर प्रभाव डालनेवाली पुस्तक निर्माण की, तिस पर लुत्फ यह है कि मूल्य भी बड़ा ही स्वल्प यानी ६०० पृष्ठ की पुस्तक १।) को देते हैं यह और सुगन्ध है। कृपा कर अपनी लेखनी को इस कार्य्य में लगा यश के पात्र बनिये।

श्रीयुत गोविन्दजी मिश्र ६५ । ३ बड़ाबाजार, कलकत्ता—

आपकी पुस्तक को पढ़कर मेरी आत्मा को जितना आनन्द मिला है, वह किसी प्रकार से लिखकर नहीं बता सकता । वास्तव में आपने सागर को गागर में भरने का साहस किया है। गृहस्थाश्रम के आवश्यकीय प्रायः समस्त विषयों का संग्रह किसी पुस्तक में सिवाय नारायणीशिक्षा के नहीं देखा । इस एक ही पुस्तक से मनुष्य अपना प्रयोजन पूर्णरूप से ग्रहन कर सकता है । ऐसी ऐसी पुस्तकों की रचना प्रायः उस कक्षा की धार्मिक आत्माओं के द्वारा ही हुआ करती हैं ।

श्री प्रतापनारायण मिश्रजी, गाज़ीपुर—

यह एक अतिउत्तम पुस्तक है और प्रत्येक घरों में रहने लायक है । मेरा ऐसा विचार है कि हमारे भारतवासी स्त्री-पुरुषों के लिये जो कि इसको एकबार भी पढ़ लेंगे तो अति लाभदायक और उपयोगी होगी । मैं आपके इस परिश्रम और आपके उस अमूल्य समय के व्यतीत करने के लिये जो आपने हम भारतवासियों केलिये लाभार्थ उठाया है, शुद्धचित्त से प्रशंसा करता हूं ।

इसके अतिरिक्त श्रीमान् राजा फतेहसिंह साहब बहादुर पुवायां, श्री पण्डित शीतलप्रसादजी डिप्टीकलेक्टर, म० रामचरणजी साहिब हास्पिटल असिस्टेन्ट सर्जन सरधना, बाबू कृपालसिंहजी डिप्टी इन्सपेक्टर इन्दौर, बाबू बलदेवप्रसाद वकील व प्रधान कायस्थ कान्फ्रेंस, बाबू मथुराप्रसाद साहिब सब इंजिनियर सीतापुर, बाबू जगदीश नारायणजी गहलोत हाउस जोधपुर, श्रीकारावरदारवीर शर्मा जोधपुर, पं० देवदत्तजी शर्मा आमघाट गाजीपुर, श्रीरामदयालुजी शाहपुरा, श्री० विद्याधरजी गुप्त राजा का रामपुर, श्रीराजेन्द्रनाथजी स्कूल फीरोजाबाद, बाबू शालिग्रामजी सुपर्वाईज़र दफ्तर मदु मधुमारी मिर्जापुर, श्रीयुत गङ्गाप्रसाद जगन्नाथजी हलद्वानी, श्रीयुत शम्भुनारायणजी शर्मा झरियामानभूमि, बा० उदयनारायण बलदेवप्रसादजी मैथिल दानसाह प्रांत इटावा, श्रीयुत मास्टर शिवप्रसादजी वर्मा मुरादाबाद, मुंशीलाल गाभी छपरा, बाबू मोहनसिंहजी सागूसिंहजी देहरादून, श्रीमहाशय वीरवर्मा स्वामी यन्त्रालय देहरादून, श्रीकालिकाप्रसादजी कनाईघाट (सिलहट), श्रीयुत नत्थूरामजी आचार्य तलवारा (होशियारपुर), श्रीयुत लाला रामप्रसादजी बड़ा बाज़ार भरतपुर, श्रीयुत मङ्गलदेव शर्मा कोटला (आगरा) एवं सम्पादक श्रीमहात्मा मुंशीरामजी 'सद्धर्मप्रचारक', म० एडीटर आर्यावर्त्त दानापुर, म० सम्पादक गोधर्मप्रकाश, म० सम्पादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक आदि अनेक सभ्य पुरुषों के प्रशंसायुक्त पत्र आ चुके हैं ।

पुराणतत्वप्रकाश ।

इसके लिये लोगों की सम्मति ।

श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्दजी सरस्वती—

इस पुस्तक के नाम से ही इसका रहस्य विज्ञ पाठकोंको ज्ञात होसकता है ।

महाशय ""जी की लेखशैली कैसी उत्तम होती है, इसका परिज्ञान इनके बनाये नारायणी शिक्षादि ग्रन्थों से पाठकों को अवश्य हो ही चुका है। पुराणों के पर-ताल की आवश्यकता थी, इस शुभकार्य्य का आरम्भ भी उक्त महोदय द्वारा हो गया है। हम वाचकवृंद से सानुनय साग्रह निवेदन करते हैं कि इस पुराणतत्व को मंगाकर इससे लाभ उठावें और ग्रन्थकर्ता महानुभाव के श्रम को सफल करें ताकि ग्रन्थकर्ता का उत्साह बढ़े और अन्य उत्तमोत्तम ग्रंथ निर्माण द्वारा ग्रंथकर्ता वाचकवृंद की सेवा कर सकें।

बा० फूलचन्दजी बेंकर वा मंत्री आ० स० नीमच

आपका पु० त० प्र० नामक पुस्तक जैसा सुनते थे, वैसा ही पाया। इस बहुमूल्य पुस्तक में आपने पुराणों का खण्डन ही नहीं किया किंतु उसमें 'वेद प्रतिपादक' प्रकरण देकर पुस्तक को परमोपयोगी बना दिया है। पुस्तक क्या है मानों १८ पुराण के स्वरूप देखने का दर्पण हैं। मू० १।।।-) अधिक नहीं है। मैं आप के इस परोपकारी कार्य्य की प्रशंसा करता हुआ अनेकशः धन्यवाद देता हूं।

सर्दारनी सदाकौर रसूलपुर ज़िला बहरायच—

यह बहुत उत्तम तरीके में लिखी गई है। १८ पुराणों का निचोड़ इस में लिख दिया है। चूंकि लोगों को पौराणिक भाइयों से बहुत वास्ता पड़ता है, इस लिये सर्व साधारण वा आर्य भाइयों को एक पुस्तक अवश्य ही अपने पास रखनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त बाबू गुजरमल जी गुप्त भारती भवन फ़ीरोज़ाबाद, श्री दुलीचन्द विशनपुर गोरखपुर, श्री कन्हैयालाल जी पटवारी राजलपुर मैनपुरी, आदि आदि अनेक महाशयों के प्रशंसायुक्त पत्र आ चुके हैं।

सरस्वतीन्द्र जीवन।

पढ़िये! लोग क्या कहते हैं।

श्री पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, सम्पादक सरस्वती प्रयाग।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के जितने जीवनचरित्र प्रकाशित हो चुके हैं उनमें से श्रीयुत लेखरामजी का उर्दू में लिखा हुआ जीवनचरित्र सर्वश्रेष्ठ है। उसी के आधार पर यह-सरस्वतीन्द्र जीवन लिखा गया है आपने लेखराम जी की पुस्तक से प्रायः सारी मुख्य२ घटनाओं की सामग्री उद्धृत करके इस पुस्तक की रचना की है। इसके सिवाय मास्टर आत्मारामजी तथा लाला राधाकृष्णजी के लेखों से भी आपने सहायता ली है। पुस्तक में स्वामी जी के साधारण चरित्र के अतिरिक्त उन के शास्त्रार्थ, उन के धर्मोपदेश और उन के ग्रन्थ-निर्माण आदि की भी बातें हैं। पुस्तक बड़े २ कोई ४०० पृष्ठों में समाप्त

हुई है। टाइप मोटा अच्छा. कागज़ मोटा है। स्वामी जी, पं० लेखराम जी और पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी के हाफ्टोन चित्र भी पुस्तक में हैं। इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य सिर्फ १=) है। महात्मा जन चाहे जिस देश जाति धर्म धर्म और सम्प्रदाय के हों उनका चरित्र पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही होता है। जो ऐसा समझते हैं उन्हें स्वामी जी का चरित्र भी पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिये"।

श्री पं० विष्णुलालजी एम० ए० सबजज—

मैंने आपके छपाये **सरस्वतीन्द्र जीवन** को पढ़ा. पं०लेखराम जी स्वर्गवासी के संगृहीत चरित्रों को छोड़ शेष अब तक जितने छपे हैं उनसे इसमें अधिक हाल पाये। वास्तव में आपने उर्दू के सारगर्भित लेखों की (जिनके आनन्द से विना उर्दू जाननेवाले वञ्चित रहते थे) भाषा करके बड़ा उपकार किया है। मैं समझता हूं कि आपने इस इतिहास के लिखने में श्रीस्वामी जी के कार्य्यकाल को यथाक्रम रक्खा है। पुस्तक की छपाई अति सुन्दर है और चित्र भी सर्वाङ्ग उत्तम हैं। मूल्य १=) अधिक नहीं है। मैं आपको इस कार्य्य पूर्त्ति का धन्यवाद देता हूं।

श्रीमान् ठाकुर गिरवरसिंह साहिब पूर्वोक्त अवैतनिक उपदेशक श्रीमती आ० प्र० सभा संयुक्तप्रदेश आगरा व अवध—

मैंने मु०चिम्मनलालजी वैश्य लिखित **सरस्वतीन्द्रजीवन** को देखा और ध्यानसे पढ़ा और बहुधा स्थानों पर **धर्मेन्द्रजीवन** से मिलान किया तो जान पड़ा कि इसमें निम्न लिखित बातें अधिक हैं जो बड़ी उपयोगी और लाभदायक हैं—

(१) काशी शास्त्रार्थ पर कई एक समाचार पत्रों की सम्मतियां।

(२) कलकत्ता, हुगली, डुमरांव, सहारनपुर और शाहजहांपुर में योग्य पुरुषों के प्रश्नों के यथावत् उत्तर।

(३) उदयपुर में स्वामी दयानन्दजी की दिनचर्य्या।

(४) महाराजा उदयपुर को दिनचर्य्या का उपदेश।

(५) जैनियों के सुप्रसिद्ध पं० आत्मारामजी साधू सिद्धकरण जी के प्रश्नों का भले प्रकार समाधान।

(६) पादरी ग्रे साहिब अजमेर और बम्बई में एक पादरी साहिब से धर्म चर्चा मसौदा में बा० बिहारीलाल जी ईसाई से प्रश्नोत्तर।

(७) आर्य्यसमार्गसंदर्शनीसभाका सविस्तर वर्णन और उसके प्रश्नोंके उत्तर।

(८) मौलवी मुहम्मद अहसन साहिब जालंधरी मौलवी मुहम्मद कासिम साहिब, मौलवी मुहम्मद अब्दुलरहमान साहिब जज उदयपुर के शास्त्रार्थ।

(९) स्वामी जी की शिक्षा का क्या क्या फल हुआ।

इसकी भाषा सरल, प्रिय, चित्तको लुभानेवाली है जिसको स्त्रियां भी समझ सकती हैं। कागज़ उत्तम, स्याही, और छापा श्रेष्ठ। तिस पर भी मुंशी जी ने सर्व साधारणके सुभीते के लिये ४०० पृष्ठ होने पर भी मूल्य अत्यन्त स्वल्प १=) सजिल्द १॥) ही रक्खा है।

श्रीमान् पण्डित निरञ्जनदेव शर्मा उप श्रीमती प्रतिनिधि सभा

मैंने इस जीवनको विचार पूर्वक पढ़ा, बड़ा ही रोचक है। इसपर भी भाषा सरल, अनेकान विषय इसमें ऐसे हैं जो अभी तक नागरी के जीवन चरित्रों में नहीं छपे। कम पढ़ मनुष्य और स्त्रियां भी भलेप्रकार समझ सकती हैं। इसकी उत्तमता वास्तव में पढ़ने से ही प्रतीत होगी। सच तो यह है कि अनेक प्रकार से उत्तम और तीन मनोहर चित्रों सहित होने पर भी इस पुस्तक का मूल्य १=) सजिल्द १॥) है। अतः मैं आर्य्य पबलिक तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों से सिफारिश करता हूं कि एक एक जिल्द मँगाकर आप देख अपनी पुत्रियों, स्त्रियों, पुत्रों को अवश्य दिखलावें।

हमारे छोटे छोटे जीवनोंकी बाबत देखिये लोग क्या कहते हैं

बाबू नन्दलालसिंह जी बी. एस. सी. एल एल, बी.
उपमन्त्री आर्य्य प्रतिनिधि सभा यू० पी०—

दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत ये चारों जीवनचरित्र रूप से श्रीयुत मुं० चिम्मनलाल जी गुप्त ने प्रकाशित किये हैं, आर्य्य भाषाकी सेवा जिस प्रकार मुंशी जी कर रहे हैं उसे प्रत्येक भाषाभाषी जानते हैं।

लालाजी के पुस्तक का उद्देश्य मुख्यतया बालक और बालिका एवं स्त्रियों का हित होता है, ये भी इसी विचार से लिखी गई है, इङ्गलिशमें इस प्रकारकी पुस्तकें निकालने का क्रम प्रचलित ही था परन्तु अब आर्य-भाषा में भी वही बात देख कर प्रसन्नता होती है। वास्तव में आदर्श पुरुषोंके चरित्र का पाठकों के हृदयों पर बहुत प्रभाव है। विदुर, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, दुर्योधन ये चारों महाभारत के पात्रों के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। महाभारत विस्तृत ग्रन्थ को सम्पूर्णतया देखे बिना किसी भी व्यक्ति का पूरा हाल ज्ञात नहीं हो सकता, परन्तु उक्त ग्रन्थ को सम्पूर्ण देखना सहज काम नहीं, लेकिन यह कठिनता इन से दूर हो गई। चरित्र लेखक ने जहां अपने "नायकों" की प्रशंसा की है वहां तत्त्वसम्बन्धी प्रत्येक घटना को ठीक एवं स्पष्ट भी बहुत कुछ करने का ध्यान रक्खा है जो लेखक के लिये आवश्यक है। छपाई खासी, मूल्य स्वल्प है।

श्रीयुत सम्पादक आर्य्य-मित्र, आगरा—

तिलहर के महाशय......जी वैश्य ने महात्मा विदुर, युधिष्ठिर, तपस्वी भरत जी के जीवनचरित्र लिखकर प्रकाशित किये हैं। इस प्रकारके ऐतिहासिक चरित्रों से आर्य्य-साहित्य को बहुत लाभ पहुंच सकता है। इनकी भाषा सरल

और रोचक है, तिस पर मूल्य भी अति स्वल्प है। वास्तव में आपका यह प्रयत्न, अत्यन्त प्रशंसनीय है।

श्रीयुत सम्पादक भास्कर मेरठ भाद्रपद ३—

तिलहर निवासी महाशय"""""ने इन जीवनों को लिख कर प्रकाशित किया है। इस तरह के ऐतिहासिक चरित्रों से आर्य्यभाषा के साहित्य को बहुत कुछ लाभ पहुंचने की सम्भावना है। आपका यह प्रयत्न श्लाघनीय है।

श्रीमान् सम्पादक भारतोदय ज्वालापुर।

तिलहर के मुन्शी""जी को प्रायः आर्य्यसमाज में सब ही जानते हैं। आपने अनेक उपयोगी सामयिक पुस्तकों को प्रकाशित कर अच्छा 'मान' पाया है। आपकी नारायणी शिक्षा आदि प्रसिद्ध पुस्तकें ही हैं। अब आपने छोटे २ जीवन चरित्रों के प्रकाशित करने का क्रम बांधा है। इन छोटी और स्वल्प मूल्य वाली पुस्तकों से सर्व साधारण को अच्छा लाभ पहुंच सकता है। अतः यह प्रत्येक हिन्दू और आर्य घरोंमें अवश्य होनी चाहिये। लेकिन आपको विज्ञापन की सचाई जब ही मालूम होगी जब आप स्वयं इनकी प्रतियां मंगाकर देखोगे।

ज़रा ग़ौर से पढ़िये।

माननीय सज्जन प्रेमधारा के विषय में क्या कहते हैं।

सम्पादक भारत शुद्दशा प्रवर्तक-फर्रुखाबाद।

यह पुस्तक नाविल के ढंगपर लिखीगई है-इसके सारे लेख देश की कुरीतियों के नष्ट करनेवाले होने से पुस्तक बहुत ही उपयोगी और लाभ दायक है। मू० ।।।) आने मात्र है।

श्री सम्पादक भास्कर मेरठ

प्रेमधारा स्त्री शिक्षा की अत्युत्तम पुस्तक है जिसको"'ने प्रकाशित किया है-इसमें संवाद रूप से उत्तम २ शिक्षायें दी गई हैं-प्रत्येक नर नारी को अवश्य ही देखना चाहिये।

श्रीयुत सम्पादक नागरी प्रचारक लखनऊ—

प्रेमधारा स्त्री जाति के उपकारार्थ कासगञ्ज निवासी बाबू"'ने प्रकाशित की है वा नर नारियों के लाभार्थ अनेकान उपदेशक ग्रन्थ के रोचक तथा प्रसङ्ग में दिये गये हैं, अवश्य ही इस को पढ़ कर बालिका और महिलाओं का विशेष उपकार होगा। धर्म-मार्ग सिखाने के निमित्त इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रचार करना सरल उपाय है। ईश्वर प्रार्थना के सप्त श्लोक बहुत ही ललित दिये गये हैं। हम ग्रन्थकर्त्ता की उनके उत्तम और समाज, सुधार के लिये यत्न करने के निमित्त वारंवार प्रशंसा करते हैं।

श्रीमती हरदेवी जी धर्मपत्नी बा० रोशनलालजी—
बैरिस्टर ऐटला लाहौर—तथा सम्पादिका भारतभगिनी—

मैंने इस पुस्तक को आद्योपांत पढ़ा, स्त्री और कन्याओंको बड़े धार्मिक उप-

देश मिलेंगे। यह पुस्तक बहुत ही प्रशंसा के योग्य है और विशेष कर आर्य कन्याओं के लिये तो पथ दर्शक तथा अमूल्य रत्न है।

बा० भूरालालस्वामी असिस्टेन्ट स्टेशनमास्टर निम्बाहेड़ा।

मैंने आपकी बनाई हुई प्रेमधारा को पढ़ा, पढ़कर बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ। ईश्वर ने आपको इसी योग्य बनाया है कि आप अपनी अमृतरूपी लेखनी से मनुष्यों की अज्ञानरूपी निद्रा को छिन्न कर रहे हैं। आपके उक्त निबन्ध को पढ़ कर मुझ सा अज्ञानी इसके महत्त्व जानने व वर्णन करने में असमर्थ है। तो भी इतना ही कहूंगा कि यह मूर्ख नर नारियों की फूट व लड़ाइयों के दूर करने की एकमात्र औषधी है। प्रत्येक गृह में रहने योग्य है।

श्रीयुत शिवलालजी आनरेरी उपदेशक श्रीमद्दयानन्द अनाथालय, अजमेर—

श्रीमान् परममित्र..............जी नमस्ते आपकी बनाई "नारीभूषण उर्फ प्रेमधारा" देखी। यह नाविलके ढङ्ग पर उत्तमोत्तम नवीन नवीन कहानियों और शिक्षाओं से भरी हुई है। वास्तव में जैसा इसका नाम है वैसी ही पुस्तक है। सचमुच प्रेमधारा है। मेरी सम्मति में प्रत्येक गृहस्थी स्त्री पुरुषों को इसकी एक एक प्रति मँगवाकर अवश्य पढ़नी चाहिये। इसके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम आदि सभी पुस्तकें देखने योग्य हैं।

आनन्द मयी रात्रि का स्वप्न मू० ≈) इसकी भाषा बड़ी सरल रसीली एवं मनोरंजक है-इसमें स्वर्गीय महात्माओं के अधिवेशन में स्त्रियों की उन्नति विषय पर देखने विचारने योग्य निबन्ध लिखा गया है, उपयोगिता देखने पर विदित होगी।

धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा मू० ।-) एक धर्मात्मा विदुषी चाची ने अपने कुटुम्बियों को बड़ी २ लाभकारी शिक्षायें दी हैं-ढङ्ग उपन्यासी, रोचक खूब, चित्ताकर्षक ऐसी कि विना समाप्त किये हाथ से न रखेंगे।

कलयुगी परिवार का एक दृश्य मू० ॥) गृहाश्रम में वर्तमान में जो जो दृश्य अथवा अभिनय पार्ट देखने में आते हैं। पस उनका इसमें बड़ी खूबी के साथ खाका खींचा गया है पढ़ते हुए गृहाश्रमकी वास्तविक दशाका चित्र आपके हृदय-

लट पर अङ्कित हो जायगा-अधिक क्या लिखूँ आप कृपाकर एक २ प्रति मँगाकर देखिये और हमें भी अपनी सम्मति से सूचित कीजिये।

कतिपय महानुभावों के इनके विषय में विचार कैसे हैं।

सम्पादक नवजीवन इन्दौर वैशाख १६१३

श्रीमती प्रियंदा देवी जी एक विदुषी आर्य्य महिला है। आपको उपन्यासी काल्पनिक भाषा लिखनेका बहुत अभ्यास है-आपकी भाषाभी प्रभावमयी होती है-उपर्युक्त तीनों पुस्तकें आपने ही लिखी हैं आपके पवित्र हृदय और भोली बहिनों की सेवा के भाव को पहचानने के लिये यह पुस्तकें परियाप्त हैं-तीनों पुस्तकें जिस दृष्टि को लक्ष्य में रख कर लिखी गई हैं वह बड़ी विशाल दृष्टिहै।

बाबू नन्दलालसिंहजी B.S.C.L.L.B. उपमंत्री आ०प्र०स० यू०पी०

प्रथम पुस्तक शिक्षा पूर्ण उपन्यास है मूर्खा पत्नियों के बहकाने से भाइयों का अलग २ होना चरित्र हीन होकर दुःख भोगना ससुराल के अपमान अंतमें मेल से लाभ आदि अनेक चित्ताकर्षक घटनायें लिखी गई हैं। दूसरी पुस्तक में मरणोन्मुखी चाची के मुख से कथाओं के रूप में कई गृहस्थोपयोगी उपदेश दिये गये हैं तीसरीमें स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी अनेक विचार स्वप्नके रूपमें प्रकट किये गये हैं हमारे विचार में ऐसी पुस्तकें पारितोषिक देनी चाहिये।

बाबू मिश्रीलाल बी० ए० एल० एल० बी अलीगढ़।

पुस्तकों की लेखिका श्रीमान् लाला चिम्मनलाल जी की सुयोग्य पुत्री है उक्त लालाजी का मान साहित्य एवं स्त्रियोपयोगी पुस्तकों के पाठकों से छिपा नहीं है हर्ष है कि लालाजी की पुत्री ने भी अपने पिता के अनुकरणीय मार्गको ग्रहण किया है। पुस्तकें शिक्षाप्रद रोचक तथा मनोहर हैं प्रारम्भ करने पर बिन अंत किये छोड़ने को चित्त नहीं चाहता-गृहणियों और पुत्रियों को अवश्य ही दिखाना चाहिये।

श्री पंडित भद्रदत्तशर्म्मा उपदेशक आर्य्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत

मैंने आपकी तीनों पुस्तकें साध्यांत पढ़ीं वस्तुतः पुस्तकें बड़ी योग्यता पूर्वक लिखीगई हैं। स्त्रियों के लिये प्रत्येक घरमें इन पुस्तकों का रहना अत्यंत आवश्यक है। परमात्मा तुम्हारी बुद्धि का और भी उत्तमत्तर विकाश करे।

मिलने का पता—

चिम्मनलाल भद्रगुप्त वैश्य,
तिलहर—जिला शाहजहांपुर,
India U. P.